
SRI PRATAP COLLEGE

श्री हनुमते नमः

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास विरचित

राम-चरित-मानस

—:※:—

मानस चन्द्रिका टीका-सहित

बालकांड

टीकाकार

पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

राय साहब रामदयाल अगरवाला

इलाहाबाद

[मूल्य ॥

श्री हनुमते नमः

भक्तिशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास विरचित

राम-चरित-मानस

मानस चन्द्रिका टीका सहित

बाल-कांड

टीकाकार

पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

प्रकाशक

रामदयाल अगरवाला

बुकसेलर व पब्लिशर

कटरा, प्रयाग।

१९२६

Printer :—Krishna Ram Mehta, at the Leader Press, Allahabad.
Publisher :—Ram Dayal Agarwala, Katra ...

विषय-सूची

बाल-काण्ड

विषय	पृष्ठ
१—मंगलाचरण	१
२—गुरु-स्तुति	४
३—सत्सङ्ग महिमा	९
४—दुर्जन वन्दना...	१४
५—इस रचना की उपयोगिता	२६
६—विनय-प्रदर्शन	३१
७—कथा मुख	६३
८ कथा प्रारम्भ का समय और स्थान	७०
९—मानस का अर्थ	७२
१०—याज्ञवल्क्य और भारद्वाज संवाद	८५
११—सतीकृत परीक्षा और उसका फल	९७
१२—नारद कथित पार्वती का लक्षण	११४
१३—मदन दहन	१३२
१४—शिवविवाह की तयारी	१४१
१५—बारात	१४५
१६—पार्वती की माता का मोह	१५१
१७—नारद का उपदेश	१५३
१८—विवाह	१५५
१९—याज्ञवल्क्य के द्वारा कथा प्रारम्भ	१६१
२०—कैलास का परिचय	

विषय	पृष्ठ
२१—पार्वती का प्रश्न	१६५
२२—शिव का उत्तर	१७१
२३—अवतार का कारण	१८३
२४—रावण का जन्म और उसका पूर्व वृत्तान्त	१८४
२५—नारद शाप	१८७
२६—कर्दम और देवहूति की कथा	२०८
२७—राजा प्रताप भानु की कथा	२१६
२८—रावण आदि की तपस्या और सिद्ध	२४६
२९—रावण कृत पीडा	२५०
३०—पृथिवी का विलाप	२५५
३१—देव विनय	२५७
३२—वरदान	२५९
३३—राजा दशरथ का परिचय	२६१
३४—दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ	२६१
३५—रामजन्म	२६३
३६—स्तुति	२६४
३७—जन्म और बाललीला	
३८—भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न का जन्म	
३९—बाललीला	
४०—संस्कार	
४१—राम लक्ष्मण का मुनि के साथ गमन मुनिमखरक्षा ...	
४२—जनकपुर के लिये प्रस्थान	
४३—अहिल्या का उद्धार	
४४—जनकपुर	
४५—जनक का सत्कार	
४६—नगर दर्शन	
४७—फुलवाड़ी	

विषय	पृष्ठ
४८—सभागमन	३२८
४९—सभा में सीता का प्रवेश	३१७
५०—जनक प्रतिज्ञा की भाषण और धनुष उठाने का राजाओं का प्रयत्न	३४१
५१—जनक का पश्चाताप	३४३
५२—लक्ष्मण का क्रोध	३४४
५३—धनुर्भङ्ग	३४६
५४—राम वरण	३५८
५५—निराश राजाओं का अस्फालन	३६१
५६—परशुराम का आगमन	३६३
५७—राम और परशुराम	३६७
५८—लक्ष्मण और परशुराम का संवाद	३६७
५९—परशुराम दमन	३७६
६०—विवाह	४१४
६१—विदाई	४५०
६२—अयोध्या के लिये प्रस्थान	४६०
६३—पुर प्रवेश तथा आनन्दोत्सव...	४६४
६४—फल कथन	४८०

श्री हनुमते नमः

राम-चरित-मानस

बाल-काण्ड १

मंगलाचरण

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

सरस्वती और गणेश को नमस्कार, वर्ण–माधुर्य प्रसाद आदि गुणों को प्रकाशित करनेवाले अक्षर, अर्थसमूह–ग्रन्थ में कविता में प्रकाशित करने के योग्य उत्तम भाव, रस–शृङ्गार आदि, छन्द–दोहा–चौपाई आदि तथा मंगल इनके कर्त्ता सरस्वती हैं, सांसारिक अर्थ–धन तथा मङ्गल के कर्त्ता गणेश जी हैं, इनको नमस्कार । इनके नमस्कार से विघ्न दूर होंगे, काव्य करने में सरस्वती की सहायता मिलेगी ।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥२॥

पार्वती और शिव को नमस्कार, पार्वती श्रद्धास्वरूप हैं और शिव-विश्वास स्वरूप । जिनके विना अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के विना सिद्ध गण अपने हृदय में रहनेवाले ईश्वर को नहीं देख सकते ।

वन्दे वोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

जो पूर्ण ज्ञानमय हैं और साक्षात् शंकररूप हैं उन गुरु को नित्य नमस्कार, जिनके आश्रय से रहनेवाला टेढ़ा भी चन्द्रमा सब जगह पूजा जाता है।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमान को नमस्कार, ये दोनों सीताराम के गुणसमूहरूपी पवित्र वन में विचरते हैं, ये दोनों शुद्ध ज्ञानी हैं।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

रामचन्द्र की प्रिया सीता को मैं प्रणाम करता हूँ, वे सब का कल्याण करनेवाली हैं, उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करनेवाली हैं तथा क्लेशों को दूर करनेवाली हैं।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ॥
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां ।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

यह समस्त संसार जिनकी माया के अधीन है, ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी माया के अधीन हैं, मिथ्या जगत् भी जिनकी सत्तासे भासित होता है—सत्य के समान मालुम होता है, जिस प्रकार रस्सी में साँप का भ्रम होता है और उस का सर्परूप ही सत्य मालुम पड़ता है। संसार-रूपी महासमुद्र से पार जाने के लिए जिनका चरण ही एकमात्र नौका है उन रामनामक विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। जो सब कारणों से परे हैं अर्थात् जो प्रकृति के अधीन नहीं हैं।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ ७ ॥

अनेक पुराण वेद और तन्त्रों के जो सम्मत है जो रामायण में कहा है और कुछ इधर उधर से अर्थात् लोक मुख से जो सुना, वह सब लेकर मन के आनन्द के लिए तुलसीदास रघुनाथ चरित्र का सुन्दर भाषानिबन्ध (संस्कृत नहीं) बनाते हैं ।

सोरठा—जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करि-बर-बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि-शुभ-गुन-सदन ॥ १ ॥

जिनके स्मरण करने से सिद्धि होती हैं, जो शिव जी के प्रमथ नामक गण के नायक हैं, जिनका मुख गजराज के समान है, वे शुभ गुणों के गृह और बुद्धिराशि गणेश जी अनुग्रह करें ।

मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सो दयालु, द्रवउ सकल-कलि-मल-दहन ॥२॥

जिनकी कृपा से गूंगा बोलने लगता है, पंगु ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ जाता है । वे कलिके सब पापों को दूर करनेवाले दयालु कृपा करें । यह इस प्रसिद्ध श्लोकका परिवर्धित अनुवाद है ।

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

नील-सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन, बारिज-नयन ।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर-सयन ॥ ३ ॥

जो स्वयं नील-कमल के समान श्याम हैं, जिनके नेत्र विकसित रक्त-कमल के समान हैं, वे क्षीरसागरशायी भगवान् मेरे हृदय में अपना धाम करें अर्थात् मेरे हृदय में निवास करें ।

कुंद इंदु सम देह, उमारमन करुनाअयन।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥

कुंद (एक श्वेत पुष्प) और चन्द्रमा के समान जिनका शरीर है, जो उमा–पार्वती के पति हैं,जो करुणा के भवन हैं, दीनों पर जिनका स्नेह रहता है वे कामदेव के विनाश करनेवाले कृपा करें।

(गुरु-स्तुति)

वंदउँ गुरु-पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह-तम-पुंज, जासु वचन रविकरनिकर ॥ ५ ॥

कृपासिंधु गुरु के चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ, जो नररूपी विष्णु हैं, जिनके वचन अज्ञानरूपी महा अन्धकार के लिए सूर्य की किरण हैं। तुलसीदास जी के गुरु का नाम भी " नरहरिदास " था।

चौपाई–वंदउँ गुरु-पद-पदुम-परागा।
सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥ १ ॥

गुरु के चरण कमलों की पराग अर्थात् धूलि को मैं वन्दना करता हूँ जिसमें सुरुचिरूपी सुवास है और अनुरागरूपी सरसता है। पुष्पों की धूलि सुगन्धित और सरस होती है। गुरुचरणकमलों की भी धूलि सुरुचि और अनुराग के द्वारा सुगन्धित और सरस है।

अमिय-मूरि-मय चूरन चारू।
समन सकल-भव-रुज-परिवारू ॥ २ ॥

यह धूलि अमृत मूल (जड़ी) का सुन्दर चूर्ण है, जिससे सांसारिक रोगों के परिवार नष्ट होते हैं।

सुकृत संभुतन विमल विभूती।
मंजुलमंगल मोद-प्रसूती ॥ ३ ॥

यह गुरु चरणरज पुण्यरूपी शिव के शरीर की निर्मल भस्म है, तथा सुन्दर मंगल और आनन्द देनेवाली है।

जनमनमंजु मुकुर-मल-हरनी।
किए तिलक गुन गनबसकरनी ॥ ४ ॥

वह मनुष्यों के मनरूपी सुन्दर शीसे के मल को हरण करनेवाली है और इस रज का यदि तिलक किया जाय तो गुणों के समूह वस में हो जाते हैं, अर्थात् गुरुभक्त गुणियों में आदर पाते हैं।

श्रीगुरुपदनखमनिगनजोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥ ५ ॥

श्री गुरु के चरण कमलों के नख, मणि के समान हैं, उनकी ज्योति को उनके प्रकाश को स्मरण करने से हृदय में दिव्य दृष्टि होती है।

दलन मोह-तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू ॥ ६ ॥

उसके प्रकाश से मोहरूपी अन्धकार का नाश होता है, उनके बड़े भाग्य हैं, जिनके हृदय में वह प्रकाश उत्पन्न होता है।

उघरहिं विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुष भवरजनी के ॥ ७ ॥

उस प्रकाश से हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं, संसाररूपी रात्रि के सब दुख दूर हो जाते हैं।

सूझहिं रामचरित मनि-मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि षानिक ॥ ८ ॥

उस प्रकाश में रामचरितरूपी मणि मानिक दिखायी पड़ने लगते हैं। जो गुप्त हैं, जो प्रकट हैं जो जैसा, जिस श्रेणि का है, वह सब मालुम पड़ने लगता है। अर्थात् गुरु की कृपा से ही रामचरित के रहस्यों का ज्ञान होता है।

दो०–जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देषहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

जिस प्रकार प्रवीण साधक, सिद्ध की तान्त्रिक रीति से बनाया हुआ अंजन आंखों में लगाकर पर्वत वन पृथिवी आदि का कौतुक देखता है। पृथिवी में गड़े खजाने भी देखता है, उसी प्रकार गुरुचरण रज के प्रकाश से और भी गुप्त प्रकट रामचरित दिखाई पड़ने लगता है।

चौपाई-गुरुपदरज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष-विभंजन ॥ १ ॥

गुरु के चरणों की रज कोमल और सुन्दर अंजन है, आखों के लिए वह अमृत है और आंखों के दोषों को दूर करनेवाली है।

तेहि करि विमल विवेक विलोचन।
वरनउँ रामचरित-भवमोचन ॥ २ ॥

उसके द्वारा मैंने अपने विवेकरूपी त्रिलोचन को निर्मल बनाया है, अतएव मैं रामचन्द्र जी के चरित का वर्णन करता हूँ, रामचन्द्र जी का चरित संसार के दुःखों को दूर करनेवाला है।

(ब्राह्मण और सन्त समाज की महिमा)

बंदउँ प्रथम महीसुरचरना।
मोह-जनित संसय सब हरना ॥ ३ ॥

उस चरित वर्णन करने के पहले मैं ब्राह्मणों के चरणों की वंदना करता हूँ, जो अज्ञान से उत्पन्न सब प्रकार के संदेहों को दूर करते हैं।

सुजन-समाज सकल-गुन-षानी।
करउँ प्रनाम सप्रेम सुवानी ॥ ४ ॥

सब गुणों की खान सज्जनों के समाज को भी बड़े प्रेम से सुन्दर वाणी के द्वारा प्रणाम करता हूँ

साधु-चरित सुभ सरिस-कपासू।
निरस-विसद गुनमय फल जासू ॥ ५ ॥

साधुओं का चरित शुभ है, कल्याणदायक है और कपास के समान है। कपास फल नीरस होता है, साधुचरित भी विषय रस से हीन है, दोनों ही उज्ज्वल है, गुणमय है। कपास का गुण सूत है और साधु चरित के गुण दया वैराग्य आदि हैं।

जो सहि दुख पर-छिद्र दुरावा।
वंदनीय जेंहि जग जसु पावा॥ ६॥

वह कपास स्वयं कष्ट उठाता है पर दूसरों का लज्जानिवारण करता है, साधु भी स्वयं कष्ट उठाते हैं और दूसरों के दुःख दूर करते हैं। संसार के वन्दनीय यश को वे पाते है अर्थात् वे कीर्तिमान् होते हैं और उनकी कीर्ति संसार में आदर की दृष्टि से देखी जाती है।

मुद-मंगल-मय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥ ७॥

सज्जनों की समाज आनन्द और मंगल स्वरूप है,वह जंगम तीर्थराज है। तीर्थराज प्रयाग स्थावर है, पर यह जंगम है, चलता फिरता तीर्थराज है।

रामभगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्मविचार प्रचारा॥ ८॥

संतसमाज में रामभक्ति की धारा बहती है, वही गङ्गा की धारा है, संतसमाज ब्रह्म विचार का प्रचार करता है, वह सरस्वती है।

विधिनिषेधमय कलिमल हरनी।
करमकथा रविनंदिनिवरनी॥ ६॥

सज्जनों का कर्मानुष्ठान-जो विधि निषेधमय है और जो कलि के पापों का नाश करता है—वह यमुना है। अमुक कर्म करना चाहिए और अमुक नहीं करना चाहिए, इस प्रकार दोनों विधि और निषेध जो बतलाये है, उनका पालन पाप दूर करता है सज्जन उन्हीं कर्मों को करते हैं, वे कर्म ही यमुना है।

हरिहर कथा विराजत वेनी।
सुनत सकल-मुद-मंगल-देनी ॥ १० ॥

सन्त समाज में शिव और विष्णु की कथा का जो योग होता है, वही वेनी है—वही संगम है, जो कथा सुनने से सब प्रकार के आनन्द और मंगल देती है।

वट विश्वासु अचल निज धरमा।
तीरथ राज समाज सुकरमा ॥ ११ ॥

प्रयाग में अक्षयवट है, सन्त समाज का अपने धर्म पर अचल विश्वास ही अक्षयवट है और सन्त समाज के जो उत्तम कर्म हैं, वेही तीर्थराज अर्थात् माधव हैं।

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा ॥ १२ ॥

यह तीर्थराज सबको सब स्थानों पर और सब दिन सुलभ है, यह तीर्थराज अनायास ही सबको मिल जा सकता है, आदरपूर्वक जिस तीर्थराज की सेवा करने से सभी प्रकार के क्लेश दूर हो जाते हैं।

अकथ अलौकिक तीरथराऊ।
देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ ॥ १३ ॥

यह तीर्थराज अकथ है, इसकी महिमा नहीं कही जा सकती, यह अलौकिक है अर्थात् लोक में इसके समान दूसरा नहीं है अथवा यह स्वर्गीय वस्तु है, यह शीघ्र ही फल देता है, इसका यह स्वभाव प्रसिद्ध है।

दोहा—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥ २ ॥

जो मनुष्य सन्तसमाज की महिमा सुनता है, उसका महत्व समझता है तथा प्रसन्न चित्त होकर उसमें मज्जन करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और

मोक्षरूपी चारों फल पाता है, सो भी इसी शरीर से। यह साधुसमाजरूपी प्रयाग ऐसा है।

चौपाई-मज्जन फल देषिय ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥ १॥

इस साधुसमाज में मज्जन करने का अर्थात् सत्संग करने का फल तत्काल ही उसी समय देखा जाता है। जो काक हैं वे पिक हो जाते हैं और बगले हंस हो जाते हैं। अर्थात् सज्जन-समागम से भीतरी मल दूर हो जाता है, हृदय शुद्ध हो जाता है।

सत्सङ्ग महिमा

सुनि आचरज करइ जनि कोई।
सत संगति महिमा नहिं गोई॥ २॥

ऊपर कही हुई बात को सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए। सत्सङ्गत की महिमा छिपी हुई नहीं है, यह प्रसिद्ध है इसे सभी जानते हैं।

बालमीकि[१] नारद[२] घट[३] जोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी॥ ३॥

वालमीकि नारद और अगस्त्य इन सबने अपने अपने जन्म की कथा अपने अपने मुँह से कही है। पर ये इतने प्रसिद्ध हुए इतने महान् हुए इसका कारण सत्सङ्ग ही है कि कुछ और ?

१—वाल्मीकि प्रचेता के पुत्र थे, बाल्यावस्था में ही किरातों का साथ इन्हें हो गया, ये उन्हीं में रहने लगे, उन्हीं के ऐसा आचार विचार रखने लगे। यहाँ तक कि उन्होंने एक शूद्रा स्त्री से विवाह कर लिया, दो तीन लड़के भी हो गये। अब ये उन लड़कों के पालन पोषण करने के लिए चोरी करने लगे। रास्ता चलनेवाले यात्रियों को लूटने लगे। यही लूट, हत्या, डाका

आदि इनके नित्य कर्म हुए। एक दिन उसी बन में सप्तर्षि भी आये। सप्तर्षि को देखते ही ये उनकी ओर दौड़े। सप्तर्षियों ने कहा अरे नीच क्या चाहता है। उसने उत्तर दिया मैं आप लोगों की सामग्रियों को लेना चाहता हूँ, जो मेरे बाल-बच्चों के काम आवेगी। सप्तर्षि खड़े हो गये, उन्होंने कहा तू जो लोगों की चीज़ छीनता है, जो हत्या करता है, वह सब किस लिए? उसने कहा महाराज, मेरे बाल-बच्चे हैं, उन्हीं के पालन-पोषण के लिए मैं यह कर्म करता हूँ। महर्षियों ने कहा हम लोग यहीं खड़े हैं, तब तक तुम जाकर अपनी स्त्री तथा बाल-बच्चों से पूछ आवो कि वे तुम्हारे इस पाप के हिस्सेदार होंगे। पहले तो उसने महर्षियों की बातों पर विश्वास नहीं किया, पुनः थोड़ी देर सोचने विचारने पर वह राजी हो गया। उसने जाकर स्त्री और बच्चों से पूँछा कि मैं रोज डाका डाल कर हत्या का जो धन ले आता हूँ उसका उपभोग तुम लोग करते हो, सची बात यह है कि यह सब मैं तुम्हीं लोगों के लिए करता हूँ। मैं तुम लोगों से यह पूछता हूँ कि क्या तुम लोग मेरे पापों के हिस्सेदार होगे? इसके उत्तर में उन लोगों ने साफ़ नाहीं कर दिया। वह वहां से व्याकुल होकर दौड़ा दौड़ा आया। महर्षियों से उसने सब हाल कह सुनाया। महर्षियों ने उसे उपदेश दिया। 'राम' मन्त्र जपने के लिए कहा पर वह इतना मूर्ख था कि इस मन्त्र को उलटा "मरा" करके जपने लगा। महर्षियों ने कहा इसी तरह जब तक हम लोग न आवें जप करते रहो। उसने ऐसा ही किया, सौ कल्प बीत गये। तब सप्तर्षि आये, आकर उन लोगों ने देखा कि वह मरा मरा जप रहा है और उसका शरीर बामी से ढक गया है। सप्तर्षियों ने उसे निकाला और उसे वाल्मीकि नाम दिया, तथा महर्षियों की श्रेणि में उसकी गणना की।

२—नारद जी ने व्यासदेव जी से अपनी कथा इस प्रकार कही है, मैं पूर्व जन्म में दासी पुत्र था। मेरी माता एक चातुर्मास्य में महर्षियों की सेवा करती थी। मैं भी वहीं रहता था, मैं उन लोगों का उच्छिष्ट खाता था तथा उनके सत्सङ्ग में कथा पुराण आदि सुना करता था, इससे मेरी बुद्धि भगवान् की ओर लगी। मैं भगवान् का ध्यान करने लगा, भगवान् का

गुणगान करने लगा। इस प्रकार मेरे हृदय में भगवद्भक्ति ने स्थान पाया। जब चातुर्मास्यव्रत समाप्त हुआ तथा महर्षि लोग जाने लगे तब कृपाकर उन लोगों ने मुझे भगवद्धर्म और भगवन्मंत्रका का उपदेश दिया।

मैं उस समय छोटा था पर मेरे हृदय में भगवद्भक्ति का प्रकाश हो गया था। मैं अपना समस्त समय भगवद्गुण कीर्तन में लगाना चाहता था। पर मेरी माता ऐसा नहीं चाहती थी, उसकी इच्छा मुझे सुखी करने की थी, पर वह दरिद्र थी अतएव सुखी कर नहीं सकती थी. पर उसके कार्यों तथा इच्छाओं से मेरी कोई सहानुभूति नहीं थी, अतएव मैं अपने कार्य में लगा। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर साँप के काटने से उसकी मृत्यु हो गयी, मैंने इसे अपने लिए ईश्वर प्रसाद समझा। वहाँ से उत्तर दिशा की ओर चला, सुन्दर सजल हरे भरे देशों को देखता हुआ मैं आगे चला। रास्ता चलने से मैं थक गया था, भूख भी खूब लगी थी, थोड़ी दूर जाने पर एक नदी के तीर पर मैं ठहर गया उसी नदी में स्नान करके जलपान कर मैं परमात्मा का ध्यान करने लगा, महर्षियों ने मुझे पहले ही ध्यान करने की रीति बतला दी थी, ध्यान में मैंने भगवान का दर्शन किया। मैं गद्गद् हो गया। अपनी सुध बुध जाती रही, पर मेरी यह दशा थोड़ी ही देर तक रही पुनः वह स्वरूप मेरे हृदय में न आया जिसका मैं ध्यान करता था। मैंने हजार प्रयत्न किये, पर सब मेरे प्रयत्न निष्फल हुए। उसी समय मैंने अशरीरिणी वाणी सुनी. नारद, अब इस निन्दित शरीर द्वारा पुनः तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते। सज्जनों की तुम ने सेवा की है, इसलिए तुम्हें मेरा एक बार दर्शन हो गया। अब पुनः तुम जब यह शरीर छोड़ कर मेरे पार्षद होओगे तब तुम्हें मेरा नित्य दर्शन होगा और मेरी भक्ति सदा तुम्हारे हृदय में बनी रहेगी, उसका नाश भी नहीं होगा। तब से मैं वीणा लेकर भगवद् गुण गान करता फिरता था। जब मेरा अन्त हुआ तथा शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न जब मेरे शरीर का नाश हुआ तब प्रलयकाल में ब्रह्मा के साथ मेरा भी प्रादुर्भाव हुआ। यह सत्सङ्ग की महिमा है।

२—घटयोनी अगस्त्य जी ने अपनी कथा इस प्रकार कही है। मेरा जन्म

जलचर थलचर नभचर नाना।
जे जड़ चेतन जीव जहाना। ४॥
मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई॥ ५॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥ ६॥

जल स्थल और आकाश के जो अनेक प्रकार के प्राणी हैं, संसार में और जो जड़ तथा चेतन प्राणी हैं, सब अच्छी बुद्धि, कीर्ति, मुक्ति, ऐश्वर्य तथा कल्याण आदि जो कुछ वे जहाँ जिस स्थान पर जिस उपाय से पाते हैं वह सब सतसंग का प्रभाव है, इसे आप निश्चित समझें। लोक और वेदों में भी दूसरा उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥ ७॥

बिना सत्सङ्ग के विवेक नहीं हो सकता, कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान सत्सङ्ग के द्वारा ही हो सकता है, पर वह सत्सङ्ग तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जबतक राम की कृपा न हो।

संतसंगति मुद-मंगलमूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥ ८॥

यह सत्संग मुद आनन्द और मंगल का मूल्य है, यही फल भी है,

घड़े से हुआ है. मेरे पिता ने एक बार रम्भा नाम की अप्सरा को देखा उन्हें काम उत्पन्न हुआ और वीर्य पात हो गया। उन्होंने अपना वीर्य एक घड़े में रख दिया, समय पाकर उस घड़े से एक बालक उत्पन्न हुआ, वह बालक मैं ही हूँ। मेरा जन्म इस प्रकार निन्दित होने पर भी मुझे यह ऊँची पदवी मिली है, मैं जो इतना शक्तिमान हुआ हूँ, वह सत्सङ्ग का प्रभाव है।

और सब सिद्धियाँ अणिमा महिमा आदि, साधन फूल के समान हैं। अर्थात् सत्संगति से सिद्धियाँ मिलती हैं।

सठ सुधरहिं सत-संगति पाई।
पारसपरस कुधातु सोहाई॥ ९॥

शठ भी सत्सङ्गति पाकर सुधर जाता है, जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श से कुधातु भी सुन्दर धातु बन जाती है। पारस के स्पर्श से लोहा सुवर्ण हो जाता है यह प्रसिद्ध है।

विधि बस सुजन कुसंगति परहीं।
फनि मनि सम निजगुन अनुसरहीं॥ १०॥

यदि किसी कर्म के दोष से सुजन मनुष्य कुसङ्गति में पड़ जाता है, तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। जिस प्रकार मणि साँप के साथ रहने पर भी अपने प्रकाशगुण का त्याग नहीं करता।

विधि हरि हर कविकोविदवानी।
कहत साधुमहिमा सकुचानी॥ ११॥

साधु की महिमा के विषय में हम क्या कह सकते हैं। ब्रह्मा विष्णु शिव कवि विद्वान् आदि की भी वाणी साधु की महिमा का वर्णन करती हुई सकुच जाती है। इन लोगों के द्वारा भी साधुमहिमा का वर्णन नहीं हो सकता।

सो मो सन कहि जात न कैसे।
साक बनिक मनिगुनगन जैसे॥ १२॥

वह सत्सङ्ग महिमा मैं कैसे कह सकता हूँ, उसका वर्णन मुझसे उसी प्रकार नहीं हो सकता, जिस प्रकार शाक बेचनेवाला व्यापारी मणियों के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता है, पहचान नहीं सकता।

दो०—बंदउँ संत समानचित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजुलिगत सुभसुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ॥ ३॥

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
वालविनय सुनि करि कृपा, रामचरन-रति देहु ॥ ४ ॥

सबको समान समझनेवाले सज्जनों को मैं नमस्कार करता हूँ, जिनका न कोई शत्रु है और न मित्र, जिस प्रकार अंजलि मे का सुगन्धित पुष्प दोनों हाथों को बाँये और दहिने को समान रूप से सुवासित करता है उसे किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रहता। हे सन्तगण, आपका स्वभाव सरल है, आप जगत के हितकारी हैं, आपके प्रति मेरा स्नेह और उत्तम भाव है यह आप जानते हैं, मैं वालक के समान विनय करता हूँ, रामचन्द्र के चरणों में मेरा प्रेम हो, यह आशीर्वाद आप दें।

दुर्जन वन्दना

चौपाई-बहुरि बंदि खलगन सतिभाये।
जे विनु काज दाहिनेहु बाये॥ १ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं, पुनः मैं सत्यभाव से प्रेरित होकर खलों की वन्दना करता हूँ। जो विना काम के विना किसी स्वार्थ के दाहिने से बाँये हो जाते हैं, अनुकूल से प्रतिकूल हो जाते हैं। जो स्वभाव से ही प्रतिकूल होते रहते हैं।

परहित-हानि लाभ जिन्ह केरे।
उजरे हरष विषाद बसेरे॥ २ ॥

जो दूसरों की हानि से अपना लाभ समझते हैं, जो किसी के उजड़ने से प्रसन्न होते हैं और बसने से दुःखी होते हैं।

हरि हर जस राकेस राहु से।
पर अकाज भट सहसबाहु से॥ ३ ॥

विष्णु और शिवजी के यशरूपी चन्द्रमा के लिए वे राहु के समान हैं और दूसरों के काम बिगाड़ने में सहस्रबाहु के समान वीर हैं।

जे परदोष लषहिँ सहसाषी।
परहित-घृत जिनके मन माषी॥ ४॥

जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और जिनके मन दूसरों के हितरूपी घृत के लिए मक्खी के समान हैं। घी में पड़ने से मक्खी मर जाती है। खल भी दूसरों के काम बिगाड़ने के लिए अपने प्राण खो बैठते हैं।

तेज कृसानु रोष महिषेसा।
अघअवगुन धन धनी धनेसा॥ ५॥

जिनका तेज अग्नि के समान सब को जलानेवाला है, जिनका क्रोध यमराज के समान सब को मारनेवाला है, जो पाप और दुर्गुणरूपी धन के कुवेर के समान धनी हैं।

उदय केतु समहित सब ही के।
कुंभ करन सम सोवत नीके॥ ६॥

जिनका उदय सभी के कल्याण के लिए केतु के समान है, केतु का उदय अमङ्गल—सूचक है,। खलगण कल्याण के लिए अमंगल सूचक हैं, अर्थात् खलों के उदय से सभी के कल्याण नष्ट हो जाते हैं। उनका सोना अस्त होना कुम्भकर्ण के सोने के समान सभी के कल्याण के लिए है।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं॥ ७॥

जो दूसरों की बुराई के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं, जिस प्रकार हिम—बरसाती पत्थर—खेती का नाश करने को स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

बंदउँ षल जस शेष सरोषा।
सहस बदन बरनइ पर दोषा॥ ८॥

मैं खलों की बन्दना करता हूँ, जो क्रोध करने पर शेष नाग के समान होते हैं, दूसरों के दुःखों का हजारों मुखों से वर्णन करते हैं।

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना।
पर अघ सुनइ सहस दस काना ॥ ६ ॥

पुनः मैं उन खलों को प्रणाम करता हूँ जो पृथुराज के समान है, जो दूसरों के पापों को दस हज़ार कानों से सुनते हैं। पृथुराज ने भगवान से यह वर मांगा था कि मैं आपके यश को दस हजार कानों से सुन सकूँ।

बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही।
संतत सुरानीक हित जेही ॥ १० ॥

इन्द्र के समान खलों को मैं पुनः विनती करता हूँ, जिनको "सुरानीक" सदा प्रिय है, इन्द्र पक्ष में सुरानीक शब्द का अर्थ है देवताओं की सेना, और खल पक्ष में अर्थ है यदि एकी रुचि। अर्थात् इन्द्र को देव सेना प्रिय है और खलों को मदिरा।

बचन बज्र जेहि सदा पियारा।
सहस नयन परदोष निहारा ॥ ११ ॥

उन इन्द्ररूपी खलों को वचनरूपी वज्र सदा प्रिय है, वे वचनरूपी वज्र से लोगों को वेधा करते हैं, और दूसरों के दोष देखने के लिए वे सहस्र नयन भी हैं।

दो०—उदासीन अरि मीतहित, सुनत जरहिं खलरीति।
जान पानि जुग जोरि जनु, बिनती करउँ सप्रीति ॥५॥

उदासीन हित और शत्रु इन सब के कल्याण की बात सुनकर जलना यह खलों की रीति है, यह उनका स्वभाव है, खलों की ऐसी रीति जानकर और दोनों हाथों को जोड़कर मैं प्रेमपूर्वक उनकी विनती करता हूँ।

चौपाई–मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा।
तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥ १ ॥

मैंने अपनी ओर से यह निहोरा विनय किया है, विनय करना सज्जनों

का धर्म है और मैंने उसका पालन किया है, पर वे खलगन अपने स्वभाव को न भूलेंगे अर्थात् मेरी प्रार्थना का उनपर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा।

वायस पलिअहि अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥

बड़े प्रेम से कोई कौआ पाले तो क्या इससे कौआ अपना स्वभाव छोड़ देगा? क्या वह मांस न खायगा? यह असम्भव है। किसी का स्वभाव नहीं छूटता वायस के स्थान में पायस पाठ भी मिलता है।

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुषप्रद उभय बीच कछु वरना॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जन और असज्जन दोनों के चरणों की मैं बन्दना करता हूँ, क्योंकि ये दोनों हीं दुखदायी हैं, पर इनके दुःख देने के क्रम में कुछ भेद है। वह भेद आगे की चौपाई से दिखाया जाता है।

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुन दुख देहीं॥

उन दोनों में का एक अर्थात् सज्जन जब बिछुड़ता है, जब अलग होता है, तब वह प्राण हर लेता है, सज्जनों का वियोग दुःखदायी होता है। दूसरा—असज्जन जब मिलता है, जब वह प्रेम करता है, तब बड़ा कठिन दुःख देता है।

उपजहिं एक संग जगमाहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं, संसार में ऐसा होता है, देखिए कमल और जोंक दोनों एक ही साथ उत्पन्न होते हैं, पर अपने अपने भिन्न गुणों के कारण भिन्न होते हैं, कमल संसार को सुख देता है और जोंक खून चूसता है। यही हाल सज्जन और असज्जन का भी है।

सुधासुरासम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

सज्जन और असज्जन ये दोनों अमृत और मद्य के समान हैं। अमृत और मद्य दोनों की उत्पत्ति का स्थान एक ही समुद्र है, इसी प्रकार सज्जन और असज्जन की भी उत्पत्ति एक ही स्थान से होती है।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक विभूती॥

अपने अपने कार्यों के अनुसार इनको भलाई और बुराई मिलती है, एक अपने उत्तम कार्यों के कारण संसार में यश पाता है, दूसरा अपयश।

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमलसरि व्याधू॥

साधु, अमृत चन्द्रमा और गङ्गा के समान हैं और असाधु विष अग्नि तथा कर्मनाशा नदी के समान हैं। यहाँ "व्याधू" असज्जन के अर्थ में आया है।

गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

सज्जनता के गुणों और दुर्जनता के दुर्गुणों को सब कोई जानते हैं, पर जिसको जो अच्छा लगता है, वह उसी ओर जाता है। उसके लिए वही अच्छा है।

दो०—भले भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु॥ ६॥

सभी अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करते हैं, जो भला है वह भलाई करता है, और जो नीच है वह नीचता करता है। अमृत की प्रशंसा इसलिए होती है कि वह लोगों को अमर करती है और विष की प्रशंसा मारक होने के कारण होती है।

खल अघ अगुन साधु गुनगाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥

खल के पापों और दुर्गुणों की तथा साधु के गुणों की गाथा ये दोनों ही समुद्र के समान अपार हैं, इनका पता लगाना कठिन है।

तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

इसी कारण मैंने यहां साधु और दुर्जनों के थोड़े से गुण और दोष बतलाये हैं, सज्जनों के गुण बतलाये हैं और दुर्जनों के दोष; क्योंकि बिना पहचान के इनका संग्रह और त्याग कैसे किया जा सकता है।

भलेउ पोच सब विधि उपजाए। गनि गुन दोष वेद बिलगाए॥

ब्रह्मा ने इस सृष्टि में भले और बुरे दोनों उत्पन्न किये हैं, और वेदोने उनके गुण दोषों को बताकर उनका भेद बतलाया है।

कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंच गुन-अवगुन-साना॥

वेद पुरान और इतिहास आदि सभी कहते हैं कि यह विधि का प्रपंच —यह सृष्टि गुण और दोषों से भरी है। इसमें गुण और दोष दोनों मिले हैं।

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

दुःख सुख, पाप पुण्य, दिन रात, साधु असाधु, सुजाति और कुजाति ये सब इसी सृष्टि में हैं।

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिय सजीवनु माहुर मीचू॥

दानव और देवता, ऊंचा और नीचा, जीवन देने वाला अमृत तथा मृत्यु देनेवाला विष इसी सृष्टि में हैं।

माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥

प्रकृति, ब्रह्म, जीव, ईश्वर, लक्ष्मी दरिद्रता, निर्धन और राजा ये सब इसी सृष्टि में हैं।

काशी मग सुरसरि क्रमनाशा। मरु मारव महिदेव गवासा॥

काशी मगध, गङ्गा कर्मनाशा, मरुदेश मालवदेश, ब्राह्मण और कसाई ये इसी सृष्टि में हैं।

सरग नरक अनुराग विरागा। निगम अगम गुन दोष विभागा॥

स्वर्ग नरक विषयवासनाओं से प्रेम और उनसे विराग ये सब इसी सृष्टि में हैं। इस प्रकार भले बुरों के साथ यह सृष्टि हुई हैं, वेद शास्त्रों ने इनके गुण दोषों का विभाग किया है।

दो०--जड़ चेतन गुन दोषमय, विस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पै, परिहरि वारि विकार॥ ७॥

ब्रह्मा ने जड़ और चेतन के योग मे यह सृष्टि बनायी है, यह सृष्टि गुण और दोषमय है। सज्जनरूपी हंस दूध के समान इसके गुणों को ग्रहण करते हैं और दोषों को जल के समान त्याग देते हैं।

अस विवेक जब देइ विधाता । तब तजि दोष गुन हि मनुराता ॥

जब भाग्यवश ऐसा—हंसों के समानविवेक मिलता है, तब मनुष्य दोषों को छोड़कर गुणों में अपना मन लगाता है।

काल सुभाउ करम बरियाई । भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई

काल के स्वभाव से, कर्म के दोष से या पूर्वजन्मकृत दुष्ट स्वभाव के कारण सज्जन मनुष्य भी बुराई कर बैठते हैं। उनसे भी बुरे काम हो जाते हैं।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं । दलि दुष दोष विमल जसु देहीं ॥

ऐसों को-जो भूल से गलती करते हैं, हरिजन सुधार लेते हैं और स्वयं यश के भाजन होते हैं, वे दुःख और दोषों को दूर कर देते हैं तथा उसे भगवान् का विमल यश देते हैं।

षलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥

खल मनुष्य भी भलों के साथ से कभी भलाई कर बैठते हैं, पर उनका न छूटने वाला मलिन स्वभाव कभी नहीं छूटता।

लषि सुवेष जगवंचक जेऊ । वेषप्रताप पूजिअहि तेऊ ॥

जो यथार्थ में संसार को ठगनेवाले हैं, पर उन्होंने सज्जनों का सा वेष बनाया है, वे भी वेष के प्रताप से पूजे जाते हैं। वे अपने यथार्थरूप को अपने वेष से छिपा लेते हैं।

उघरहिं अंत न होइ निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ॥

पर अन्त में इनके बनावटी रूप का पता लोगों को लग ही जाता है,

उनका निर्वाह नहीं होता, जिस प्रकार कालनेमि रावण और राहु की दशा हुई थी, इन राक्षसों ने भी छलने के लिए साधु का वेष बनाया था।

किएहु कुवेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

सुन्दर वेष नहीं है, तथापि सज्जनों का सम्मान ही होता है। जैसे जाम्बवान् और हनुमान् का ससार में सम्मान होता है। इनका वेष सुन्दर नहीं है, फिर भी ये पूजे जाते हैं, क्योंकि ये सज्जन हैं।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेदबिदित सब काहू॥

दुर्जनों के साथ से हानि और सज्जनों के साथ से लाभ होता है यह बात लोक और वेद सब जगत् प्रसिद्ध है। इसका उदाहरण सुनिये।

गगन चढ़इ रज पवनप्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच-जलसंगा॥

पवन के साथ से धूलि आकाश में चढ़ जाती है और नीच जल के साथ से धूलि कीचड़ में मिल जाती है, जल को नीच इसलिए कहा गया है कि वह नीचे की ओर जाता है।

साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी॥

तोता और मैना पर भी सज्जन तथा असज्जन के घरमें रहने का प्रभाव पड़ता है, सज्जन के घरमें रहनेवाला रामका स्मरण करता है और दूसरा गाली देता है।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई॥

धूँआँ कुसंगति में पड़ने से कालिख हो जाता है और वह कालिख जब सज्जनों के हाथ आता है, तब उससे स्याही बनाई जाती है जिससे पुराण लिखे जाते हैं।

सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवनदाता॥

वह धूँआँ जल, अग्नि और वायु के साथ होने से मेघ बन जाता है जो संसार के लिए जीवनदाता है, जीवन का अर्थ है जल।

दो—ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लषहिं सुलच्छन लोग ॥ ८ ॥

ग्रह, औषध, जल, पवन और वस्त्र ये कुयोग और सुयोग पाकर अच्छे या बुरे हो जाते हैं, लोग इन्हें सुलक्षण या कुलक्षण कहते हैं ।

सम प्रकाश तम पाष दुहुँ, नामभेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक निरखि, जग जस अपजस दीन्ह ॥९॥

दोनों पक्षों में—कृष्ण और शुक्ल पक्षों में बराबर प्रकाश और अन्धकार है, केवल भाग्यवश इनके नाममें भेद हो गया । एक चन्द्रमा को बढ़ाने-वाला है दूसरा चन्द्रमा का नाशकरने वाला इसलिए इन्हें यश अपयश मिला है, एक को कृष्ण कहते हैं और दूसरे को शुक्ल ।

जड चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
वंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुगपानि ॥१०॥

इस जगत् में जितने जड़ चेतन जीव हैं सब को राममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर मैं उन सबके चरणों की वन्दना करता हूँ ।

देव दनुज नर नाग षग, प्रेत पितर गंधर्व ।
वंदउँ किन्नर रजनिचर, करहु कृपा अब सर्व ॥११॥

देवता, दानव, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस इन सबको मैं प्रणाम करता हूँ, ये सब अब मुझपर कृपा करें ।

आकर चारि लाष चौरासी । जाति जीव जल थल नभवासी ॥
सीय-राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी ॥

जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज इन चार योनियों में जो चौरासी लाख जातिके जीव होते हैं और इनके अतिरिक्त जो जल स्थल तथा आकाशवासी जीव होते हैं, इन सबको मैं सीता-राममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥

कृपा के आकर ये सब मुझे अपना दास समझें और सब मिलकर निष्कपट होकर मुझपर कृपा करें।

निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं। तातें बिनय करउँ सब पाहीं॥

मुझे अपनी बुद्धि तथा बल का भरोसा नहीं है, इसलिए मैं सब को विनय करता हूँ।

करन चहहुँ रघुपति गुनगाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा॥

मैं रामचन्द्रजी की गुणगाथा कहना चाहता हूँ, मैं रामजी के चरित का वर्णन करना चाहता हूँ, पर मेरी बुद्धि छोटी है, वह चरित का अवगाहन नहीं कर सकती, वह चरित का थाह नहीं पा सकती।

सूझ न एकउ अंग उपाऊ। मम मति रंक, मनोरथ राऊ॥

अब क्या उपाय करना चाहिये, उसका एक अंग भी मेरी समझ में नहीं आता, मेरी बुद्धि तो दरिद्र के समान है और मेरा मनोरथ राजा के समान है।

मति अतिनीच ऊँच रुचि आछी। चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी॥

बुद्धि तो बिलकुल छोटी है, पर रुचि ऊँची है, चाहिए तो अमृत पर कहीं छाँछ भी नहीं मिलता।

छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥

ऐसी दशा में भी मैं रामजी के चरित का वर्णन करता हूँ, मेरी इस ढिठाई को सज्जनगण क्षमा करेंगे और बालकों के वचन के समान चित्त लगाकर मेरी बातों को सुनेंगे।

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥

बालक जो तुतली बातें करता है, उसे पिता और माता प्रसन्न होकर सुनते हैं। वसी प्रकार मेरी रचना भी लोकप्रिय होगी।

हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी। जे परदूषन-भूषनधारी॥

जो क्रूर हैं, कुटिल हैं, कुविचारी हैं, जो दूसरों के दूषणों को भूषण के समान धारण करते हैं, वे मेरी इस ढिढाई पर हँसेंगे।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥

अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती, वह सरस हो अथवा नीरस, वह अच्छी हो अथवा बुरी।

जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥

जो दूसरों की उक्ति को सुनकर प्रसन्न होते हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष इस जगत में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सरसरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥

भाई, संसार में बहुत से मनुष्य तालाब और नदियों के समान हैं जो जल पाने पर स्वयं ही बढ़ते हैं। दूसरों को नहीं बढ़ाते।

सज्जन सुकृत सिंधु सम कोई। देषि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

समुद्र के समान पुण्यात्मा कोई विरले ही हैं, जो पूर्णचन्द्रमा को देखकर बढ़ते हैं।

दो०—भाग छोट अभिलाषु बड़, करउँ एक विस्वास।
पैहहिँ सुष सुनि सुजन सब, षल करिहहिँ उपहास॥१२॥

भाग छोटा है और अभिलाष बड़ा है, तथापि एक बात का विश्वास है कि सज्जन मनुष्य हमारी कविता सुनकर सुख पावेंगे और दुर्जन उपहास करेंगे।

षल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिँ कलकंठ कठोरा॥

दुर्जन यदि मेरी हँसी करें तो उससे मेरा लाभही है, क्योंकि काक कोकिल को कठोरकंठ कहता है, अर्थात् उसके शब्द को कर्कश कहता है, अथवा काक सुरीली आवाज़ को कठोर कहता है।

हंसहिं बक दादुर चातक ही। हँसहिं मलिन खल विमल बतकही॥

बगले हंसों को, मेढ़क चातक को हँसते हैं, और मलिन खल निर्मल बातों को हँसते हैं। धर्म की बातों को हँसना खलों का स्वभाव है। अतएव खल यदि हँसे तो इससे यह जाना जायगा कि मेरी कृति निर्मल है।

कवित रसिक न रामपद नेहू। तिन कहँ सुखद हासरस एहू॥

जो न तो कविता के रसिक हैं और न जिनका रामजी के चरणों में प्रेम है, उनके लिए मेरी यह कृति हासरस की सामग्री होगी और इस प्रकार उनको भी यह सुखदायी होगी अर्थात् वे मेरी इस कविता की दिल्लगी उड़ावेंगे।

भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

एक तो यह भाषा का काव्य है, दूसरे मेरी बुद्धि प्रखर नहीं काव्य करने के योग्य नहीं, इन सब बातों से तो मेरी कृति हँसने ही के योग्य है, फिर जो मेरी इस कृति पर कोई हंसे तो उसका दोष क्या ?

प्रभु-पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिनहिं कथा सुनि लागहि फीकी॥

प्रभु के चरणों में जिनकी प्रीति नहीं है और जिनकी समझ भी अच्छी नहीं, उनको यह कथा सुनने में अच्छी नहीं लगेगी।

हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की॥

विष्णु और शिवजी के चरणों में जिनकी प्रीति है, जिनकी बुद्धि भी कुतर्की नहीं है अर्थात् जो केवल दोषों को ही देखना नहीं जानते, उनके लिए रामचन्द्रजी की कथा मीठी है अर्थात् वे रामचन्द्रजी की कथा प्रेमसे सुनेंगे।

राम भगतिभूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥

यह काव्य रामभक्ति से भूषित है, इस बात को मनमें जानकर सज्जन सुनेंगे और वाणी की अर्थात् कविता की भी प्रशंसा करेंगे।

कवि न होऊँ नहिं वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्याहीनू॥

मैं कवि नहीं हूँ, बोलने में भी मेरी प्रवीणता नहीं है, मैं सब कलाओं से तथा सब विद्याओं से हीन हूँ, नितान्त मूर्ख हूँ।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना॥

शब्दों का विन्यास, अर्थ योजना और अलंकार अनेक प्रकार के हैं और छन्द की रचना कवित्त, छप्पै, दोहा, सोरठा आदि के भी अनेक भेद होते हैं।

भावभेद रसभेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥

भाव और रसों के भेद भी अनेक हैं। गुरु राजा आदि के विषय के प्रेम को—जो रस की पोषक सब सामग्रियों के न मिलने के कारण रस-पद प्राप्त नहीं हुआ है, उसे भाव कहते हैं, शृंगार करुण आदि रस प्रसिद्ध हैं। कविता के दोष भी अनेक होते हैं और गुण भी।

कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागल कोरे॥

इस प्रकार काव्य के अनेक भेद हैं, उनका ज्ञान मुझे कुछ भी नहीं, शब्द, अर्थ, अलंकार, छन्द, भाव, रस, गुण, दोष आदि की बातें मैं कुछ भी नहीं जानता, यह मैं कोरे कागज पर लिख कर सत्य कहता हूँ। पुराने समय में कोरे कागज पर झूठ लिखना बड़ा पाप समझा जाता था।

(इस रचना की उपयोगिता)

दो०-भनिति मोरि सब गुन रहित, विस्व विदित गुन एक।
सो विचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्हके विमल विवेक॥१३॥

मेरी कविता किसी काम की नहीं इसमें कोई गुण नहीं है, काव्य संबन्धी कोई गुण नहीं है, हाँ [संसार प्रसिद्ध एक गुण है अर्थात् इसमें रामभक्ति का वर्णन है, उसी गुण की ओर देखकर बुद्धिमान इसे सुनेंगे, जिनके हृदय में निर्मल विवेक है, वे ही मेरी कविता सुनने के अधिकारी हैं।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अतिपावन पुरान-स्रुतिसारा॥

इसमें रामचन्द्रजी का महान् नाम है जो अत्यन्त पवित्र है और पुराण तथा श्रुतियों का सार है।

मंगलभवन अमंगलहारी। उमासहित जेहि जपत पुरारी॥

वह रामचन्द्र जी का नाम मंगल का भवन है और अमंगल को हरने वाला है, जिस नाम को शिवजी पार्वती के साथ जपते हैं अर्थात् जिस नाम को शिव और पार्वती दोनों जपते हैं।

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥

कविता चाहे कितनी ही अच्छी हो, वह बड़े कवि की ही बनायी क्यों न हो, तथापि राम नाम के बिना उसकी शोभा नहीं होती। जिस कविता में राम नाम नहीं, वह किसी काम की नहीं।

बिधुबदनी सब भाँति सवाँरी। सोह न बसन बिना बरनारी॥

कोई स्त्री बड़ी सुन्दरी है वह चन्द्रमुखी है, सब प्रकार से उसका शृंगार किया गया है, तथापि वह वस्त्र पहने नहीं है, तो उसकी शोभा नहीं होती, इसी प्रकार कविता की भी राम नाम के बिना शोभा नहीं होती।

सब गुनरहित कुकविकृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

जिस कविता में कोई गुण नहीं, वह किसी कुकविकी भी बनायी है, पर उसमें राम नाम का यश वर्णन किया गया है—तो बुद्धिमान मनुष्य बड़े आदर के साथ उसे कहते हैं, सुनते हैं, सज्जन भ्रमर के समान गुणग्राही होते हैं, बाहरी रंग रूप की उन्हें परवा नहीं।

जदपि कवित रस एकउ नाहीं। रामप्रताप प्रगट एहि माहीं॥

यद्यपि मेरे इस काव्य में एक भी रस नहीं है, एक भी गुण नहीं है, पर रामचन्द्र जी का प्रताप इसमें प्रकाशित है, रामचन्द्र जी के प्रताप का इसमें वर्णन किया गया है।

सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥

उसी रामप्रताप का ही मुझे भरोसा है, इस पुस्तक में रामचरित है, इस कारण इस पुस्तक के आदर होने की सम्भावना है, सुसङ्ग से किसने बड़प्पन नहीं पाया है, बड़े के साथ से छोटों का भी आदर होता है।

धूँमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगंधवसाई॥

धूँआँ भी अपनी स्वाभाविक कटुता का त्याग कर देता है, सुसंग से धूम भी अपने स्वभाव का त्याग करता है, वह भी अगरु के साथ से सुगन्धित हो जाता है।

भनिति भदेस बस्तु भलि वरनी। रामकथा जग मंगल-करनी॥

यह काव्य भदेश है उत्तम देश नहीं है अर्थात् भद्दी कविता है, पर इसमें जो वर्णन है वह उत्तम है। राम जी की कथा संसार का मंगल करनेवाली है, अतएव मेरे काव्य में गुण न होने पर भी राम कथा के कारण इसका आदर ही होगा।

छं०—मंगल करनि कलिमलि हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनित भलि होइहि सुजनमनभावनी।
भवअंगभूति महान की सुमिरत सोहावनि पावनी॥

तुलसीदास कहते हैं कि राम जी की कथा मंगल करनेवाली है और वह कलि के पापों को दूर करनेवाली है। मेरी कविता रूपी नदी की गति टेढ़ी मेढ़ी है, पर नदी का जल पवित्र है, इसलिए उसकी टेढ़ी मेढ़ी चालों पर कोई ध्यान नहीं देगा, मेरी कविता में भी अनेक दोष हैं, पर उसमें प्रभु का सुयश वर्णित है, इस कारण यह सज्जनों को प्रिय अवश्य होगी, श्मशान की राख भी शिवजी के शरीर में लगने के कारण पवित्र और मनोहर हो जाती है।

दो०—प्रिय लागिहिं अति सबहि मम, भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलयप्रसंग।।१४।।
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियरामजस, गावहिं सुनहिं सुजान।।१५।।

मेरी कविता सब को अच्छी लगेगी, क्योंकि वह रामचन्द्र जी के यश के साथ है, रामचन्द्र के सुयश के कारण मेरी कविता के गुण दोष का कोई विचार न करेगा, जिस प्रकार मलय चन्दन के साथ के कारण लोग वृक्षों का विचार भूल जाते हैं। मलय पर्वत के सभी वृक्ष चन्दन हो जाते हैं, यह किस लकड़ी का चन्दन है यह विचार कोई नहीं करता। काली गाय का दूध बड़ा उत्तम होता है, वह बड़ा गुणकारी है इस कारण लोग उसका पान करते हैं। सीता रामचन्द्रजी के यश को बुद्धिमान ग्रामीण भाषा में भी गाते हैं।

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।।

मणि माणिक और मोती इनकी जैसी शोभा है, जैसी इनकी कान्ति है, वह शोभा पर्वत साँप तथा हाथियों के मस्तक पर नहीं दीख पड़ती, यद्यपि मणि माणिक आदि इन्हीं से उत्पन्न होते हैं।

नृपकिरीट तरुनीतनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।

राजाओं के मुकुटों पर स्त्रियों के शरीर पर इनकी शोभा, इनकी कान्ति बढ़ जाती है, वहाँ जाने पर ये बहुत अधिक शोभा पाते हैं।

तैसेहि सुकबि कबित बुधकहहीं। उपजहिं अनत अनत छबिलहहीं।।

यही बात कविता के सम्बन्ध में भी बुद्धिमान लोग कहते हैं, यह एक जगह उत्पन्न होती है और दूसरी जगह इसका आदर होता है, इसकी शोभा होती है।

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।।

स्मरण करते ही भक्तों के लिए सरस्वती देवी ब्रह्मा के स्थान को छोड़ कर दौड़ी हुई भक्त के पास आती हैं। अर्थात् भक्त यदि कविता करना चाहे तो उस पर भगवती सरस्वती की कृपा होती ही है, वाणी को भी इसकी प्रसन्नता होती है कि उसके द्वारा रामचरित गाया जायगा।

राम चरित सर बिनु अन्हवाये। सो स्रम जाइ न कोटि उपाये॥

सरस्वती के दौड़कर आने का वह श्रम करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं होता। रामचरित रूपी सर में स्नान करने के अतिरिक्त उस श्रम को दूर करने का दूसरा उपाय नहीं।

कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी॥

इस बात को जानकर कि वाणी रामगुण वर्णन ही के लिए है कवि और विद्वान् उस वाणी से भगवान के यश का गान करते हैं, जो भगवद्-यश कलि के पापों को दूर करनेवाला है।

कीन्हे प्राकृतजन गुनगाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥

यदि उस वाणी से साधारण मनुष्यों का गुण गान किया जाय तो सरस्वती देवी सिर धुन धुन बहुत पछताती हैं, साधारण राजा महाराजाओं के गुण वर्णन से सरस्वती को बहुत दुःख होता है।

हृदय सिंधु मति सीपिसमाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना॥

हृदय समुद्र है, बुद्धि सीप है और वाणी स्वाती के समान है, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं।

जौ बरषइ बरबारि विचारू। होहिं कवित मुकुता मनि चारू॥

उसी स्वाति से उत्तम विचार रूपी जल की वर्षा होती है, जिससे कविता रूपी सुन्दर मुक्ता मणि उत्पन्न होता है। स्वाति का जल सीप में पड़ने से मोती उत्पन्न होता है, इस प्रसिद्धि को यहां काव्य के रूपक में बताया है।

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहियहि, राम चरित वर ताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥१६॥

उन कविता रूपी मोतियों को युक्तियों से—वचन विन्यास के ढंग से वेधकर रामचरितरूपी उत्तम तागे में गूथते हैं, इस प्रकार जो माला तयार होती है, उसे सज्जनगण अपने विमल हृदय में धारण करते हैं, जिससे प्रेमरूपी शोभा होती है।

(विनय-प्रदर्शन)

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला ॥

इस कराल कलिकाल में जो उत्पन्न हुए हैं, उनके कर्म तो कौओं के समान है और वेष हंस के समान। अर्थात् भीतर पाप भरा है और बाहर से सुन्दर बने ठने सज्जन बने रहते हैं।

चलत कुपंथ वेदमग छाँड़े। कपटकलेवर कलिमल भाँड़े ॥

वे वेदिक मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में चलते हैं, वैदिक धर्म का त्यागकर आधुनिक पंथों का अनुसरण करते हैं, उनका शरीर ही कपट का है, और वे पाप के पात्र हैं।

वंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन-कोह-काम के ॥

यथार्थ में वे वंचक हैं, ठग हैं, पर राम के भक्त कहे जाते हैं, वे सुवर्ण क्रोध और काम के किंकर हैं, दास है। वे स्वार्थ साधन के लिए रामभक्त हैं।

तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिग धरमध्वज धँधक धोरी ॥

इस प्रकार के वंचकों में मेरी प्रथम रेखा हैं, अर्थात् इनमें मैं अग्रगण्य हूँ, मैं धर्मध्वजी हूँ, अपने स्वार्थों के लिए जिसने धर्म के चिन्ह धारण किये हैं उसे धर्मध्वजी कहते हैं। मैं संसार का बोझ ढोने वाला बैल हूँ मुझे धिक्कार।

जौ अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥

यदि मैं अपने सब अवगुन कहूँ, तो कथा बढ़ जायगी और मेरे दुर्गुणों का अन्त न होगा।

ताते मैं अति अलप बषाने। थोरे महँ जानहहिं सयाने॥

इसीलिए मैंने अपने थोड़े ही दुर्गुण कहे हैं, जो लोग सयाने है, अनुभवी और बुद्धिमान हैं, वे इस थोड़े से ही सब बात जान जायंगे।

समुझि बिबिध विधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहिं षोरी॥

अनेक प्रकार की मेरी विनतियों को, मेरी प्रार्थनाओं के भाव को समझ कर, कोई भी कथा सुनकर त्रुटियों के लिए मुझे दोष न देगा, क्योंकि मैंने अपनी त्रुटियाँ आप ही बतला दी हैं।

एतेहु पर करिहहिं जे संका। मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका॥

इतने पर भी—इतना समझाने बुझाने पर भी यदि कोई कुछ तर्क वितर्क करे, यदि किसी प्रकार की शंका करे तो वह बेचारा मुझ से भी अधिक मूर्ख है।

कबि न होऊँ नहिं चतुर कहावऊँ। मति अनुरूप रामगुन गावऊँ॥

मैं कोई कवि नहीं, मैं चतुर भी नहीं कहा जाता, भली बुरी जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार मैं राम का गुण गान करता हूँ।

कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरतसंसारा॥

रामचन्द्र जी का अपार चरित कहाँ है, और संसार में—विषयवासनाओं में लगी हुई मेरी बुद्धि कहाँ है, उन दोनों का संयोग कैसे हो सकता है अर्थात् मेरी बुद्धि के द्वारा राम चरित का वर्णन किया जाना कैसे संभव है।

जेहि मारुत गिरिमेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥

जो वायु मेरुपर्वत को उड़ा देता है उसके लिए रूई कौन चीज, जिस प्रवल वायु के लिए सुमेरु पर्वत कुछ नहीं उसके सामने रूई के ठहरने की बात कैसे की जाय, यही वात मेरे द्वारा रामचरित के वर्णन की भी है।

समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

रामचन्द्रजी की प्रभुता अमित है, उसका वारपार नहीं है, यह बात समझ कर मेरा मन रामचन्द्रजी के चरित के वर्णन करने में कातर हो रहा है।

दो०—सारद सेष महेस विधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान॥ १७॥

सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, तथा वेद और पुराण आदि भी जिसके गुणों का गान नेति नेति कहकर करते हैं, अर्थात् उन्होंने भी रामचरित का अन्त नहीं पाया।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥

सभी इस वातको जानते हैं कि प्रभु की प्रभुता का अन्त नहीं, फिर भी सभी ने उनके गुणोंका वर्णन किया है, विना रामचरित गाये कोई रहा नहीं।

तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति-वहु भाषा॥

वेदोंने इसका कारण वतलाया है, रामचरित के भजन के अनेक प्रभाव उन्होंने वतलाये हैं अर्थात् यद्यपि रामचरित का अन्त नहीं है, तथापि उसके गान से अपना तो कल्याण होगा, अपनी तो मुक्ति होगी।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥

यद्यपि भगवान एक हैं, इच्छा, रूप और नाम रहित हैं, उनका जन्म नहीं होता, वे सतचित और आनन्दस्वरूप हैं, वे सब तेजों में श्रेष्ट तेज हैं अथवा वेही प्राप्त करने के उत्तम स्थान हैं।

व्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥

यद्यपि वे भगवान व्यापक हैं और विराटरूप हैं, तथापि वे शरीर धारण करके अनेक प्रकार के चरित करते हैं।

सो केवल भगतन्ह हितलागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥

भगवान वह सब चरित केवल भक्तों के लिए करते हैं, वे परम कृपालु हैं और वे शरण में आये हुओं पर प्रेम करते हैं।

जेहि जनपर ममता अति छोहू। जेइ करुना करि कीन्ह न कोहू॥

भगवान जिसपर ममता करते हैं अर्थात् जिसे वह अपना समझते हैं, वे उसपर दया करते हैं, अतएव दया के वशवर्ती होकर—उससे अपराध होने-पर भी उसपर क्रोध नहीं करते।

गई बहोर गरीब-नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

वे दीनदयाल अपने भक्तों की बिगड़ी बात बना देते हैं, उनका स्वभाव सरल है, वे बलवान हैं, वे स्वामी हैं।

बुध बरनहिँ हरिजस अस जानी। करहिँ पुनीत सुफल निज बानी॥

यही-भगवान को दीनदयाल जानकर पण्डितगण हरि के गुणों को गाते हैं और अपनी वाणी को सुफल तथा पवित्र करते हैं।

तेहिबल मैं रघुपति गुन-गाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा॥

इसी बात को देखकर, इसीपर विश्वास कर, मैं रामचन्द्रजी के चरणों में सिर नवाकर उनका गुण वर्णन करता हूँ।

मुनिन्ह प्रथम हरि-कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिँ भाई॥

पहले के मुनियों ने भगवान के चरित का वर्णन किया है, उन्हींके बतलाये रास्तेपर चलना मेरे लिए सुगम है।

दो०—अति अपार जे सरित वर, जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु स्रम पारहि जाहिँ॥१८॥

नदी अपार है, उसको पार करना कठिन है पर राजा ने उसपर पुल बँधवा दिया, उस पुलपर चढ़कर बहुत छोटी चींटी भी विना परिश्रम के उस नदी को पार कर जाती है।

एहि प्रकार बल मनहिँ देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सोहाई॥

इस प्रकार मन को बल दिखाकर रामजी की कथा कहता हूँ, इस प्रकार की समझ से मेरे मन की कायरता दूर होगी और यह समझकर कि पहले के मुनियों ने अगाध रामचरित के पार जाने का मार्ग बनाया है, वह उत्साह के साथ इस काम में लगेगा।

व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बषाना॥

व्यास आदि अनेक कविश्रेष्ट होगये हैं, जिन्होंने आदरपूर्वक भगवान के सुयश का वर्णन किया है।

चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे॥

उन कवियों के चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथों को पूरा करें।

कलिके कविन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुनग्रामा॥

कलिके उन कवियों को भी मैं प्रणाम करता हूँ जिन्होंने रामजी के गुणसमूह का वर्णन किया है।

जो प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बषाने॥

प्राकृत भाषा के जो परम चतुर कवि हैं, जिन्होंने भगवान के चरित का वर्णन किया है, उनको भी मैं प्रणाम करता हूँ।

भये जे अहहिँ जे होइहहिँ आगे। प्रनवउँ सबहिं कपट सब त्यागे॥

जो कवि होगये हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो भविष्य में होंगे, उन सब कवियों को कपट छोड़कर मैं प्रणाम करता हूँ। शुद्धभाव से उन्हें प्रणाम करता हूँ।

होहु प्रसन्न देहु वरदानू। साधुसमाज भनिति सनमानू॥

वे सब प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान दें कि साधुसमाज में मेरी कविता का आदर हो। सज्जनों के समाज में मेरी कविता आदर से पढ़ी जाय।

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो स्रम बादि बालकवि करहीं॥

जिस ग्रन्थ का आदर पण्डितगण नहीं करते, उसके लिए किया गया परिश्रम व्यर्थ है और मूर्ख कविही वैसा परिश्रम करता है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य ये वेही अच्छे होते हैं, जिनसे गङ्गा के समान सबका कल्याण हो।

राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहिं अँदेसा॥

रामकी कीर्ति रमणीय है और मेरी वाणी भद्दी है, इसी असमंजस का अर्थात् इसी बेजोड़-मेल का मुझे सन्देह है। अर्थात् मेरी वाणी से रामचरित का वर्णन किया जा सकेगा या नहीं, यही शंका है।

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सोहावनि टाट पटोरे॥

यह कठिनता भी तुम कवियों की कृपासे सरल हो जायगी, जिस प्रकार रेशमी वस्त्र पर टाट की बखिया भी, यदि समझनेवाला समझे तो अच्छी मालूम होती है।

दो०—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥ १९॥

जो कविता सरल है, जिसका अर्थ सीधा है, जिसमें भगवान की कीर्ति का वर्णन किया गया है, उसेही बुद्धिमान आदर की दृष्टि से देखते हैं, स्वाभाविक शत्रुता भूल कर भी मनुष्य उस कविता को सुनता है और उसकी प्रशंसा करता है।

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहिँ मतिबल अतिथोरि।
करहु कृपा हरि जस कहउँ, पुनि पुनि करऊँ निहोरि ॥ २० ॥

पर वैसा विमल बुद्धि के बिना नहीं हो सकता, न तो मेरी बुद्धि ही विमल है और न मेरी कविता ही वैसी है। मेरा बुद्धिबल बहुत ही थोड़ा है, अतएव हे कवियों, आप लोग कृपा करें जिससे मैं हरियश का वर्णन करूँ, मैं वार वार यही प्रार्थना करता हूँ।

कवि कोबिद रघुवर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लषि, मोपर होहु कृपाल ॥ २१ ॥

रघुवर चरित मानसरोवर के समान है और कविकोविदगण वहाँ के सुन्दर हंस हैं, वे मुझ बालक की विनय सुनकर तथा मेरी प्रीति देखकर, मुझपर कृपा करें।

सो०—बंदउँ मुनिपद कंजु, रामायन जेहिँ निरमयेउ।
सखर सकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित॥

मैं उन मुनि के चरणों को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने रामायण बनायी है, जो कठिन भी है और कोमल भी है, जो दोषों से तो रहित है, पर दूषणयुक्त है, जो खर और दूषण नामक राक्षस की कथा से युक्त है, और कोमल तथा दोष रहित है।

बंदउँ चारिउ वेद, भववारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहु षेद, वरनत रघुवर विसदजस ॥

मैं चारों वेदों को नमस्कार करता हूँ, जो इस संसाररूपी समुद्र के लिए जहाज के समान हैं और जिन्हें स्वप्न में भी रघुनाथ के विमलयश के वर्णन करने में खेद नहीं होता। अर्थात् जो सदा रामचन्द्रजी का यश गाया करते हैं।

बंदउँ विधिपद रेनु, भवसागर जेइ किन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे षल विष बारुनी ॥

मैं ब्रह्मा की चरणधूलि की वन्दना करता हूँ। जिन ब्रह्मा ने यह संसाररूपी समुद्र बनाया है, जिस संसार-समुद्र के अमृत चन्द्रमा तथा कामधेनु सन्तजन हैं और विष तथा मदिरा के समान खल हैं।

दो०—विबुध विप्र बुध ग्रह चरन, वंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि॥ २२॥

देवता, ब्राह्मण और ग्रहों को भी नमस्कार करके तथा हाथ जोड़कर मैं कहता हूँ, आप लोग प्रसन्न होकर मेरे समस्त सुन्दर मनोरथों को पूरा करें।

पुनि वंदउँ सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत-मनोहरचरिता॥

पुनः मैं सरस्वती और गङ्गा को प्रणाम करता हूँ, ये दोनों ही पवित्र हैं तथा इन दोनों का चरित मनोहर है।

मज्जन पान पापहर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका॥

एक अर्थात् गङ्गा स्नान और पान करने से पापों को हरती है और दूसरी अर्थात् सरस्वती कहने सुनने से अविवेक को हरती है। कहना सुनना अर्थात् पढ़ाना पढ़ना।

गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिनदानी॥

गुरु, पिता और माता, शिव पार्वती के समान है, ये दीनों के बन्धु हैं और सदा दाता है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। अथवा गुरु पिता और माता के समान महेश और भवानी हैं, जैसे माता पिता अपनी सन्तान पर दया करते हैं; वैसे ही ये भी दीनबन्धु और सदा दाता हैं।

सेवक स्वामि सखा सियपीके। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के॥

क्योंकि वे सीतापति रामचन्द्रजी के सेवक, स्वामी और मित्र हैं, तथा तुलसी के सब प्रकार से निश्छल हित करनेवाले हैं।

कलिबिलोकिजगहित हर गिरिजा। साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा॥

जिन शिव और पार्वती ने कलि के आगमन को देखकर, संसार के कल्याण के लिए अनेक शाबरी मन्त्र बनाये। कलियुग के लोगों के शक्तिहीन और आचारहीन होने के कारण वैदिक मंत्र सिद्ध नहीं हो सकते, इस कारण दयावश शिव-पार्वती ने लोगों के कल्याण के लिए शाबर मन्त्र बनाये।

अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥

उन मन्त्रों के अरथ भी आपस में मेल नहीं खाते, उनके न तो कुछ अर्थ हैं, और न उनका जप ही करना पड़ता है, पर उन मन्त्रों का प्रभाव प्रत्यक्ष है, यह महेश का प्रताप है। अर्थात् शिवके प्रताप से ही ऐसे बेढंगे मन्त्रों से भी इष्टसिद्धि होती है।

सो महेश मोहिं पर अनुकूला। करहिं कथा मुदमंगलमूला॥

वे महेश मुझपर अनुकूल हैं, वे मेरी लिखी कथा को मुद और मंगल का मूल बनावेंगे।

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

शिव और पार्वती का स्मरण कर तथा उनकी प्रसन्नता पाकर, मैं चित्त के उत्साह से रामचन्द्रजी का चरित गाता हूँ।

भनिति मोरि सिवकृपा बिभाती। ससि समाजमिलि मनहु सुराती॥

शिवजी की कृपा से मेरी कविता भी बहुत सुन्दर मालूम पड़ेगी, जिस प्रकार चन्द्रमा के साथ रात्रि शोभित होती है।

जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहिं रामचरन अनुरागी। कलि मलरहित सुमंगल भागी॥

जो सचेता अर्थात् सावधान मनुष्य प्रेमपूर्वक रामजी की कथा को कहेगा, सुनेगा और समझेगा, वह रामजी के चरणों का अनुरागी होगा। उसके सब पाप नष्ट हो जायंगे और उसे मंगल प्राप्त होगा।

दो०—सपनेहुँ साचेहु मोहि पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ ॥ २३ ॥

यदि शिव पार्वती की मुझ पर थोड़ी भी सत्य सत्य कृपा है, तो इस भाषा कविता के प्रभाव से जो मैं कहता हूँ वह सत्य होगा।

बंदउँ अवधपुरी अतिपावनि। सरजूसरि कलि-कलुष नसावनि ॥

अति पवित्र अवधपुरी को मैं प्रणाम करता हूँ और कलिके पापों को दूर करनेवाली सरयू नदी को भी प्रणाम करता हूँ।

प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥

पुनः मैं उस अवधपुरी के पुरुषों और स्त्रियों को भी प्रणाम करता हूँ, जिन पर प्रभु की थोड़ी कृपा नहीं है, किन्तु बहुत अधिक कृपा है।

सिय-निंदक अघओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये ॥

रामचन्द्रजी ने सीताजी की निन्दा करनेवाले एक अयोध्या वासी का भी पाप समूह नष्ट किया तथा अन्य वहाँ के वासियों को शोकहीन बनाकर बसाया। अथवा वैकुण्ठ में स्थान दिया।

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माँची ॥

मैं कौशल्या को नमस्कार करता हूँ जो प्राची (पूर्व) दिशा के समान है, और जिनकी कीर्ति चारों दिशाओं में छायी हुई है। कौशल्या पूर्व दिशा के समान क्यों हैं, यह आगे की चौपाई से बतलाया जाता है।

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिश्व सुखद खल कमल तुसारू ॥

जिस प्राची दिशारूपी कौशल्या से रामचन्द्ररूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट होते हैं, जो संसार को सुख देनेवाले हैं तथा खलरूपी कमल के तुषार हैं अर्थात् खलों के नाश करनेवाले हैं।

दशरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी ॥
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥

राजा दशरथ के साथ सब रानियों को पुण्य और मंगल की मूर्ति समझकर मन, वचन, कर्म से प्रणाम करता हूँ, वे अपने पुत्र के सेवक समझ कर मुझपर कृपा करें।

जिन्हहिं विरचि बड़ भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु-माता।

जिन दसरथ को उत्पन्न करके ब्रह्माने बड़ाई पायी, भला रामचन्द्र के पिता माता की महिमा की कोई अवधि हो सकती है, और उन माता पिताओं को उत्पन्न करनेवाला तो और बड़ा है।

सो०—बंदउँ अवध भुआल, सत्य प्रम जेहि रामपद।
बिछुरत दीन दयाल, प्रिय तनु तृन इव परि हरेउ॥

अवधभुआल अयोध्या के राजा दशरथ को मैं प्रणाम करता हूँ जिनका रामजी के चरणों में सत्य प्रेम है, जिन्होंने दीनदयाल रामचन्द्र-जी के बिछुरते ही तथा अलग होते ही तृण के समान अपने प्रिय शरीर का त्याग किया।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि रामपद गूढ़ सनेहू॥

विदेह राजा जनक को भी परिजनों के साथ मैं प्रणाम करता हूँ, जिनका रामचन्द्रजी में गूढ़ स्नेह है।

जोग भोग महँ राषेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

जनकजी ने अपने योग को, पारमार्थिक भाव को भोग में, सांसारिक विलास में गुप्त करके रखा था, जो रामचन्द्रजी को देखते ही प्रकट हो गया।

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥

पहले मैं भरत के चरणों को प्रणाम करता हूँ, जिनके व्रतके नियमों का वर्णन नहीं हो सकता।

रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

जिनका मन लोभी भ्रमर के समान रामचरणरूपी कमल का पास नहीं छोड़ता, उससे अलग नहीं होता।

बंदउँ लछिमन पदजलजाता। सीतल सुभग भगत सुषदाता॥

लक्ष्मण के शीतल सुन्दर और भक्तों के सुखदाता चरणकमलों की मैं वंदना करता हूँ।

रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भएउ जस जाका॥

जिस लक्ष्मणजी का यश रामचन्द्रजी की कीर्ति की विमल पताका का दण्ड रूप है, पताका दण्ड के सहारे खड़ी रहती है, रामचन्द्रजी की कीर्ति की पताका लक्ष्मण जी के यश के सहारे हैं।

सेष सहस्र सीस जगकारन। जो अवतरेउ भूमि-भय टारन॥

वे लक्ष्मणजी जगत् के कर्ता और सहस्र मस्तकधारी शेष हैं, जिन्होंने भूमि का भय दूर करने के लिए अवतार धारण किया है।

सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुणाकर॥

वे सुमित्रा के पुत्र, गुणों के आकर, कृपा के सिन्धु, मुझपर सदा अनुकूल रहें।

रिपु सूदन पदकमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥

रिपुसूदन अर्थात् शत्रुघ्न के चरणों को मैं प्रणाम करता हूँ, जो शूर हैं, सुशील हैं तथा भरत के अनुगामी हैं।

महावीर विनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आपु बषाना॥

महावीर हनुमान की मैं विनती करता हूँ, जिनका यश स्वयं रामचंद्रजी ने वर्णन किया था।

सो०—प्रनवउँ पवन कुमार, षल बन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिँ राम सर चाप धर*॥

* लङ्का से लौट आने पर जब रामचन्द्र का राज्याभिषेक हो गया तब एक दिन रामचन्द्रजी सुग्रीव, अंगद आदि वानरों को उत्तम उत्तम गहने आदि

मैं पवन कुमार हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ, जो खलों के वन के लिए अग्नि हैं अर्थात् खलों के नाश करनेवाले हैं, जो ज्ञान की खान और जिनके हृदयरूपी गृह में धनुष चाप धारण करनेवाले रामजी निवास करते हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
वंदउँ सब के चरन सोहाए। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥

सुग्रीव, जाम्बवान्, विभीषण तथा अंगद आदि और वानर समाजको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन लोगों ने नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी श्रीरामचन्द्रजी को पाया था।

रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते॥
वंदउँ पदसरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

पारितोषिक देने लगे। सुग्रीव, अंगद आदि को पारितोषिक देकर रामचन्द्र ने एक उत्तम मणिमुक्ता जड़ित हार सीताजी के गले में डाल दिया, सीता ने उस हार को प्रणाम कर स्वीकार किया पुनः अपने हाथों में ले लिया। हाथ में हार लेकर सीता ने एक बार राम की ओर देख पुनः वानरों की ओर देखा। यह देखकर रामचन्द्र ने कहा आप क्या चाहती हैं, यह हार आपका है इस पर आपका अधिकार है, आप इसे जो चाहें सो कर सकती हैं। यह सुनकर सीता ने वह हार हनुमान के गले में डाल दिया। हनुमान ने प्रणाम किया। पुनः वे उस माला को लेकर उसका एक एक दाना तोड़ने लगे। यह देखकर सीता ने पूछा, हनुमान यह बहुमूल्य और उत्तम हार मैंने तुम्हें दिया। जिसे बहुत लोग चाहते थे और तुम इसकी यह दुर्दशा करते हो। हनुमान ने कहा, मैं देखता हूँ कि इसमें राम नाम है कि नहीं। यह सुनकर सुग्रीव ने शङ्का से कहा कि तुम्हारे शरीर में भी तो राम नाम नहीं है, तब हनुमान ने अपना कलेजा फाड़ कर दिखा दिया। हनुमान के शरीर के भीतर राम नाम देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, लोग धन्य धन्य कहने लगे। राम ने और सीता ने भी प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया।

रामचन्द्रजी के चरणों की उपासना करनेवाले जितने हैं, पशु, पत्ती, देवता, मनुष्य, राक्षस आदि जो कोई हैं, उनके चरणों को मैं नमस्कार करता हूँ, जो बिना किसी काम के अर्थात् निष्काम रामजी की भक्ति करते हैं। सकाम भक्त से निष्काम भक्त श्रेष्ठ होता है।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिज्ञान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहिं धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

शुकदेव, सनक, सनन्दन आदि तथा भक्त मुनि नारद—जो मुनियों में श्रेष्ठ हैं, विज्ञान जानने वाले हैं, उनको भूमिष्ठ होकर मैं प्रणाम करता हूँ, वे मुनिश्रेष्ठ अपना जन जान कर मुझ पर कृपा करें।

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधानकी॥
ताके जुगपदकमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥

जनकसुता जगत्‌जननी जानकीजी को मैं प्रणाम करता हूँ, जो करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजी की अत्यन्त प्रिय हैं, जिनकी कृपा होने से मैं निर्मल बुद्धि पाऊँगा।

पुनि मन बचन करम रघुनायक। चरन कमल बंदउ सब लायक॥

पुनः रामजी के चरणों को मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ, जो रघुनाथजी सब प्रकार से योग्य हैं।

राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

जो रघुनाथ राजीवनयन हैं अर्थात् कमल के समान उनके नेत्र हैं, जो धनुष और बाण धारण करते हैं, भक्तों की विपत्तियों का नाश करते हैं, और सुख देते हैं।

दो०—गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥ २४॥

शब्द और अर्थ तथा जल और उसकी तरङ्ग ये दो नामों से पुकारे जाते हैं सही, पर ये भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं, शब्द से अर्थ और जल से तरङ्ग

अलग नहीं किये जा सकते, उसी प्रकार सीता और राम ये दो नामों से कहे जाते हैं पर भिन्न नहीं हैं, ये दोनों एक ही हैं, केवल नाम दो हैं, ऐसे श्रीसीताराम को दुःखी मनुष्य अत्यन्त प्रिय है।

वंदउँ राम नाम रघुवर के। हेतु कृसानु भानु हिमकर के॥

रघुनाथजी के राम इस नाम को मैं प्रणाम करता हूँ, जो अग्नि सूर्य और चन्द्रमा का भी कारण है।

विधिहरिहरमय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुननिधान सो॥

जो राम नाम, ब्रह्मा विष्णु और शिव स्वरूप है, वेदों का जो प्रान है, जो अगुण है अर्थात् सत्व, रज, तम आदि गुणों से परे है, जो अनुपम है अर्थात् अद्वितीय है। जिसके समान दूसरा नहीं है, और गुण—दया दाक्षिण्य आदि का भाण्डार है।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥

जिस राम नाम महामन्त्र को शिवजी सदा जपते हैं और जिस राम नाम का उपदेश शिवजी मुक्त के लिये काशी में लोगों को देते हैं।

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ* ॥

उस राम नाम की महिमा गणेश जी जानते हैं, जिसके प्रभाव से वे सब देवताओं में पहले पूजे जाते हैं।

---

* एक बार देवताओं में इस बात पर तर्क वितर्क होने लगा कि हम लोगों में सब से बड़ा कौन है जिसकी पहले पूजा हो। किसी ने ब्रह्मा को बतलाया, किसी ने इन्द्र को और किसी ने किसी दूसरे को : इस प्रकार बहुत देर तक तर्क वितर्क होता रहा और कुछ निर्णय न हो सका। तब सब देवता मिलकर ब्रह्मा के पास गये और उन लोगों ने अपना अभिप्राय बतलाया। ब्रह्मा ने कहा, जो विराट की सबसे पहले प्रदक्षिणा करके लौट आवे, वही श्रेष्ट और प्रथमपूज्य है। यह सुनते ही देवताओं ने अपने अपने वाहनों को दौड़ाया, किसी का घोड़ा दौड़ा, किसी का मृग, किसी का भैंसा और

जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उलटा जापू॥

आदिकवि वाल्मीकि इस नाम के प्रताप को जानते हैं जो, उलटा नाम जपने पर भी शुद्ध हो गये, उनके सब पाप दूर हो गये। वाल्मीकि को राम राम जपने का सप्तर्षि ने उपदेश दिया, पर वे शुद्धउच्चारण न कर सके, मरा मरा कहने लगे तथापि उनका उद्धार हुआ।

सहस नाम सम सुनि सिव वानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥

राम नाम हजार नामों के तुल्य है, शिवजी से ऐसा सुनकर पार्वती ने

किसी का मोर। पर गणेश बड़ी चिन्ता में पड़े, उन्होंने कहा मेरा शरीर स्थूल, मेरा वाहन मूसा, भला मैं इस दौड़ में कैसे पार पा सकता हूँ। बहुत सोच विचार कर उन्होंने यह निश्चय किया कि मैं भगवान् के नाम की ही प्रदक्षिणा करूंगा। विराट का नाम और उनका शरीर दोनों ही एक हैं। अतएव उन्होंने ऐसा ही किया। तबतक देवता भी प्रदक्षिणा करके लौट आये। इन लोगों ने ब्रह्मा से पूछा, महाराज, हम लोगों में पहले किसने प्रदक्षिणा की है। तब ब्रह्मा ने गणेश के कृत्यों को वर्णन किया। तब से गणेशजी की सब देवताओं के पहले पूजा होती है।

* पद्मपुराण में यह कथा इस प्रकार लिखी है, एक बार शिवजी ने पार्वती से भोजन करने चलने के लिए कहा। पार्वती ने कहा—मैंने अभी जप नहीं किया है अतएव आप भोजन करें, मैं जप करके भोजन करूँगी। यह सुनकर शिवजी ने पार्वती की बड़ी प्रशंसा की, पार्वती विष्णु भक्त हैं और प्रतिदिन विष्णु मन्त्र का जप किया करती हैं, यह जान शिवजी बड़े प्रसन्न हुए, शिवजी ने पार्वती से कहा, देवि आप धन्य हैं। मैं तो राम नाम का जप कर लिया करता हूँ, जो आपके सहस्र नाम जपने के बराबर है। शिवजी की वाणी सुनकर पार्वती ने राम नाम का जप किया और उन्होंने उनके साथ भोजन किया। इसी सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध श्लोक कहा जाता है। "राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्र नाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥"

इसका जप किया और अपने प्रिय शिव के साथ भोजन किया (जेंई का अर्थ है भोजन करना)

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥

शिवजी पार्वती के हृदय का अभिप्राय जानकर प्रसन्न हुए और पार्वती को स्त्रियों में श्रेष्ट बनाकर अपने शरीर का भूषण बनाया अर्थात् अर्धाङ्ग में उन्हें स्थान दिया।

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन अमी को॥

रामनाम के प्रभाव को शिवजी बहुत अच्छी तरह जानते हैं, इसी नाम के प्रताप से शिवजी को गरल से भी अमृत का फल हुआ, अर्थात् गरल से भी उनकी कोई हानि नहीं हुई किन्तु लाभ ही हुआ।

दो०-बरषा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन भादव मास॥ २५॥

रामचन्द्रजी की भक्ति वर्षा ऋतु है, भक्त धान है, रामनाम के जो श्रेष्ट दो रा और म अक्षर हैं वे सावन भादों मास हैं। सावन भादों के महीने में वर्षा होती है जिससे धान बढ़ता है, रामनाम के जपने से भक्ति होती है, जिससे भक्तों की वृद्धि होती है।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥

रामनाम के अक्षर मधुर हैं और मनोहर हैं, ये दोनों अक्षर अक्षरों के नेत्र हैं अर्थात् प्रधान हैं, प्राणियों को हृदय से इन दोनों वर्णों को देखना चाहिए। इनका ध्यान तथा जप करना चाहिए।

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु पर लोक निबाहू॥

सभी इनका स्मरण कर सकते हैं, क्योंकि इनका उच्चारण कठिन नहीं दूसरे अधिकार का बखेड़ा नहीं, ये सभी के सुखदायी हैं, इनके स्मरण करने से लोक में लाभ होता है और परलोक में निर्वाह।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लषन सम प्रिय तुलसी के॥

ये दो अक्षर कहने सुनने और स्मरण करने में बड़े ही सुन्दर हैं, ये तुलसीदास को राम और लक्ष्मण के समान प्रिय हैं। तुलसीदास शब्द और अर्थ में भेद नहीं मानते, अतएव नाम और नामी को समान प्रिय उन्होंने कहा है।

बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥

उच्चारण करने में ये दोनों अक्षर अलग अलग मालूम पड़ते हैं, प्रीति में इससे अन्तर आता है, पर वस्तुतः ये भिन्न भिन्न नहीं हैं, जिस प्रकार ब्रह्म और जीव सदाके साथी हैं, संसार की दशा में केवल दो नाम हैं, उसी प्रकार ये दो अक्षर हैं।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक विसेषि जनत्राता॥

ये दोनों भाई नर और नारायण के समान हैं, ये संसार के पालन करनेवाले हैं, तथा विशेष कर अपने भक्तों के रक्षक हैं।

भगति सुतिय कल करन विभूषन। जग हित हेतु विमल विधु पूषन॥

ये दोनों अक्षर भक्तिरूपी कामिनी के सुन्दर कर्ण भूषण हैं और जगत के कल्याण के लिए निर्मल चंद्रमा और सूर्य हैं। शान्तिदायक और अंधकार नाशक।

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥

इनमें अमृत के समान स्वाद है और सुगति अर्थात् मुक्ति के समान तृप्ति है। राम उच्चारण करने का स्वाद अमृत के समान है और तृप्ति भक्ति के समान है, भक्ति होने पर किसी बात की चाह नहीं रह जाती। ये दोनों अक्षर कच्छप और शेष के समान पृथिवी के धारण करने वाले हैं।

जन मन मंजु कंज मधु करसे। जीह जसोमति हरि हलधर से॥

मनुष्यों के सुन्दर कमलरूपी मन के लिए ये भ्रमर हैं, जिह्वारूपी यशोदा के लिए श्रीकृष्ण और बलराम के समान हैं। श्रीकृष्ण और बलराम

जिस प्रकार यशोदा के आनन्ददायी हैं उसी प्रकार राम ये दो अक्षर जीभ के लिए आनन्ददायी हैं, अर्थात् इनके उच्चारण से जीभ को आनन्द आता है।

दो०—एक छत्र एक मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥ २०॥

इन दोनों में का एक अक्षर सब अक्षरों पर छत्र के समान और एक मुकुटमणि के समान देखा जाता है, रेफ छत्रे के समान वर्णों के ऊपर रहता है और मकार अनुस्वार के रूप में गोलाकर वर्णों के ऊपर रहता है, जो मुकुटमणि के समान है, रघुनाथजी के नाम के दो वर्ण इस प्रकार शोभते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥

नाम और नामी, वाचक और वाच्य ये समझने में समान हैं। नामी अर्थात् वाच्य जिसका नाम हो और नाम अर्थात् उसका वाचक शब्द, ये दोनों एक ही हैं। नाम, रूप का वाचक है। इन दोनों में प्रेम भी प्रभु और सेवक के समान है।

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी॥

नाम और रूप ये दोनों ईश्वर के उपाधि हैं, अर्थात् मायाकृत ईश्वर के विशेषण हैं, ये अकथ और अनादि हैं, अर्थात् ठीक ठीक इनका निरूपण नहीं किया जा सकता, पर साधुओं के लिए इनका समझना कठिन नहीं है।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू॥

इनकी छोटाई बड़ाई का वर्णन करके कौन अपराध लेने जाय, इनके भिन्न भिन्न गुणों को सुनकर साधु लोग स्वयं इनकी छोटाई बड़ाई समझ लेंगे।

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥

रूप नाम के अधीन देखा जाता है, क्योंकि रूप का ज्ञान नाम के बिना नहीं हो सकता।

रूप विसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहिं पहिचाने॥

वस्तु सामने है, रूप हथेली में रखा है, पर उस वस्तु के नामका ज्ञान नहीं है तो, मनुष्य उसे जान नहीं सकता। बिना नाम जाने सामने रखी हुई भी वस्तु पहँचानी नहीं जाती।

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विसेषे॥

रूप को विना देखे भी मनुष्य नाम का स्मरण करता है और उस नाम के स्मरण से हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है।

नाम रूप गति अकथकहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥

नाम और रूप की कथा अकथ है, उनका ठीक ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता, वे केवल समझने में सुखदायी हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

भगवान की उपासना अगुणोपासना और सगुणोपासना भेद से दो प्रकार की है, इस-भगवान के सम्बन्ध की दो प्रकार की कल्पना का साक्षी भी नाम ही है, नाम ही के द्वारा भगवान का अगुण होना; तथा निर्गुण होना जाना जाता है। यह नाम चतुर दुभाषिया है, जो दोनों को निर्गुण और सगुण बतलाता है।

दो०–राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर वाहरहुँ, जौ चाहसि उजिआर॥ २७॥

राम नाम मणि का दीप है, इसमें तेल वत्ती की जरूरत नहीं है, इस दीपक को जिह्वारूपी देहली के द्वार पर रखो, यदि भीतर और बाहर प्रकाश देखना चाहते हो, ऐसा तुलसीदास कहते हैं।

नाम जीह जपि जागहि जोगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी॥

वैराग्य के द्वारा जो ब्रह्मा की सृष्टि से अर्थात् विषय सुख से पराङ्मुख

हो गये हैं, वे योगी जिह्वा के द्वारा नामका जप करके ही जागते हैं, अर्थात् नाम को जपनेवाले सदा सावधान रहते हैं।

ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

वे योगी ब्रह्म-सुख का अनुभव करते हैं, जो अनुपम हैं, अर्थात् उसके समान दूसरा नहीं है, जो अवर्णनीय है। जिसमें रोगादिक कोई विकार नहीं और जिसका न कोई नाम है और न रूप।

जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ॥

गुप्ततत्त्व, आत्मतत्त्व, मोक्षतत्त्व आदि को जो जानना चाहते हैं; वे भी जिह्वा के द्वारा नाम का जप कर के ही जानते हैं।

साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए॥

जो साधक अपनी इन्द्रियों को बाह्यविषयों से हटाकर, वासनाओं को नष्टकर, नामका जप करते हैं, वे सिद्ध हो जाते हैं। उन्हें अगिणित सिद्धि प्राप्त होती है।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

जो मनुष्य बड़े दुःखी हैं, वे नामका जप करते हैं। उनके बड़े बड़े संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं।

राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

रामजी के भक्त चार तरह के होते हैं, चारों पुण्यात्मा हैं, चारो निष्पाप हैं और उदार हैं। इन चारों का वर्णन ऊपर हुआ है। 'राम नाम मनिदीप' इस दोहे में जिज्ञासु भक्त का, 'नाम जीह' चौपाई द्वारा ज्ञानी भक्त का, 'साधक नाम' चौपाई द्वारा योगी भक्त का और 'जप ही नामु' चौपाई द्वारा आर्त भक्त का परिचय कराया गया है।

चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं विसेषि पियारा॥

इन चारों प्रकार के भक्तों को भगवान के नाम का ही अधार है; पर इनमें जो ज्ञानी भक्त है, वह रामचन्द्र जी को विशेष प्रिय है।

चहु जुग चहु स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहि आन उपाऊ॥

चारों वेदों में, चारों युगों के लिए नाम का प्रभाव बतलाया गया है; पर कलियुग में नाम का प्रभाव बहुत अधिक है, क्योंकि कलि में नाम के अतिरिक्त उद्धार का दूसरा उपाय नहीं।

दो०—सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिनहु किए मन मीन॥ २८॥

जिन्हें किसी प्रकार की कामना नहीं है, वे भी भगवान के भक्ति रस में लीन होकर, अपने मन को प्रेमपूर्वक नामरूपी अमृत के सरोवर में मछली बना देते हैं। अर्थात् निष्काम भक्त भी नाम के जप को महान समझते हैं और वह स्वयं करते हैं।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

अगुण और सगुण इस प्रकार भगवान के दो रूप हैं, ये दोनों ही अकथ, अगाध, अनादि और अनुपम हैं। इन दोनो का ही यथार्थ वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये अगाध हैं, इनका पार पाना कठिन है, ये अनादि हैं और इनके समान दूसरा भी नहीं है।

मोरे मत बड़ नाम दुहुँ ते। किये जेहि जुग नित बस निज बूते॥

पर मेरी (ग्रन्थकार की) समझ से नाम दोनों से अर्थात् सगुण और निर्गुण से बड़ा है, क्योंकि इस नाम ने दोनों को अपने ही पराक्रम से अपने अधीन किया है। सगुण और निर्गुण दोनों का तो बोध नाम ही से होता है।

प्रौढ़ सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥

अधिक ज्ञानी मनुष्य मेरी इस बात को मेरी प्रौढ़ि समझेंगे अर्थात् मैंने छोटे मुँह बड़ी बात की ऐसा समझेंगे; पर मैं तो अपने मन का विश्वास तथा अपना भाव कहता हूँ।

एक दारु गत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू॥

एक अग्नि लकड़ी में है अर्थात् अप्रकाशित है, दूसरा देखा जाता है, इसी प्रकार दोनों सगुण और निर्गुण ब्रह्म का भी विवेक है। निर्गुण अव्यक्त है और सगुण ब्रह्म व्यक्त।

उभय अगम जुग सुगम नामतें। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म रामतें॥

नाम के विना सगुण और अगुण दोनों को प्राप्ति नहीं हो सकती, पर नाम के द्वारा दोनों की प्राप्ति सुगम है, इसी कारण मैं सगुण और निर्गुण दोनों से नाम को बड़ा कहता हूँ।

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँदरासी॥

निर्गुण ब्रह्म व्यापक है, अविनाशी है, एक है, सत्यस्वरूप है, चेतन है, तथा सदा आनन्दमय है।

अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

ऐसा अविकारी प्रभु सब के हृदय में विद्यमान है, फिर भी संसार के सभी प्राणी दीन हैं और दुःखी हैं।

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

नाम ही एक उपाय है, जिसके द्वारा नाम के यथार्थ तत्व का ज्ञान होता है अर्थात् नाम के जप करने से ही नामी का भी ज्ञान हो जाता है, जिस प्रकार रत्नों से उनका मोल प्रकट होता है।

दो०—निर गुनतें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ रामतें, निज विचार अनुसार॥ २९॥

इस प्रकार नाम का प्रभाव निर्गुण से बड़ा है और वह अपार है। मैं अपने विचार के अनुसार कहता हूँ कि राम से राम का नाम बड़ा है।

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥

राम के भक्तों के कल्याण के लिए मनुष्य शरीर धारण किया, उन्होंने स्वयं अनेक संकट सहे पर साधुओं को सुख दिया।

नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिँ मुद मंगल वासा॥

पर प्रेमपूर्वक नाम के जप करनेवाले भक्त बिना परिश्रम ही आनन्द और मंगल पाते हैं।

राम एक तापस तिय तारी। नामकोटि खल कुमति सुधारी॥

राम ने एक तपस्वी की स्त्री अहल्या को तारा था, पर राम के नाम ने करोड़ों दुष्टों तथा कुबुद्धियों को सुधारा है।

रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्ह बिवाकी॥

ऋषियों के कल्याण के लिए राम ने सुकेतु सुता-ताड़का को सेना और पुत्र के साथ विवाक कर दिया अर्थात् उन्हें खतम कर दिया।

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नाम जिमि रबि निसि नासा॥

और रामजी का नाम अपने भक्तों की दुराशा को दोष और दुःख के साथ नष्ट कर देता है, जिस प्रकार सूर्य रात्रि के अन्धकार को नष्ट कर देते हैं।

भंजेउ राम आपु भवचापू। भवभयभंजन नाम प्रतापू॥
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किये पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नाम सकल कलि कलुष निकन्दन॥

रामचन्द्रजी ने स्वयं भव शिवजी के धनुष को तोड़ा था, पर उनके नाम का प्रताप भव संसार के भय का नाश करता है। रामचन्द्रजी ने दण्डक वन को निर्भय बनाया था, राक्षसों को मार कर लोगों के रहने के योग्य उन्होंने उसे बनाया था, पर रामजी के नाम ने अनेक मनुष्यों के मन को पवित्र बनाया है। रामचन्द्रजी ने राक्षसों के समूह का नाश किया था और उनका नाम कलि के सब पापों को नाश करता है।

दो०–सबरी गोध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ॥ ३०॥

शवरी, गीध आदि रामचन्द्रजी के बड़े भक्त थे, रामचन्द्रजी ने उन्हीं को

मुक्ति दी। पर रामजी के नाम ने अनेक खलों का उद्धार किया है, नाम को गुण कथा वेदों में भी प्रसिद्ध है।

राम सुकंठ विभीषन दोऊ। राषे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भवसिंधु सुषाहीं। करहु विचार सुजन मन माहीं॥

रामचन्द्रजी ने विभीषण और सुग्रीव इन्हीं दो को अपनी शरण में रखा था, यह सब कोई जानता है। पर नाम ने अनेक गरीबों की रक्षा की है, नामों की महिमा वेद और लोक में प्रसिद्ध है। राम ने भालु और वानरों की सेना इकट्ठी की, समुद पर पुल बांधने के लिए उन्होंने थोड़ा परिश्रम नहीं किया, पर नाम के स्मरण करते ही संसाररूपी समुद्र सूख जाता है। अब सज्जन ही इन दोनों के छोटे बड़े होने का विचार करें।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि वर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिन श्रम प्रवल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेह मगन सुष अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

रामचन्द्रजी ने युद्ध में कुल परिवार के साथ रावण को मारा और सीता को लेकर वे अपने नगर में लौट आये। राम राजा हैं और अवध राजधानी है, देवता मुनि आदि सुन्दर वाणी द्वारा इनके गुण गाते हैं। पर सेवक भक्त या तुलसीदास प्रेमपूर्वक नाम का स्मरण करता है और बिना परिश्रम बलवान मोहरूपी दानव को जीत लेता है। वह रामचन्द्रजी के स्नेह में मगन होकर अपने सुख में विचरता है और नाम के प्रसाद से वह स्वप्न में भी सोच नहीं करता, उसे किसी प्रकार की चिंता नहीं होती।

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिये महेस जिय जानि॥२१॥

ब्रह्म और राम से इनका नाम बड़ा है, यह दूसरों को वर देनेवाले जो शिव, ब्रह्मा आदि हैं। उनकोभी वर देनेवाला है, शतकोटि रामचरित में से शिवजी ने सोच विचारकर इसी नाम को ही ग्रहण किया है।

नाम प्रसाद संभु अविनासी। साज अमंगल मंगलरासी॥

उसी नामके प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं, अर्थात् विष खाकर भी वे अविनाशी हैं, उनका वेष अमंगल का है, पर मंगल के राशि हैं, यह नामका ही प्रताप है।

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुष भोगी॥

शुक, सनक आदि जो सिद्ध मुनि तथा योगी हैं, वे सब नामके प्रसाद से ब्रह्म सुख का भोग करते हैं।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जगप्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥

नामका प्रताप नारदजी जानते हैं, क्योंकि हरि विष्णु संसार को प्रिय हैं, पर नामके प्रताप से नारद हरि और हर दोनों को प्रिय हैं।

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे पहलादू*॥

केवल नामके जपने से भगवान प्रसन्न हुए और उनकी प्रसन्नता से प्रह्लाद भक्तों के शिरोमणि हो गये।

---

* प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्र थे। जब ये गर्भ में थे तभी देवर्षि नारद से उन्हें भगवद्भक्ति का उपदेश मिला था, इस कारण प्रह्लाद पक्के भक्त हो गये थे। जब ये कुछ बड़े हुए तब पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजे गये। गुरु लोग इन्हें वर्णमाला सिखाने लगे और प्रह्लाद उनको भगवद्भक्ति का उपदेश देने लगे। गुरुओं ने पहले समझा कि किसी ने इस नासमझ लड़के को बहका दिया है। समझाने से समझ जायगा। गुरुओं ने उन्हें समझाने के बड़े प्रयत्न किये, पर कुछ फल नहीं हुआ। प्रह्लाद के देखा देखी और दैत्यबालक भी भगवद्-भजन करने लगे। राजकुमार तथा उनके साथियों में इस दानव-विद्रोही भावको देख गुरु डर गये, उन्होंने झट

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पाएउ अचल अनूपम ठाऊँ* ॥

ध्रुवने दुःखी होकर नामका जप किया जिससे अचल और सर्वोत्तम स्थान उन्होंने पाया।

हिरण्यकशिपु को इसकी इत्तिला दी। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को पहले समझाया बुझाया, पुनः हलके दण्ड दिये, पर जब इन उपायों का कोई फल न हुआ तब हिरण्यकशिपु ने कठोर से कठोर दण्ड उसे दिये। विष पिलाया गया, पर्वत से ढ़केला गया, आगमें जलाया गया, हाथियों से कुचलवाया गया, पर प्रह्लाद अक्षत शरीर बना रहा, उसका बाल भी बांका न हो सका, तब एक दिन हिरण्यकशिपु उन्हें समझाने लगा। प्रह्लाद ने कहा, हठ छोड़ कर भगवान् का भजन करो, दैत्य कुलका उद्धार करो। इसपर वह बहुत बिगड़ा, उसने कहा, बतला तेरा भगवान् कहाँ है? इस खम्भों में भी है, तू उसे सर्वव्यापक कहता है। प्रह्लाद ने कहा, मैं तो इस खम्भे में भी उनका दर्शन करता हूँ। आप भी शुद्ध चित्त होकर दर्शन कर सकते हैं। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने क्रोध करके खम्भे पर एक लात मारी, उससे बड़ा भयानक शब्द हुआ, नृसिंह भगवान प्रकट हुए, और हिरण्यकशिपु मारा गया। प्रह्लाद के दुःख दूर हुए, उसे भगवान ने अपनी शाश्वत भक्ति दी वे भक्त शिरोमणि हुए।

*ध्रुव राजा उत्तानपाद के पुत्र हैं। राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं सुनीत और सुरुचि। सुनीत बड़ी थी और सुरुचि छोटी, सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव और सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम था। सुरुचि राजा को अधिक प्यारी थी, इस कारण उसके पुत्र उत्तम का भी राजा अधिक दुलार करते थे। एक दिन राजा सिंहासन पर उत्तम को लेकर बैठे थे। ध्रुव भी उनके पास जाने लगा। पर सुरुचि की डांट खाकर उसे बीचही से लौटना पड़ा। सुरुचि ने कहा, बेटा उस आसन और उस गोद में बैठने का तुझे अधिकार नहीं है। बालक ध्रुव विमाता की इस बात को सुनकर भौचक सा रह गया, उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, वह आशा भरी दृष्टि से पिता

की ओर देखने लगा। इस प्रकार बड़ी देरतक वह पिता की ओर देखता रहा, पर पिता ने कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं। तब उसे बड़ा दुःख हुआ और वह रोता हुआ अपनी माता के पास गया। पुत्र की सब बातें सुनकर माता ने कहा, बेटा उनका कहना सच है, तुम्हारी माता राजमहिषी होने पर भी राजप्रिया नहीं है; अतएव तुमको वह पद नहीं मिलेगा। यदि तुम उसपद को चाहते हो तो दीनानाथ को भजो जो सब सुखों तथा मंगलों के आकर हैं, जो दीनबन्धु हैं। माता की बातें सुनकर ध्रुव झट वन जाने के लिए खड़ा हो गया। पांच वर्ष का बालक आत्माभिमान से प्रेरित होकर वन के कठिन रास्ते पर चल निकला। नारद को यह देखकर बड़ी दया आयी, वे उस बालक के पास गये और उन्होंने बहुत समझाया कि यह मार्ग बड़ा कठिन है, तुम अभी बालक हो तुमसे इस मार्ग के कठिन नियमों का पालन न हो सकेगा, अतएव अभी तुम लौट जाओ, ध्रुव ने कहा, महाराज, आप जो कहते हैं वह उचित है। पर अपमान के तीखे वचनों से सताये मेरे हृदय में इतना बल नहीं, इतनी सहनशीलता नहीं। अतएव आप मुझे वह उपाय बतलावें जिससे मैं भगवान का दर्शन कर सकूं। तब नारद द्वादशाक्षर मन्त्र और ध्यान की विधि बता कर चले गये। ध्रुव भगवान की आराधना मथुरा में जाकर करने लगा। उसने क्रमशः कठोर तपस्या करनी प्रारम्भ की, पहले फल खाकर पुनः पत्ते खाकर तदनन्तर केवल जल पीकर वे भगवान की आराधना करने लगे। अन्त में उन्होंने जल छोड़कर केवल वायु के आहार पर रहकर आराधना की। इस प्रकार वे कठोर नियमों का पालन करके आराधना करने लगे, जब उन्होंने वायु का आहार भी छोड़ दिया, तब देवता लोकपाल आदि का सांस लेना बन्द होगया, वे बहुत घबड़ाये। वे सब मिलकर विष्णु के यहाँ गये और उन लोगों ने अपना दुःख कह सुनाया। विष्णु ने कहा इसका कारण मुझे मालुम है, मैं अब शीघ्र ही इसका उपाय करता हूँ। आप लोग अपने अपने स्थान पर जांय। देवताओं को विदाकर विष्णु ध्रुव के पास गये, ध्रुव ध्यान में मग्न थे, वे अपने हृदयमध्यस्त भगवान का दर्शन कर रहे थे, कौन आया और कौन गया इसकी उन्हें क्या खबर।

सुमिरि पवन सुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपरु अजामिल[1] गज[2] गनिकाऊ[3]। भये सुकृत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

हनुमान ने पवित्र नामका स्मरण करके रामचन्द्रजी को अपने वश में कर रखा है। दूसरे अजामिल, गज, गणिका आदि भी भगवान के नामके प्रभाव से पुण्यात्मा हो गये। नामकी महिमा में कहाँ तक कहूँ, स्वयं राम भी अपने नाम के गुणों को नहीं बतला सकते।

यह देख भगवान ने अपने रूप को जो ध्रुव के हृदय में था बाहर खींच लिया, ध्रुव की आखें खुल गयीं, उन्होंने सामने साक्षात् विष्णु का दर्शन किया। उन्होंने स्तुति करने की इच्छा की, पर बालक होने के कारण स्तुति न कर सके। यह देखकर भगवान ने अपना शंख उनके मस्तक पर रख दिया। ध्रुव भगवान की स्तुति करने लगे। पुनः भगवान ने कहा ध्रुव, तुमने अपनी तपस्या से सबसे ऊंचे लोक को जीत लिया है। तुम अपने पिता के राज्य को ३६ हजार वर्षतक भोग कर पुनः उस स्थान को जाओगे।

इस प्रकार अपमान से दुःखी होकर भी ध्रुव ने भगवान का भजन किया और उन्हें सबसे ऊँचा पद मिला।

१-अजामिल एक दुराचारी ब्राह्मण था। उसने अपनी विवाहिता स्त्री का त्याग किया था और एक शूद्रा अपनी स्त्री बनाई थी। ठगी जुआचोरी आदि उसके कार्य थे। वह भूलकर भी सत्कर्म नहीं करता था। इसी तरह दुष्कर्मों में उसने अपनी सारी अवस्था समाप्त की। एक बार वह बिमार पड़ा। उसने अपने सामने यमदूत देखे, इससे घबड़ा कर वह अपने नारायण नामके पुत्र को बुलाने लगा। नारायण नारायण कई बार उसने पुकारा। उसी समय शंख चक्र गदाधारी विष्णु के पार्षद भी वहाँ आगये और उन लोगों ने यमदूतों को रोका। यमदूतों ने कहा आप लोग क्यों हमारे कार्य में बाधा देते हैं? आप कौन हैं? पार्षदों ने कहा, आप इसे ले क्यों जाते हैं? आप लोग यमदूत हैं, यमराज धर्म की व्यवस्था करते हैं,

उनके यहाँ अन्याय नहीं होना चाहिये। यह ठीक है कि यह पापी है, पर उसने नारायण का नामोच्चारण किया इससे इसके सब पाप दूर होगये। अतएव आप लोग इसे ले नहीं जा सकते। पार्षदों की बात सुनकर यमदूत चले गये। पार्षद भी झट अन्तर्धान हो गये। वह देखता रह गया। पर इस घटना से उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, और वह भगवान की आराधना करने लगा, पुनः अन्त में उसे उत्तम गति मिली।

२—गज की कथा इस प्रकार है। चित्रकूट पर्वत पर एक वरुण का बाग है, उसका नाम ऋतुमान है। देवताओं में सब से धनी वरुण ही हैं, धनियों की चीज़ें कितनी सुन्दर होती हैं यह बात बिना कहे भी सब लोग समझ सकते हैं। वह बाग भी बड़ा सुन्दर, सुखकर और मनोहर था, उसमें एक बड़ा विशाल सरोवर था। उस पर्वत तथा बाग के रहने वाले प्राणी उसी सरोवर में जल पीने आते थे। एक दिन एक हाथी हथिनियों और बच्चों के साथ उस तालाब में जल पीने आया। जल पीकर उसने हथिनियों और बच्चों को जल पिलाया। इसी अवसर में एक ग्राह ने आकर उसके पैर पकड़ लिये। हाथी ने बड़ा जोर मारा,उसके साथियों ने भी सहायता दी। पर कुछ भी नहीं। हाथी का कष्ट दूर नहीं हुआ। इसी प्रकार दोनों को युद्ध करते बहुत दिन बीत गये। हाथी व्याकुल हो गया। उसे अपनी रक्षा की कोई आशा न रह गयी। तब उसने भगवान का स्मरण किया। भगवान ने गरुड़ को स्मरण किया, पर गरुड़ के आने में कुछ देर हुई। अतएव भगवान झट कूद पड़े, उन्होंने हाथी की सूंड़ पकड़ कर ग्राह के साथ उसे बाहर निकाल लिया और चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ कर हाथी की रक्षा की। ग्राह गन्धर्व था, अपना रूप पाकर वह अपने लोक में गया। गजराजा इन्द्रद्युम्न था और ग्राह हूहू गन्धर्व। गज को भगवान ने अपने पार्षदों में शामिल किया।

३—सत्ययुग की बात है एक वैश्य ने वृद्धावस्था में विवाह किया। समय आने पर वह मर गया और उसकी युवती स्त्री रह गई, पति के मरने पर स्वाधीनता पाकर वह स्त्री व्यभिचार करने लगी। उसके बंधु बान्धुओं ने उसे समझाया, बहुत रोका, पर वह न मानी। उसका दुराचार बढ़ने लगा। उसके पिता ने उसे अपने घरसे निकाल दिया। वह वहाँ से चली गई और

दो०—नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भये भाँगते, तुलसी तुलसी दासु ॥३२॥

रामजी का नाम कल्पतरु है, कलियुग में उसपर कल्याण वास करता है, भाग्यवश मैंने भी नामका स्मरण किया जिसके प्रताप से मैं तुलसी से तुलसीदास होगया।

चहुयुग तीनि काल तिहु लोका। भये नाम जपि जीव विसोका॥

चारों युगों में तीनों लोकों में और तीनों कालों में राम का नाम जपकर प्राणी शोकमुक्त हो गये हैं।

अति बड़ि मोरि ढिठाई षोरी। सुनि अघ नरकहुं नाक सिकोरी॥
समुझिसहम मोहिंअपडर अपने। सो सुधि रामकीन्हिनहिंसपने॥

मेरी इस बहुत बड़ी ढिठाई तथा अपराध को सुनकर पाप और नरक ने भी अपनी नाक सिकोड़ ली, उनको भी यह बुरा लगा, अर्थात् मेरे समान पापी भी भगवान का सेवक कहा जाने लगा, यह सुनकर पाप और नरक भयभीत हो गये। इन अपने अपराधों का स्मरण कर मुझे बड़ा भय मालुम होता था, पर जब मैं रामजी की शरण गया तो इन्होंने मेरे दोषों को भुला दिया अर्थात् क्षमा कर दिया।

सुनि अवलोकि सुचित चष चाही। भगतिमोरिमतिस्वामिसराही॥

लोगों से सुनकर, स्वयं देखकर अर्थात् विचार कर और सावधान आँखों से देखकर मैंने जाना है कि भगवान ने मेरी भक्ति और बुद्धि की प्रशंसा की है।

कहत नसाइ होइ हिय नीकी। रीझत राम जानि जन जीकी॥

मनमाने दुराचार करने लगी, उसे कोई पुत्र नहीं था। इस कारण उसने एक सुगा पोस लिया था जिसको रामनाम पढ़ाया करती थी। इसी नामके स्मरण के प्रताप से दोनों की गति हुए, दोनों ही तर गये।

मैं राम का सेवक हूँ, राम का भक्त हूँ, यह बात प्रकाशित करने से हानि होती है, इसका हृदय में रखना ही अच्छा है; क्योंकि भगवान रामचन्द्रजी तो मन की बातें जान कर ही प्रसन्न होते हैं।

रहति न प्रभुचित चूक किये को। करत सुरति सय बार हियेकी॥

भक्तों के किये अपराधों को भगवान स्मरण नहीं रखते, वे हृदय की भक्ति का ही अनेकों बार स्मरण करते हैं।

जेहि अघबधेउ व्याधजिमिबाली। फिरिसुकंठसोइकीन्हिकुचाली॥
सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी॥
ते भरतहि भेंटत सनमाने। राज सभा रघुवीर बषाने॥

जिस पाप से रामचन्द्रजी ने व्याध के समान बालि को मारा था, वही पाप कुचाली सुग्रीव ने भी किया था, वही पाप विभीषण ने भी किया, पर रामचन्द्रजी ने स्वप्न में भी उनके इन पापों की ओर ध्यान न दिया। भरतजी से मिलने के समय रामजी ने उन दोनों का सम्मान किया और राजसभा में भी उनकी प्रशंसा की।

दो०—प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सील-निधान॥ ३३॥

स्वामी श्री रामचन्द्रजी वृक्ष के नीचे छाया में रहनेवाले हैं और वानर वृक्ष की डाल पर रहनेवाले हैं, फिर भी रामचन्द्रजी ने उन वानरों का स्वयं सम्मान किया, तुलसीदास कहते हैं कि राम के समान शीलनिधान स्वामी कहीं नहीं है।

राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जौ यह साची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥ ३४॥

रामचन्द्रजी आपकी यह भलाई करने की प्रवृत्ति सभी के लिए भली है, यह बात यदि सची है, तो तुलसीदास की भी भलाई हुई समझिए।

एहि विधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिर नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलि कलुष न साइ॥ ३५॥

इस प्रकार सब को प्रणाम करके और अपने गुण दोषों को अर्थात योग्यता अयोग्यता को प्रकाशित करके, मैं रामचन्द्रजी के सुन्दर यश का गान करता हूँ, जिसके सुनने से कलि के पाप दूर होते हैं।

(कथा मुख)

जागवलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई॥
कहिहउँ सोइ संवाद बषानी। सुनहु सकल सज्जन सुषमानी॥

याज्ञवल्क्य मुनि ने जो सुन्दर कथा मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज को सुनायी थी, उसी संवाद का मैं वर्णन करूंगा, वही कथा मैं विस्तारपूर्वक कहूँगा। सज्जन गण, आपलोग सुनें, क्योंकि यह कथा लोक और परलोक में सुखदायक है।

संभु कीन्ह यह चरित सोहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सोइ सिव काग भुसुडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहिसन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रतिगावा॥

सब से पहले इस सुन्दर रामचरित का वर्णन शिवजी ने किया, पुनः कृपा करके उन्होंने वह चरित पार्वतीजी को सुनाया, पुनः काकभुसुंडी को रामभक्ति का अधिकारी देखकर शिवजी ने वह कथा उसे दी, अर्थात उसे सुनाया। काकभुसुंडी से याज्ञवल्क्य मुनि ने पाया था और उन्होंने भारद्वाज को सुनाया।

ते स्रोता वकता समसीला। समदरसी जानहिं हरिलीला॥
जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना॥

वे श्रोता और वक्ता दोनों समान स्वभाव के थे, दोनों भक्ति, वैराग्य आदि गुणों से युक्त थे, वे समदर्शी तथा भगवान की लीलाओं को जानने

वाले थे, वे अपने ज्ञान के बल से तीनों कालों की बातों को हाथ की हथेली पर रखे हुए आंवले के समान जानते थे।

अउरउ जे हरि भगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं विधिनाना॥

और जो अनेक सुजान भगवान के भक्त हुए हैं, वे इस कथा को अनेक प्रकार से कहते, सुनते और समझते हैं।

दो०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउ अचेत॥३६॥

मैंने यह कथा अपने गुरु से शूकरक्षेत्र में सुनी है। पर जैसा चाहिए वैसा मैं इस कथा को समझ न सका, क्योंकि उस समय मेरी बाल्यावस्था थी, मैं बिलकुल अचेत था,

स्रोता बकता ज्ञान निधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझइ यह जीव जड़, कलिमलग्रसित विमूढ़॥३७॥

इस राम की कथा को सुननेवाले तथा कहनेवाले पहले ज्ञान निधान हो गये हैं। उस कथा को मेरे समान जड़, कलि के पापों से ग्रस्त मूर्ख जीव कैसे समझ सकेगा।

तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

पर गुरु ने यह कथा मुझे बार बार सुनायी, इससे बुद्धि के अनुसार कुछ कुछ समझ में आयी। वही कथा मैं भाषा में लिखूंगा, जिससे मेरे मन को सन्तोष हुआ है, जो कथा मुझे अच्छी लगी है।

जस कछु बुधि बिबेक बल मेरे। तस कहिहउँ हिय हरि के प्रेरे॥

जैसा मुझे बुद्धि और विवेक का बल है वैसा ही हृदय में हरि की प्रेरणा के अनुसार कहूँगा। भगवान हृदय के प्रेरक हैं, उन्हीं की प्रेरणा से अपनी बुद्धि और ज्ञान के अनुसार मैं रामचरित वर्णन करूंगा।

निजसंदेहमोहभ्रमहरनी । करउँ कथा भवसरितातरनी ॥

जो कथा आत्मा के विषय के सन्देह को दूर करनेवाली है, मोह तथा भ्रम का नाश करनेवाली है, संसाररूपी नदी के लिए नौका है, वही कथा मैं कहता हूँ ।

बुधविस्राम सकलजनरंजनि । रामकथा कलिकलुषविभंजनि ॥

रामजी की यह कथा विद्वानों को आनन्द देनेवाली है, सब प्रकार के मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाली है और कलि के पापों का नाश करनेवाली है ।

रामकथा कलिपन्नगभरनी । पुनि बिबेकपावक कहँ अरनी ॥

रामकथा कलिरूपी सर्प के लिए भरनी है, भरनी एक कटीले पंखवाले पक्षी का नाम है । जब साँप उस पक्षी को निगल जाता है, तब वह पंख फैला देता है और उसके कटीले पखों से साँप का पेट फट जाता है । रामकथा विवेकरूपी अग्नि के लिए अरणी है । अरणी उस लकड़ी को कहते हैं, जिसको घिस कर आग निकाली जाती है । भरणी मयूरी को भी कहते हैं, जो साँपों को खाती है ।

रामकथा कलिकामदगाई । सुजनसजीवनिमूरि सोहाई ॥

रामकथा कलियुग में मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कही गयी है, अथवा रामकथा कलियुग में कामधेनु है और सज्जनों के लिए यह सुन्दर सजीवन बूटी है ।

सोइ वसुधातल सुधा तरंगिनि । भय भंजनि भ्रमभेक भुअंगिनि ॥

यह पृथिवी में अमृत की नदी है, भयों को दूर करनेवाली है, तथा भ्रम-रूपी मेंढक के लिये सर्पिणी है, अर्थात् इससे भ्रम का नाश होता है ।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि । साधुबिबुधकुलहितगिरिनंदिनि ॥

असुर-सेनाके समान यह नरक का नाश करनेवाली है, अर्थात् राम-चन्द्रजी ने असुर-सेना का नाश किया और उनकी कथा नरक का नाश करती है, साधु और देवताओं के हित के लिए पार्वती के समान है ।

संतसमाजपयोधि रमासी। विश्वभारभर अचल छमासी॥

सन्तसमाजरूपी समुद्र के लिए यह लक्ष्मी के समान है, और संसार का भार धारण करने के लिए पृथिवी के समान अचल है। समुद्र से लक्ष्मी निकली हैं और सन्तसमाजरूपी समुद्र से रामकथा निकलती है।

जमगनमुहमसि जग जमुनासी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥

यमराज के दूतों के मुंह में स्याही लपेटने के लिए संसारमें यह यमुना के समान है और काशी के समान जीवनमुक्ति का कारण है। यमुना में स्नान करनेवालों को यमदूतों का भय नहीं रहता, रामकथा सुननेवालों को यमदूतों का भय नहीं रहता।

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदासहित हिय हुलसी सी॥

यह कथा रामचन्द्रजी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास की तो हुलसी के समान हित करनेवाली है। हुलसी तुलसीदास की माता का नाम है।

सिवप्रिय मेकलसैलसुता सी। सकलसिद्धिसुखसंपतिरासी॥

मेकल पर्वत की कन्या नर्मदा के समान यह कथा शिवजी को प्रिय है, कथा सब प्रकार की सिद्धि और सुख सम्पति की राशि है। नर्मदा नदी में नर्मदेश्वर के रूप में शिवजी वास करते हैं।

सदगुनसुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

उत्तम गुणरूपी देवताओं की अदिति के समान माता है और रामचन्द्रजी की प्रेमभक्ति की सीमा है। अदिति से सभी देवता उत्पन्न हुए है, उसी प्रकार इससे सद्‌गुण उत्पन्न होते हैं।

दो०—रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभगसनेहबन, सिय रघुबीर बिहारु॥ ३८॥

राम जी की कथा मन्दाकिनी नदी के समान है; सज्जनों का सुन्दर

चित्त चित्रकूट के समान है, तुलसीदास कहते हैं कि सुन्दर स्नेह वन के समान है और वहीं सीता राम विहार करते हैं।

रामचरित चिंतामनि चारू। संतसुमतितिय सुभग सिंगारू॥

रामचन्द्रजी का चरित चिन्तामणि है। वह सज्जनों की सुबुद्धिरूपी सुन्दरी के लिए उत्तम शृंगार है, अर्थात् शृंगार की सामग्री है।

जगमंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

रामचन्द्रजी के गुणसमूह से संसार का मंगल होता है, वह मुक्ति देता है, धन; धर्म और धाम देता है।

सदगुरु ज्ञान विराग जोग के। विबुधवैद भवभीमरोग के॥

रामजी का गुणसमूह, ज्ञान, वैराग्य और योग का उत्तम गुरु है और संसाररूपी भयानक रोग का देववैद्य है।

जननिजनक सियरामप्रेम के। बीज सकलव्रतधरमनेम के॥

यह, सीताराम विषयक प्रेम का माता पिता है और सब प्रकार के व्रत, धर्म और नियम का मूल है।

समन पाप संताप सोक के। प्रियपालक परलोक लोक के॥

पाप, संताप और शोक के लिए वह यमराज है, अथवा उनको शान्त करनेवाला है और लोक-परलोक का प्रेमी पालन करनेवाला है।

सचिव सुभट भूपति विचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥

विचाररूपी राजा के वीर योद्धा है और मन्त्री है और लोभरूपी अपार समुद्र के लिए अागस्त्यरूप है।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरिसावक जनमनवन के॥

काम, क्रोध आदि कलिके पापरूपी हाथियों के समूह के लिए सिंह-शावक है, सिंह का बच्चा है, जो मनुष्यों के मनरूपी वन में रहता है।

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

यह रामचरित शिवजी के लिए अतिप्रिय और पूज्य अतिथि के

समान है और दरिद्रतारूपी दावाग्नि के लिए मनोरथ सिद्ध करनेवाला मेघ है।

मंत्र महामनि विषयव्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

विषयरूपी सर्प के लिए महामणि तथा मन्त्र के समान हैं, जो सर्प के विष उतारते हैं। इससे अमिट भाग्य की बुराइयाँ भी मिट जाती हैं।

हरन मोहतम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से॥

सूर्य की किरणों के समान तम-मोहरूपी अन्धकार को दूर करता है, और भक्तरूपी धान के पालन करने के लिए मेघ के समान है।

अभिमतदानि देव तरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥

देववृक्ष अर्थात् कल्पद्रुम के समान मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है रामजी के गुणों की सेवा करना अतिसुलभ है और सेवा करने से यह शिव और विष्णु के समान सुखदायी है।

सुकवि सरद नभ मन उडुगन से। राम भगत जन जीवन धन से॥

सुकवियों के मनरूपी शरत के आकाश के लिए नक्षत्रों के समान है और रामभक्त मनुष्यों के लिए जीवनधन के समान है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधिसाधु लोगसे॥

यह पुण्यों के फलरूपी अनेक भोगों के समान है और छलकपट-हीन साधुओं के समान संसार का हित करनेवाला है।

सेवक मनमानसमराल से। पावन गंगतरंगमाल से॥

सेवकों-रामभक्तों के मनरूपी मानससरोवर के लिए हंस के समान है और गंगा की तरंगों की माला के समान पवित्र है।

दो०—कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुनग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड॥ ३६॥

वेद-शास्त्रविरोधी कुतर्क कुव्यवहारों को और कलि के कपट, दंभ तथा

पाखण्ड को राम का गुणसमूह नष्ट कर देता है, जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि लकड़ी को जला देता है।

रामचरित राकेस कर, सरिस सुषद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विशेषि बड लाहु ॥ ४० ॥

रामचरित, चन्द्रमा की किरणों के समान सब को सुखदायी है। सज्जन कुमुद के समान हैं, उनके चित्त चकोर हैं, उनको रामचरित विशेष हितकारी है और उनको इससे लाभ भी है।

कीन्हि प्रश्न जेहि भांति भवानी। जेहि विधि संकर कहा बषानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा प्रबंध बिचित्र बनाई ॥
जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करइ सुनि सोई ॥

पार्वती ने जिस प्रकार प्रश्न किया था, और शिवजी ने जिस प्रकार इस कथा का वर्णन किया था, उन सबका हेतु वर्णन कर के मैं कहूँगा, मैं सुन्दर कथाप्रवन्ध बनाकर वह कहूँगा। जिन लोगों ने यह कथा पहले कहीं नहीं सुनी है, वे मेरे इस कथाप्रवन्ध को सुनकर आश्चर्य न करें।

कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरज करहिं अस जानी ॥
राम कथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मनमाहीं ॥

इस अलौकिक कथा को जो ज्ञानी सुनेंगे, वे आश्चर्य नहीं करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि राम की कथा की संसार में इयत्ता नहीं, इसकी सीमा नहीं, उनके हृदय में इस प्रकार का विश्वास है।

नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा ॥

रामजी के अनेक अवतार हैं, रामायण भी अपार हैं, इसका सौ करोड़ श्लोकों में विस्तार है।

कलपभेद हरि चरित सोहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिय न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी ॥

कल्पभेद से भगवान् के सुन्दर चरित भी अनेक प्रकार के हैं मुनिश्रेष्ठों ने उन अनेक प्रकार के चरितों का वर्णन किया है।

दो०—राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिनके विमल विचार ॥४१॥

राम अनन्त, उनके गुण अनन्त, और उनकी कथा का विस्तार भी अपरिमित है। जिनके विचार विमल हैं, वे इस बात को सुनकर आश्चर्य नहीं करेंगे।

एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुरुपदपंकजधूरी॥
पुनि सबही विनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥

इस प्रकार सब सन्देहों को दूर कर तथा गुरुचरणकमलों की धूल मस्तक पर रख कर अर्थात् गुरु का आशीर्वाद लेकर मैं पुनः सब को हाथ जोड़ कर विनती करता हूँ, जिससे इस कथा के कहने में मुझसे त्रुटियाँ न हों।

सादर सिवहिं नाइ अब माथा। वरनउँ विसद रामगुनगाथा॥

आदरपूर्वक शिव को प्रणाम कर मैं उज्ज्वल रामचन्द्र जी की गुण कथा का वर्णन करता हूँ।

(कथा प्रारम्भ का समय और स्थान)

संवत सोरह से इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

सोलह सौ एकतीस संवत् में हरि के चरणों को मस्तक पर रखकर उनका ध्यान कर मैं यह कथा प्रारम्भ करता हूँ। चैत्र मास की नौमी तिथि मंगल वार को अयोध्या में यह चरित प्रकाशित हुआ अर्थात् इसकी रचना प्रारम्भ हुई। अथवा हरि का अर्थ है हनुमान, उनके चरणों पर सिर रखकर मैं यह कथा कहता हूँ।

जेहि दिन राम जनम स्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

श्रुतियाँ जिस दिन राम का जन्म होना बतलाती हैं तथा जिस दिन सब तीर्थ अयोध्या में चले आते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जनम महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता आदि सभी आकर रघुनाथजी को सेवा करते हैं, जिस दिन ज्ञानी मनुष्य रामचन्द्रजी का जन्म महोत्सव करते हैं और मधुरस्वर में रामजी की कीर्ति का गान करते हैं।

दो०—मज्जहिं सज्जनवृंद बहु, पावन सरजूनीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुंदर स्याम शरीर॥ ४२॥

सज्जनों का अनेक समुदाय अति पवित्र सरयूनदी के जल में स्नान करते हैं तथा सुन्दर श्याम शरीर रामजी का ध्यान धरकर राम नाम का जप करते हैं।

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा विमलमति॥
रामधामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित जगपावनि॥

पवित्र नदियों का दर्शन, स्पर्श, स्नान और उनके जल का पान पापों को हरता है, यह वेद पुरान कहते हैं। सरयू नदी बहुत ही पवित्र है, इसकी अपरिमित महिमा को विमल बुद्धिवाली सरस्वती भी नहीं कह सकती। अयोध्यापुरी अत्यन्त सुन्दर है, यह राम के स्थान को (मोक्ष को) देनेवाली है, यह जगत को पवित्र करने वाली है, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है।

चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तन नहिं संसारा॥

जगत में चार श्रेणी के जीव हैं, स्वेदज, अंडज, जरायुज और उद्भिज्ज इन चारों श्रेणियों में अनेक प्रकार के जीव हैं, वे यदि अयोध्यापुरी में शरीर त्याग करें तो उनके लिए पुनः संसार नहीं है अर्थात् उनका पुनः जन्म नहीं होता।

सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगलषानी॥

यह नगरी सब प्रकार सुन्दर है, सब प्रकार की सिद्धियो को देनेवाली है और मंगल की खान है।

(मानस का अर्थ)

विमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥
राम चरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइय विस्रामा॥

यह जानकर ही मैंने विमल कथा की रचना का यहाँ आरम्भ किया, जिस कथा के सुनने से काम मद और दंभ का नाश हो जाता है "राम चरित मानस" इस नाम को सुन कर कानों को बड़ा आनन्द मिलता है।

मनकरि विषय अनल वन जरई। होइ सुषी जौ एहि सर परई॥

जो मनरूपी हाथी विषयों की अग्नि से वन में अर्थात् संसार में जल रहा है, वह यदि इस सर में अर्थात् मानससर में पड़ता है तो सुखी हो जाता है। संसाररूपी विषयवासनाओं से दग्ध मनुष्य इस मानस से शान्ति पाते हैं।

राम चरित मानस मनभावन। विरचेउ संभु सुहावन पावन॥

यह रामचरित मानस मुनियों को बड़ाही प्रिय है, इस सुन्दर और पवित्र मानस को शिवजी ने बनाया है।

त्रिविध दोष दुष दारिद दावन। कलिकुचालकलिकलुषनसावन॥

मानसिक, वाचिक और कायिक दोषों, दुःखों और दरिद्रता के लिए यह मानस दावानल है, कलिके दुर्व्यवहारों तथा समस्त पापों को यह नाश करता है।

तातें राम चरित मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥

इस कारण प्रसन्न होकर तथा ढूढ़ कर महादेवजी ने इस का नाम "राम चरित मानस" रखा है।

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

वह सुन्दर और सुखद कथा मैं अब कहता हूँ, सज्जनगण आदरपूर्वक मन लगाकर सुनें।

दो०—जस मानस जेहि बिधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमावृषकेतु॥४३॥

जैसा यह मानस है, जिस प्रकार इसका जगत् में प्रचार हुआ और जिस कारण यह उत्पन्न हुआ, वह सब कथा शिव और पार्वती का स्मरण कर मैं कहता हूँ।

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। राम चरित मानस कवि तुलसी॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

रामचरित मानस के कवि तुलसीदास की बुद्धि और हृदय शिवजी के प्रसाद से उल्लसित हुए। शिवजी के प्रसाद से ही तुलसीदास ने इस काव्य को रचना प्रारम्भ किया।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घनसाधू॥

सद्‌बुद्धि पृथिवी है और हृदय अगाध है अर्थात् गहरी भूमि है, वेद और पुरान समुद्र हैं, साधु मेघ हैं। मेघ समुद्र से जल लेकर भूमि पर बरसाते हैं, जिससे भूमि के गहरे स्थान भर जाते हैं। साधु वेद पुरानों से रामचरित लेकर बुद्धिरूपी भूमि पर बरसाते हैं, जिससे हृदय पूर्ण हो जाता है यही बात कही जाती है।

बरषहिं राम सुजसबरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

वे मेघ रामजी के सुयशरूपी सुन्दर जलकी वृष्टि करते हैं, जो जल मधुर मनोहर तथा मंगल करनेवाला है।

लीला सगुन जो कहहिं बषानी। सोइ स्वच्छता करइ मलहानी॥

जो विस्तारपूर्वक सगुण भगवान की लीला का वर्णन करते हैं, वह वर्णन ही स्वच्छता है और उससे मलका नाश होता है।

प्रेम भगति जो बरनिन जाई। सोइ मधुरता सुशीतलताई॥

जिस प्रेमरूपी भक्ति का वर्णन नहीं किया जासकता, अर्थात् जिसका वर्णन करना कठिन है। उसी प्रेमभक्ति को मधुरता तथा सुशीलता कहते हैं।

सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई॥

वह—जल रामसुयशरूपी जल, पुण्यरूपी धानके लिए हितकारी है और रामभक्त मनुष्यों के लिए वही जीवन है।

मेधामहि गत सो जलपावन। सकिलि स्रवनमग चलेउ सुहावन॥

बुद्धिरूपी पृथिवी पर का वह जल अत्यन्त पवित्र है, वह सुन्दर जल बटुर कर कानके मार्ग से बहता है।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुषद सीत रुचि चारु चिराना॥

वह जल मानस अर्थात् हृदयस्थल में थिराता है, मिट्टी के नीचे बैठ जाने से स्वच्छ होता है। वह प्राचीन होकर सुखदायी, शीतल रुचिकारक और उत्तम होता है।

दो०—सुठि सुंदर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥ ४४॥

अत्यन्त सुन्दर इस सम्वाद को बुद्धि पूर्वक विचार कर रचा है, यह सम्वाद पवित्र है, सुन्दर है और यही इस मानसरोवर के चार घाट है। शिव पार्वती सम्वाद, यागवल्क्य भरद्वाज सम्वाद, कागभसुन्डी गरुण सम्वाद, और सज्जन तुलसी सम्वाद। इस प्रकार चार सम्वादों से इस रामकथा की उत्पत्ति हुई है, येही सम्वाद इसके घाट हैं।

सप्त प्रवन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना॥

इस कथा में सात प्रबन्ध हैं अर्थात् सात काण्ड हैं, वे इस मानस सर के सात सोपान अर्थात् सीढ़ी हैं, इस बातको ज्ञान की दृष्टि रखनेवाले इच्छा-पूर्वक देखते हैं।

रघुबर महिमा अगुन अवाधा। बरनव सोइ बरवारि अगाधा॥

रामचन्द्रजी की महिमा अगुण है अर्थात् सत्व, रज और तम इन

तीनों गुणों से परे है और अबाध है, उसमें कोई बाधा नहीं अर्थात् किसी प्रकार का विकार नहीं अथवा उसकी सीमा नहीं, उसी श्रेष्ट और अगाध जलवाली महिमा का मैं वर्णन करूँगा।

रामसीयजस–सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥

राम और सीताजी का यश इस सरोवर का जल है, जो अमृत के समान है, उपमाएं अर्थात् अलंकार इस सरोवर की तरङ्गों की मनोहर किलोल के समान है।

पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगति मंजु मनि सीप सुहाई॥

इस मानस में जो चौपाई हैं, वे ही सघन पुरइन पात है, जो मनोहर और उत्तम उत्तम उक्तियां हैं, वे सुन्दर मणि और सीप के समान हैं।

छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा॥

इस मानस में जो सुन्दर दोहा छंद और सोरठा हैं, वे अनेक रंग के कमल के पुष्प हैं, जो शोभित हो रहे हैं।

अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥

इन दोहा चौपाई आदि के जो सुन्दर अर्थ हैं, जो सुन्दर भाव हैं तथा जो सुन्दर भाषा है, वे ही क्रम से पराग मकरंद और सुगन्ध हैं। पुष्परज को पराग कहते हैं और पुष्परसको मकरंद।

सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला। ज्ञानबिरागबिचारमराला॥

पुण्यसमूह भ्रमर हैं, और ज्ञान, विरागमय विचार हंस हैं।

धुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥

ध्वनि व्यङ्गय रीति आदि जो कविता के गुण हैं, वे सब इस मानससरोवर के अनेक प्रकार की मानों मछलियां हैं। शब्द के अर्थविशेष को व्यङ्गय कहते हैं, वह वाक्य के अर्थ से भिन्न होता है। ध्वनि वह है, जहाँ वाक्य से अधिक चमत्कार व्यङ्गय में हो। रीति शब्दविन्यास के ढंग को कहते हैं।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान बिचारी॥

नव रस जप तप जोग बिरागा । ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों का वर्णन मैं ज्ञान विज्ञान के विचार के साथ करूँगा । अर्थात् इस पुस्तक में ज्ञान-विज्ञान के अनुसार मैं चतुर्वर्ग का वर्णन करूँगा । नवरस, शृंगार, वीर, करुण आदि नवरस और जप, तप, योग, विराग आदि जो इस ग्रन्थ में वर्णन किये जायंगे, वे सब इस सरोवर के जलचर प्राणि हैं ।

सुकृती साधु नाम गुन गाना । ते बिचित्र जल बिहग समाना ॥

पुण्यात्मा साधुओं के नाम और गुणों का जो इस पुस्तक में वर्णन किया गया है, वे अनेक प्रकार के जलपक्षी के समान हैं ।

संत सभा चहुँ दिसि अंबराईं । स्रद्धा रितु बसंत सम गाईं ॥

सज्जनों की जो सभा इस कथा को सुनती है, वह इस मानससर के चारों ओर की अमराई अर्थात् आमका बाग है और उस सज्जनसभा की श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान है ।

भगति निरूपन बिबिध बिधाना । छमादयाद्रुमलताबिताना ॥

भक्ति का जो इस कथा में निरूपण किया गया है, जो उस भक्ति के अनेक भेद बतलाये गये हैं तथा क्षमा, दया आदि गुणों का जो वर्णन किया गया है, वह वृक्ष तथा लतावितान के समान हैं।

संमजम नियम फूल फल ज्ञाना । हरिपद रस वर वेद बषाना ॥

शम, यम, नियम आदि फूल हैं, ज्ञान फल है और भगवान के चरणों में प्रेम होना रस है, यह वेदों ने कहा है ।

अउरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥

और जो अनेक प्रकार की कथा हैं, प्रसङ्गवश और जो कथाएँ इसमें आयी हैं, वे सब इस बाग में रहनेवाले विविध वर्ण के शुक, पिक आदि पक्षी हैं ।

दो०—पुलक वाटिका बाग बन, सुष सुविहंग विहार।
मालौ सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु ॥ ३५ ॥

इस वचनरूपी वन में पुलकावली अर्थात् कथा सुनने के आनन्द से शरीर का रोमाञ्चित होना ही पुष्पवाटिका है, उससे जो सुख होता है, वह पक्षी है। जो इसमें विहार करता है, शुद्ध मन माली है, वह सुन्दर आँखों के द्वारा स्नेह जल सींचता है।

जे गावहिं यह चरित संभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥

जो सावधान होकर इस चरित को गाते हैं, शुद्ध भाव से शुद्ध उच्चारण कर जो चरित को गाते हैं, वे ही इस ताल के अर्थात् मानससर के रक्षक हैं।

सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुर वर मानस अधिकारी ॥

जो स्त्री और पुरुष आदर पूर्वक इस चरित को सुनते हैं, वे देवताओं के समान श्रेष्ठ है और वे ही इस मानस के पढ़ने के अधिकारी हैं। जिस प्रकार मानस सरोवर में स्नान आदि का अधिकार देवताओं को है, उसी प्रकार इस मानस के अधिकारी सदा आदरपूर्वक इसके सुननेवाले हैं।

अति बल जे विषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहां न विषय कथा रस नाना ॥

जो खल हैं, संसार की बुराइयों में फसे हुए हैं, वे बगले और कौओं के समान हैं, वे अभागे इस मानसरोवर के पास भी नहीं जाते। विषयों की कथा घोंघा, मेढक और सेवार के समान है, वह इस मानस में नहीं है।

तेहि कारन आवत हियहारे। कामी काक बलाक बिचारे ॥

इसी कारण अर्थात् विषय की कथा इस पुस्तक में नहीं है—विषयियों के योग्य सामग्री का इसमें अभाव है, इसी कारण काक, बगले की समानता रखनेवाले यहाँ आकर हतमनोरथ होते हैं।

आवत एहि सर अति कठिनाई। रामकृपा बिनु आइ न जाई ॥

इस सर के पास आने में अनेक कठिनाइयाँ हैं, बिना राम की कृपा से कोई यहाँ आ नहीं सकता। इस मानस में आने की कठिनाइयाँ ये हैं।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥

बुरे आदमियों का संग कुपंथ है, वह बड़ाही भयानक है और इन बुरे आदमियों के बचन बाघ, सिंह और सर्प के समान हैं, जो जानेसे रोकते हैं।

गृहकारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम सैल बिशाला॥
बन बहु विषय मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

घर के काम काजों की झंझट बड़े बड़े पर्वत के समान हैं, इनका लांघना बड़ाही कठिन है, मोह, मद, मान आदि बन हैं और अनेक प्रकार के कुतर्क भयंकर नदी के समान हैं।

दो०–जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ॥४६॥

श्रद्धारूपी रास्ते का खर्चा जिनके पास नहीं है, सत्सङ्ग का भी जिन्हें अवसर नहीं मिला है और जिनका श्रीरघुनाथ जी में प्रेम नहीं है, उनके लिए यह मानस अगम्य है अर्थात वे यहाँ आ नहीं सकते। श्रद्धालु, सत्सङ्गी और भगवतप्रेमी ही यहां आसकते हैं।

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाइ होई॥
जड़ता जाड विषम उर लागा। गएहु न मज्जन पाव अभागा॥

ऐसे मनुष्य यदि भाग्यवश वहाँ पहुंच भी गये, यदि वहाँ जाने के लिए अनेक कष्ट उठाये और वहाँ किसी प्रकार पहुंच भी गये, तो वहाँ जाते ही उन्हें निद्रारूपी ज्वर आ घेरता है, अज्ञानरूपी अतिकठिन जाड़ा लगने लगता है, अतएव वहाँ जाने पर भी वे अभागे स्नान नहीं कर सकते, ज्वर में स्नान नहीं किया जाता।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥

वे इस सरोवर से विना स्नान तथा जल पान किये ही लौट आते हैं, स्नान तो जड़ता के कारण कर ही नहीं सकते, आचमन भी नहीं कर पाते और अभिमान के साथ लौट आते हैं, अर्थात् मानस सर जाने का अहंकार भी उनके मनमें हो जाता है।

जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥

यदि कोई पूछने आया कि भाई आप वहाँ गये थे, आपने क्या देखा, तो वे उसके उत्तर में सरोवर की निन्दा करने लगते हैं।

सकल विघ्न व्यापहि नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिँ जेही॥

पर ये सब विघ्न उनको नहीं लगते, इन विघ्नों से उन मनुष्यों की हानि नहीं होती, जिनपर रामचन्द्रजी की कृपापूर्ण दृष्टि रहती है।

सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥

वेही इस सरोवर में आदर के साथ स्नान करते हैं और बड़े भयानक तीन तापों में वे जलते भी नहीं।

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ॥

जिनका रामचन्द्रजी के चरणों में उत्तम भाव है अर्थात् निष्काम भक्ति है, वे इस सर को कभी नहीं छोड़ते।

जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥

जो इस सरोवर में स्नान करना चाहे, जो रामकथा का आस्वादन करना चाहे, उसे मन लगाकर सतसङ्ग करना चाहिए, सतसङ्ग के विना-मानस का आस्वाद नहीं मिल सकता है।

अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥

ऐसे रामकथारूपी मानस को मानस की दृष्टि से अर्थात् विचार दृष्टि से देखकर जिसने उसमें अवगाहन किया, उसके तत्वो को जाना, उस कवि की बुद्धि विमल हो गई, उसके मल दूर हो गये।

भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥

हृदय में आनन्द उत्साह उत्पन्न हुआ, प्रेमानन्द का प्रवाह उमड़ आया।

चली सुभग कविता सरिता सी। राम विमल जस जल भरितासी॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक वेद मत मंजुल मूला॥

वही प्रेमानन्द का प्रवाह रामजी के विमल यशरूपी जलसे पूर्ण होकर कविता की नदी के रूपमें प्रवाहित हुआ। उस नदी का नाम सरयू है। वह मंगलों की जड़ है, इस कवितारूपी सरयू नदी के लोकमत और वेदमत दोनों सुन्दर तट हैं।

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तिन तरु मूल निकंदिनि॥

यह कवितारूपी पवित्रनदी मानस की कन्या है और कलिके पापरूप घास तथा पेड़ों की जड़ों को खोदनेवाली है।

दो०—स्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल॥ ४७॥

अनेक प्रकारके स्रोताओं का जो समाज है, वह इस नदी के दोनों तीरों पर के ग्राम, नगर तथा पुर के समान है और वह सज्जनों की सभा जो सब मंगलों की मूल है, वह इस नदी तीर पर की अवधपुरी है।

राम भगति सुरसरि तहँ जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥

राम की भक्तिरूपी गङ्गा उस नदी में जाकर मिली, जिससे सरयूनदी को सुन्दर कीर्ति मिली, अर्थात् वह कविता नदी राम भक्तिरूपी गंगा के संयोग से बड़ी ही प्रसिद्ध हो गई।

सानुज राम समर जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥

रामचन्द्रजी और लचमण जी का युद्धसम्बन्धी जो पवित्र यश है, वह सुन्दर महानद सोनभद्र है और वह आगे चलकर इस नदी में मिला है।

जुग बिच भगति देव धुनि धारा। सोहति सहित सुबिरत बिचारा॥

सरयू और सोनभद्र के मिलने पर भी गंगा जी का ही नाम रहता है, उन्हीं की प्रधानता रहती है। उसी प्रकार कवितारूपी सरयू और यशरूपी

सोनभद्र में भक्ति, गंगा की धारा के समान है, मानो वह वैराग्य और विचार के साथ शोभित हो रही है, अर्थात् भक्ति की ही प्रधानता है।

त्रिविधताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी॥

यह त्रिमुहानी अर्थात् भक्ति, वैराग्य और सुविचाररूपी तीन नदियों का संगम तीन तापों को डरानेवाला है और यह तिमुहानी रामरूप समुद्र की ओर जा रही है।

मानसमूल मिली सुर सरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥

मानस जिसका मूल है रामकथा अथवा सरयू इस गंगा से अथवा रामभक्ति से मिली, इसके सुनने से सज्जनों का मन पवित्र होता है।

बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा॥

बीच बीच में अनेक प्रकार की जो कथाएँ इसमें आयी हैं, वे इस नदी के तीर के वन और बाग के समान हैं।

उमा महेस बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई॥

शिव और पार्वती के विवाह के जो बराती हैं, वे इस नदी के जलचर हैं, वे अनेक हैं तथा भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। रामचन्द्रजी का जन्म तथा आनन्द-बधाई नदी की भँवर और तरंगों की मनोहरता के समान है।

दो०—बाल चरित चहुँ बंधु के, बनज बिपुल बहु रंग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारिबिहंग॥ ४८॥

चारों भाइयों के जो बालचरित हैं, वे अनेक और रंगबिरंगे कमल के फूल के समान हैं, राजा दशरथ की रानी कौशल्या आदि भ्रमर के समान हैं तथा नगरवासी और नौकर-चाकर, जल-पक्षी के समान हैं।

सीयस्वयंबर—कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥

इस कीर्तिनदी में सीताजी के स्वयम्बर की सुन्दर कथा है, वही नदी की सुहावनी छविके समान है।

नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥

इस नदी में जो अनेक प्रश्न किये गये हैं, वे नाव के समान हैं और उनका विवेकयुक्त जो उत्तर है, वह चतुर केवट है।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥

नदी पार जानेवाले पथिकों का समाज वह है, जो कथा सुनने के पश्चात् उसके सम्बन्ध में आपस में बात चीत होती है, जो कथा की आलोचना करके उसका रहस्य समझा जाता है।

घोरधार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम-बरबानी॥

परशुराम का क्रोध करना इस नदी की विकट धारा है और रामचन्द्रजी की सुन्दर वानी उत्तम बँधा हुआ घाट है।

सानुज राम विवाहउछाहू। सो सुभ उमग सुषद सब काहू॥

भाइयों के सहित रामचन्द्रजी का जो विवाह वर्णन है, वह नदी का शुभ उमंग है, वह नदी का उछाल है, जो सब लोगों को सुखदायक है।

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥

इस कथा को कहने से सुनने से जो प्रसन्न होते हैं, जो रोमांचित होते हैं, वे पुण्यात्मा मानो प्रसन्न होकर इस नदी में स्नान करते हैं।

रामतिलकहित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥

रामचन्द्रजी के अभिषेक के लिए जो मंगलमय तैयारियाँ की गईं, जो साज समान एकत्रित किये गये, वे मानो किसी पर्व पर नदी के तीर एकत्र हुए समाज के समान हैं।

काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

केकयी की दुर्बुद्धि ही इस नदी की काई है, जिसके फल से अनेक विपत्तियाँ पड़ीं।

दो०—समन अमित उतपात सब, भरत चरित जपजाग।
कलिअघखलअवगुन कथन, ते जल मल बक काग॥४१॥

कैकयी की बुद्धि से उत्पन्न अनेक प्रकार के उत्पातों को शान्त करने के लिए भरतजी का चरित्र जप यज्ञ आदि के समान है। कलि के पापों का वर्णन इस नदी के जल का मल है और पापियों के दुर्गुणों का वर्णन बक और काग के समान है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनी पावनि भूरी॥

यह कीर्तिरूपी नदी छहों ऋतुओं में सुन्दर है, सभी समय यह सुहावनी है और अत्यन्त पवित्र है।

हिम हिमसैलसुतासिवब्याहू। सिसिर सुखद प्रभुजनमउछाहू॥

हेमन्त ऋतु में हिमालय की कन्या और शिवजी का ब्याह सुखदायक है, शिशिर ऋतु में रामजी के जन्म का उत्साह सुखकारी है।

बरनब राम बिवाह समाजू। सो मुदमंगलमय रितुराजू॥

रामचन्द्रजी के विवाह संबन्धी जो समाज है अर्थात् उत्सव है, जिसका वर्णन मैं करूंगा, वह मुदमंगलमय ऋतुओं का राजा वसन्त ऋतु है।

ग्रीषम दुसह रामबनगवनू। पंथकथा खरआतपपवनू॥

रामचन्द्रजी के वन जाने की घटना असहनीय ग्रीष्म ऋतु है, और वन के मार्ग की जो कथा है, वह तीक्ष्ण धूप और पवन है।

बरषा घोर निसाचररारी। सुरकुलसालि सुमंगलकारी॥

राक्षसों के साथ का घोर युद्ध वर्षा ऋतु है, जो देवतारूपी धान के लिए मंगल करनेवाला है।

रामराजसुख बिनय बड़ाई। बिस्वसुखद सोइ सरद सुहाई॥

रामचन्द्रजी के राज्य, सुख और विनय का जो वर्णन है, वह उज्ज्वल और सुखकारी शरद ऋतु के समान है।

सतीसिरोमनि सियगुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥

सती शिरोमणि जानकीजी के गुणों की जो कथा है, वही इस नदी का निर्मल तथा अनुपम जल है।

भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

भरतजी का स्वभाव इस जल की शीतलता है, जो सदा एक समान रहती है, जिसका वर्णन करना कठिन है।

दो०–अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहुँबंधु की, जल माधुरी सुबास॥ ५०॥

आपस में देखना, बोलना, मिलना, प्रेमपूर्वक परस्पर हंसी और चारों भाइयों का बन्धुत्व इस जल की मधुरता तथा सुगन्ध है।

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारिन थोरी॥

मेरी आर्ति–पीड़ा विनय और दीनता इस जल की लघुता है, हल्कापन है, पर यह गुण ही है दोष नहीं। जल का हल्कापन एक गुण है।

अदभुत सलिल सुनत सुखकारी। आस पिआस मनोमलहारी॥

यह जल अद्भुत है, यह पीने से नहीं; किन्तु सुनने से गुण करता है, इसके सुनने से आशारूपी प्यास तथा मन का मल नष्ट होता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकलकलिकलुषगलानी॥

यह जल रामचन्द्रजी के प्रेम को बढ़ाता है और कलि के पापों से होनेवाली सब ग्लानियों अर्थात् दुःखों को हरता है।

भव स्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

संसार के जन्ममरणरूपी परिश्रम को यह नाश करता है और सन्तोष को भी सन्तुष्ट करता है, अर्थात् मन की वासनाओं का नाश होता है, पाप दुःख दरिद्रता आदि दोषों को यह दूर करता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल विवेक विराग बढ़ावन॥

काम, क्रोध, मद और मोह का यह नाश करता है, निर्मल विवेक तथा वैराग्य को बढ़ाता है।

सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिँ पाप परिताप हिए तें॥

आदरपूर्वक इस जल में मज्जन तथा इसका पान करने से हृदय के पाप तथा ताप नष्ट हो जाते हैं। श्रवण और मनन इस जल के स्नान और पान हैं।

जिन्ह येहि बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥

जिन्होंने इस जल से अपने मन को नहीं धोया, निश्चय उन कायरों का कलिकाल ने नाश किया यह समझना चाहिए।

त्रिषित निरषि रविकर भवबारी। फिरिहैं मृग जिमि जीव दुषारी॥

वे मनुष्य उसी प्रकार दुःखी होकर संसार में भटकते फिरते हैं, जिस प्रकार प्यासा मृगा सूर्य की किरणों में भ्रम से जल समझ कर भटकता फिरता और दुःख उठाता है।

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन, गनगनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहिं, कह कवि कथा सुहाइ॥ ५१॥

रामचन्द्रजी के यशरूपी उत्तम जलके गुणों को विचार कर और उसमें मनको नहवा कर शिव तथा पार्वती का स्मरण कर कवि अर्थात् तुलसीदास अपनी बुद्धि के अनुसार कथा कहते हैं।

(याज्ञवल्क्य और भरद्वाज संवाद)

दो०—अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद॥५२॥

श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल को हृदय में धरकर अर्थात् उनका ध्यान कर और उनकी प्रसन्नता पाकर दोनों मुनियों का मिलन और उनका शुभसंवाद मैं कहता हूँ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथपथ परम सुजाना॥

भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते हैं, उनका रामचन्द्रजी के चरणों में विशेष अनुराग है, वे तपस्वी हैं, शम, दम और दया के निधान हैं, तथा परमार्थ मार्ग में बड़े निपुण हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथपतिहि आव सब कोई ॥

माघमास में जब सूर्य मकर राशि पर आते हैं अर्थात् मकर की संक्रान्ति होती है, तब तीर्थराज में अर्थात् प्रयाग में सब कोई आते हैं।

देव दनुज किन्नर नर स्रेनी। सादर मज्जहिँ सकल त्रिवेनी ॥
पूजन माधवपदजलजाता। परसि अषयबट हरषहिँ गाता ॥

देवता दानव किन्नर तथा मनुष्यों का समूह सभी आदरपूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं, माधव के चरण कमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर प्रसन्न होते हैं।

भरद्वाज आश्रम अति पावन। परमरम्य मुनिवर मनभावन ॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जहिं तीरथ राजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुनगाहा ॥

भरद्वाज का आश्रम बड़ा ही पवित्र है, बड़ा ही रमणीय है, तथा मुनियों के मन को लुभानेवाला है। वहाँ भरद्वाज के आश्रम पर उन ऋषि मुनियों का समाज अर्थात् सभा होती है, जो तीर्थराज में स्नान करने के लिए जाते हैं। वे मुनि प्रातःकाल ही उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं तथा आपस में भगवान की गुणकथा का वर्णन करते हैं।

दो०—ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहिँ तत्व विभाग।
कहहिँ भगति भगवंत कै, संजुतज्ञानविराग ॥ ५३॥

उस ऋषि मुनियों की सभा में ब्रह्म का निरूपण, धर्म का विधान तथा तत्वों का विधान आदि का वर्णन होता है, भगवान की सुन्दर भक्ति तथा ज्ञान वैराग्य आदि का भी वर्णन वहाँ होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज निज आस्रम जाहीं ॥
प्रतिसंबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृंदा ॥

इस प्रकार वे भर माघ स्नान करते हैं, पुनः वे सब अपने अपने

आश्रम को जाते हैं। हरसाल इसी प्रकार का वहाँ आनन्द होता है और मकर स्नान करके मुनिगण चले जाते हैं।

एकबार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्हि सिधाए॥

एकबार मकर भर मुनियों ने स्नान किया, तदनन्तर वे अपने अपने आश्रम को चले गये।

जागबलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी॥

पर भारद्वाजजी ने परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को पैरों पड़कर रख लिया, उन्हें अपने आश्रम पर लौटकर न जाने दिया।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी॥

भरद्वाजजी ने आदरपूर्वक याज्ञवल्क्य मुनि के चरणकमल धोये, पवित्र आसन पर उन्हें बैठाया, उनकी पूजा की, उनके गुणों का वर्णन किया, तदनन्तर वे पवित्र और कोमल स्वर से बोले।

नाथ एक संसउ बड मोरे। करगतवेदतत्व सब तोरे॥

भरद्वाजजी ने कहा, महाराज, मेरे मनमें एक बड़ा सन्देह है और आप समस्त वेदतत्वों को जाननेवाले हैं।

कहत सो मोहि लाग भय लाजा। जौं न कहउँ बड होइ अकाजा॥

वह सन्देह कहते मुझे लज्जा आती है, पर विना कहे भी काम नहीं चलता, क्योंकि उसके विना कहे बड़ी हानि हो रही है।

दो०—संत कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव॥ ५४॥

प्रभो, सज्जन कहते हैं और श्रुति, पुराण तथा मुनि भी इसी नीति का गान करते हैं, कि गुरु से दुराव रखने से—गुरु से बातें छिपाने से शुद्ध विवेक उत्पन्न नहीं होता।

अस विचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥

यही सोच कर महाराज मैं अपना अज्ञान प्रकाशित करता हूँ, हे नाथ, अपने सेवक पर दयाकर आप उस अज्ञान को हरें।

रामनाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा।

रामनाम का अपरिमित प्रभाव है, सज्जन, पुराण तथा उपनिषद आदि यह कहते हैं।

संतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ज्ञानगुनरासी॥

अविनाशी शिवजी सदा उस रामनाम का जप करते हैं, वे स्वयं कल्याण स्वरूप है, छः प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी, ज्ञान और गुण के राशि हैं, जब इतने योग्य शिव जिसका जप करते हैं, तब उसके प्रभाव के अपरिमित होने में सन्देह क्या?

आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परमपद लहहीं॥
सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया॥

संसार में चार प्रकार के जीव हैं, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। ये चारों ही प्रकार के जीव यदि काशी में आकर मरें तो उनको परम पद मिलता है। हे मुनिराज, काशीजी का यह महत्व राममहिमा के कारण है, काशी में मरनेवालों को दया कर शिवजी रामभक्ति का उपदेश करते हैं, जिससे उन्हें परमपद की प्राप्ति होती है।

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोहीं। कहिय बुझाई कृपानिधि मोहीं॥

हे प्रभो, मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं, हे कृपानिधे, यह समझा कर मुझ से कहिये।

एक राम अवधेसकुमारा। तिन्हकर चरित विदित संसारा॥

एक राम अवध के राजा दशरथ के पुत्र हैं, उनका चरित संसार में प्रसिद्ध हैं, वे बड़े विख्यात हैं।

नारि बिरह दुष लहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा॥

जिन्होंने स्त्री विरह का बहुत बड़ा कष्ट उठाया था, उनकी स्त्री सीता

को रावण ने हर लिया था, तब उनको क्रोध आया और उन्होंने युद्धक्षेत्र में रावण को मारा।

दो०–प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम्ह, कहहु बिवेक बिचारि॥ ५५॥

प्रभो, शिवजी जिस राम का जप करते हैं, क्या वे राम येही हैं? महाराज आप सर्वज्ञ हैं, सत्यस्वरूप हैं, विवेकपूर्वक विचार कर कहिये।

जैसे मिटइ मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥

जिससे मेरा यह भ्रम मिटे, वह कथा आप विस्तारपूर्वक कहें।

जागबलकि बोले मुसुकाई। तुम्हहिँ बिदित रघुपति प्रभुताई॥

याज्ञवल्क्य मुनि ने हँसकर कहा, आपको राम की प्रभुता मालुम है।

रामभगत तुम्ह मनक्रमबानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनइ रामगुनगूढ़ा। कीन्हहु प्रस्न मनहुँ अतिमूढ़ा॥

तुम मन वचन और कर्म से रामजी के भक्त हो, मैंने तुम्हारी चतुरता समझ ली। तुम राम के गूढ़गुणों को अर्थात रामके गुणरहस्यों को सुनना चाहते हो, इसीलिए अत्यन्त मूढ़ के समान तुमने यह प्रश्न किया है।

तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥
महा मोह महिषेस बिसाला। राम कथा कालिका कराला॥

भाई, मन लगाकर आदर पूर्वक सुनो, मैं राम की कथा कहता हूँ। यह रामकथा महा मोहरूपी भयानक महिषासुर के लिए कराल कालिका है। कालिका ने महिषासुर का नाश किया था और यह कथा महामोह का नाश करती है।

रामकथा ससि किरनसमाना। संतचकोर करहिं जेहि पाना॥

रामकथा चन्द्र की किरणों के समान है, अर्थात शीतल और आह्लादक है। जिस शशिकिरणरूपी राम कथा को सन्त चकोर, अर्थात सन्तरूपी चकोर पान करते हैं।

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तव कहा बषानी॥

सतीजी ने भी ऐसा ही संशय किया था, उन्होंने भी इसी प्रकार का सन्देह प्रकट किया, तब शिवजी ने विस्तारपूर्वक उनका उत्तर दिया।

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अव, उमासंभुसंवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जहँ, सुनु मुनि मिटिहि विषाद॥५६॥

अब वही शिवपार्वती का संवाद अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ वह संवाद जिस समय और जिस कारण हुआ था सो सुनो, इसके सुनने से तुम्हारा संदेह मिट जायगा।

एकवार त्रेतायुग माहीं। संभु गये कुभंजरिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अषिलेस्वर जानी॥

एक बार त्रेतायुग में शिवजी अगस्त्य मुनि के पास गये, जगन्माता सती भवानी भी उनके साथ थीं, ऋषि ने इनको सब का स्वामी जान कर पूजा।

रामकथा मुनीवर्यबषानी। सुनी महेस परमसुष मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥

मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने रामकथा का वर्णन किया, जिसे सुनकर शिवजी बड़े प्रसन्न हुए। तब ऋषि ने भगवत्भक्ति के सवन्ध में प्रश्न किये, शिवजी ने उनके उत्तर दिये; क्योंकि अगस्त्य ऋषि के समान इस प्रश्न के उत्तर सुनने का अधिकारी मिल गया था।

कहत सुनत रघुपतिगुनगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनिसन विदा मांगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

इसी प्रकार रामचन्द्रजी की गुणकथा कहते सुनते शिवजी वहाँ कुछ दिन ठहर गये। तदनंतर शिवजी ने मुनि से विदा मांगी और दक्षकुमारी सती के साथ वे अपने स्थान को चले।

तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुवंस लीन्ह अवतारा॥

उसी समय पृथिवी का भार उतारने के लिए विष्णु ने रघुकुल में अवतार लिया था।

पितावचन तजि राज उदासी। दंडकवन विचरत अविनासी॥

पिता के वचन से राज छोड़कर मुनि वेष में वे अविनाशी रामचन्द्र दण्डक वन में विचरते थे।

दो०-हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दरसनु होइ।
गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु, गए जान सब कोइ॥ ५७॥

और इधर शिवजी अपने हृदय में यह बात सोचते जाते थे कि किस उपाय से भगवान का दर्शन होगा। यद्यपि प्रभु ने गुप्त रूप से ही अवतार धारण किया है, यदि मैं उनके पास जाऊँ तो उनका अवतार धारण करना लोगों को मालुम हो जायगा, अथवा उनका गुप्त रूप से अवतार लेना सबको मालुम हो गया है।

सो०-संकर उर अति छोभु, सती न जानइ मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची॥

शिवजी के हृदय में इस बात का बड़ा दुःख है; पर सती इस भेद को नहीं जानती। तुलसीदास कहते हैं कि दर्शन का इधर लोभ है, उधर मन में डर है, आंखें दर्शन की इच्छा रखती हैं।

रावनमरन मनुज कर जांचा। प्रभु विधि वचन कीन्ह चह सांचा॥

रावण ने अपनी मृत्यु मनुष्य के हाथ मांगी है। भगवान ने ब्रह्मा के इस वचन को सत्य किया अर्थात् रावण को मारने के लिए उन्होंने मनुष्य रूप में अवतार धारण किया।

जौ नहिं जाउँ रहेइ पछितावा। करत विचारु न बनत बनावा॥

शिवजी अपने मन में कहते हैं कि यदि दर्शनों के लिए न जाऊँ तो पश्चात्ताप नहीं मिटता और दर्शन करने में जो बाधाएँ हैं वे पहले कही ही गयी हैं,। शिवजी विचार करते हैं, पर कोई बात निश्चित नहीं कर सकते।

एहि विधि भये सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥

जिस समय शिवजी इसी तरह अनेक विचार करते थे, उसी समय रावण रामचन्द्र के यहाँ जाकर उपस्थित हुआ।

लीन्ह नीच मारीचहिं संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा।

रावण के साथ नीच मारीच भी था, वह मारीच शीघ्र ही कृत्रिम मृग बन गया।

करि छल मूढ़ हरी वैदेही। प्रभु प्रभाउ तस विदित न तेही॥

इस मायामृग के छल से उस मूर्ख ने सीता का हरण किया, वह मूर्ख है, उसे प्रभु का प्रभाव मालुम नहीं, वह राम और सीता के यथार्थ रूप को नहीं पहँचानता।

मृगबधि बंधु सहित हरि आए। आस्रम देषि नयन जल छाए॥

रामचन्द्र मायामृग को मार कर लछमण के साथ अपने आश्रम पर लौट आये, उन्होने आश्रम को सूना देखा, वहाँ सीता नहीं थीं, यह देख कर राम जी की आँखों में जल भर आया।

बिरह विकल नर इव रघुराई। षोजत विपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग वियोग न जाके। देषा प्रगट विरह दुष ताके॥

विरह-व्याकुल मनुष्य के समान रामचन्द्र की दशा हो गयी, दोनों भाई वन में सीता को ढूढ़ने लगे। जिसको न कभी संयोग का सुख होता है और न वियोग का दुःख, उसीको लोगों ने वियोग के दुःख से प्रत्यक्ष व्याकुल देखा।

दो०-अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद विमोहबस, हृदय धरहिं कछु आन॥ ५८॥

रामचन्द्रजी का चरित्र बड़ा ही अद्भुत है, इसको बड़े चतुर मनुष्य ही जान सकते हैं। जो अज्ञान के कारण राम जी के संबंध में मन में कुछ और

दूसरी तरह की भावना रखते हैं, वे मूर्ख हैं और वे उनके चरित्र को नहीं जान सकते।

संभु समय तेहि रामहिं देषा। उपजा हिय अति हरषु बिसेषा॥

उसी समय शिवजी ने रामजी को देखा, रामजी को देखने से उनके हृदय में एक विशेष प्रकार का हर्ष उत्पन्न हुआ।

भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥

शिवजी ने उस शोभासमुद को आँख भर देखा, पर समय अनुकूल न था, गुप्त अवतार के प्रकट हो जाने का भय था, इसलिए रामजी से परिचय नहीं किया।

जय सच्चिदानंद जगपावन। अस कहि चलेउ मनोजनसावन॥

मदनदहन अर्थात् मानसिक विकारों को नष्ट करनेवाले शिवजी जगत् को पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्द की जय कह कर चले गये।

चले जात सिव सतीसमेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

कृपानिधान शिवजी सती के साथ जा रहे हैं और बार बार उनका शरीर रोमांचित हो रहा है।

सती सो दसा संभु कै देषी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥

शिवजी की यह दशा सती ने देखी, उनके मन में संदेह उत्पन्न हुआ, शिवजी के बार बार रोमांचित होने का कारण क्या है?

संकर जगतवंद्य जगदीसा। सुरनरमुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भये मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

शिव जगत् के स्वामी हैं, समस्त संसार उनकी स्तुति करता है, देवता, मनुष्य, मुनि आदिस भी इनको प्रणाम करते हैं। उन्होंने जय सच्चिदानन्द कह कर एक राजा के लड़के को प्रणाम किया और उस नृपबालक की शोभा देख कर वे मगन हो गये, तन्मय हो गये। इस समय भी उनके हृदय की

प्रीति रोके नहीं रुकती। सती ने इस बात पर अपने मन में इस प्रकार विचार किया।

दो०–ब्रह्म जे व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥ ५६॥

जो ब्रह्म व्यापक है, माया रहित है, जिनका जन्म नहीं हुआ, जो अखंड है, जिनमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं, जो सब को एक समान देखते हैं और जिनको वेद भी नहीं जानता, क्या वे ही शरीरधारण करके मनुष्य हुए हैं?

बिष्णु जो सुरहित नरतनु धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सोकि अज्ञ इव नारी। ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी॥

देवताओं के कल्याण के लिए जिन्होंने मनुष्य शरीर धारण किया है, वे सर्वज्ञ है, जिस प्रकार शिवजी सर्वज्ञ हैं, उसी प्रकार वे भी सर्वज्ञ हैं। वे लक्ष्मीपति विष्णु अज्ञानियों के समान क्या अपनी खोयी हुई स्त्री को ढूंढते फिरेंगे?

संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्वज्ञ जानु सब कोई॥

पुनः शिवजी की बात भी झूठी नहीं हो सकती; क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। सब बातों को जाननेवाले की वाणी झूठ नहीं हो सकती, क्या होनेवाला है, कौन कैसा है आदि बातों का उसे यथार्थ ज्ञान रहता है। शिवजी सर्वज्ञ हैं, यह बात कोई छिपी नहीं है, किन्तु सभी इसे जानते हैं।

अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा॥

इस प्रकार के अनेक सन्देह सतीजी के मन में उत्पन्न हुए, उनके मन में संदेह पर संदेह उत्पन्न होते गये, वे कोई निश्चय न कर सकीं, क्योंकि उनके मन में तब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ था।

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥

भवानी ने अपने इन संदेहों को प्रकाशित नहीं किया, यद्यपि उन्होंने

शिवजी से अपने संदेह के संबंध में कोई बात न की, तथापि शिवजी ने सब जान लिया, क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं, उन्हें लोगों के मन की बातें मालुम होती हैं।

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिय मन काऊ॥

शिवजी ने कहा सती सुनो, तुम्हारा स्त्रीस्वभाव है, इसीसे तुमने यथार्थ निर्णय न कर पाया और तुम अनेक प्रकार के संदेह करती हो, तुमने जिस प्रकार के संदेह किये हैं, उस प्रकार के संदेह किसी के भी हृदय में स्थान नहीं पाते। कोई भी ऐसा संदेह नहीं करता। तुमने ऐसा संदेह किया, इसलिए तुम्हारा स्वभाव स्त्री का है।

जासु कथा कुंभजरिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहिं सुनाई॥

कुम्भज ऋषि अगस्त्य ने जिसकी कथा कही है और जिसके भक्ती का वर्णन मुनियों के सामने मैंने किया है।

सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा॥

वे ही रघुवीर मेरे इष्टदेव हैं, मुनि विद्वान आदि जिनकी सेवा करते हैं। वे मेरे इष्टदेव हैं। अतएव मैंने उन्हें प्रणाम किया है।

छं०-मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमलमन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवननिकायपति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगतहित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

मुनि, विद्वान, योगी तथा सिद्ध निष्पाप मन से सदा जिसका ध्यान करते हैं, जिसका यथार्थ स्वरूप न जानने के कारण वेद पुराण तथा तंत्र आदि जिसकी कीर्ति नेति नेति गाते हैं, वे ही राम हैं, वे व्यापक ब्रह्म हैं, चतुर्दश भुवनों के स्वामी हैं और माया के अधिष्ठाता हैं। वे ही राम अपने भक्तों के कल्याण के लिये उत्पन्न हुये हैं, उनका यह उत्पन्न होना अपनी प्रेरणा से है, वे रघुकुल में उत्पन्न हुए, अतएव रघुकुलमणि हैं।

सो०—लाग न उर उपदेस, जदपि कहेउ सिव वार वहु।
बोले बिहंसि महेसु, हरिमायावलु जानि जिय॥

शिवजी ने कई बार कहा पर उनकी बातों का प्रभाव भवानी पर नहीं पड़ा, भवानी ने उनकी बातें कुछ भी नहीं समझीं। तब शिवजी ने समझा कि ये विष्णुमाया के अधीन हो गयीं हैं। इसलिए यथार्थ बातें इनकी समझ में नहीं आती, यह समझ कर शिवजी हँसे और बोले—

जौ तुम्हरे मन अतिसंदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥

यदि तुम्हारे मन में इतना संदेह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेतीं। मेरी बातों पर विश्वास नहीं तो जाकर तुम्हीं स्वयं जाँचो कि मेरी बातें सच हैं या झूठ; अर्थात् रामचन्द्रजी के बारे में जो मैंने कहा है वह ठीक है कि नहीं !

तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहिँ पाहीं॥
जैसे जाइ मोहभ्रम भारी। करेहु सो जतन विवेक विचारी॥

जब तक तुम परीक्षा लेकर मेरे पास लौट कर आ जाओ, तब तक मैं इसी वट की छाया में रहता हूँ। विवेक पूर्वक विचार कर वैसा उपाय करो जिससे यह मोह का भारी भ्रम दूर हो।

चली सती सिव आयसु पाई। करइ विचारु करउँ का भाई॥

शिवजी की आज्ञा पाकर सती चलीं, वे मन में विचार करती जाती थीं कि मैं क्या करूँ अर्थात् किस प्रकार परीक्षा लूँ, किस उपाय के द्वारा मेरे संदेह दूर हों।

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहँ नहिँ कल्याना॥
मोरेहु कहे न संसय जाहीं। विधिविपरीत भलाई नाहीं॥

सती तो गयी, इधर शिवजी ने मन में निश्चय किया, लक्षणों से उन्होंने अनुमान किया कि दक्षसुता का अर्थात् सती का कल्याण नहीं, क्यों

कि मेरे समझाने पर भी उनका संदेह नहीं मिटता, भाग्य खोटा होने पर भी क्या किसी की भलाई हो सकती है ?

होइहि सोइ जो रामरचि राखा। को करि तरक बढ़ावइ साखा ॥

पर इस विषय में विचार करना व्यर्थ है, होता तो वही है जो राम की इच्छा होती है, अथवा जो रामचन्द्र ने पहले से बना रखा है, अतएव इस विषय में तर्क वितर्क क्यों किया जाय ।

असि कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

ऐसा कह कर शिवजी हरि का नाम जपने लगे और सती श्रीरामचन्द्रजी के पास गयीं, जो रामचन्द्र प्रभावशाली तथा सुखधाम हैं।

(सतीकृत परीक्षा और उसका फल)

दो०-पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ॥ ६० ॥

वार वार विचार करके सती ने सीता का रूप धारण किया और वे उसी रास्ते से आगे चलीं, जिस रास्ते से पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी आते थे। सती ने बहुत सोच विचार कर रामचन्द्रजी की परीक्षा के लिए सीता का रूप धारण किया ।

लछिमन दीख उमा कृतवेषा। चकित भये भ्रम हृदय विसेषा ॥

सती ने अपना वेष बदला है, पहला रूप छोड़ कर दूसरा रूप धारण किया है, यह बात लक्ष्मण ने देखी अर्थात् जानी, पर वे इससे चकित हुए, उनके मन में अनेक प्रकार के सन्देह उत्पन्न हुए।

कहि न सकत कछु अतिगंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥

इस घटना को देखकर लक्ष्मणजी कुछ कह न सके, क्योंकि वे स्वभाव से ही गम्भीर हैं, बहुत बोलते नहीं। बुद्धिमान लक्ष्मण प्रभु के प्रभाव अर्थात् शक्ति को भी जानते हैं अर्थात् लक्ष्मणजी को यह बात मालूम थी कि मेरे विना बतलाये भी रामजी इनको पहचान लेंगे।

सतीकपट जानेउ सुरस्वामी। सबदरसी सब अंतरजामी॥
सुमिरत जाहि मिटइ अज्ञाना। सोइ सर्वज्ञ राम भगवाना॥

सुरस्वामी अर्थात् देवस्वामी रामजी ने सती का कपट जान लिया, क्योंकि वे तो सर्वदर्शी और सर्वान्तर्यामी हैं। वे सभी को देखते हैं और सभी के मन की बात जानते हैं। जिनके स्मरण करने से अज्ञान मिट जाता है वेही रामचन्द्रजी हैं, भगवान् हैं और सर्वज्ञ है। फिर उनमें अज्ञान कैसे रह सकता है।

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारिसुभाउ प्रभाऊ॥

सती ने वहाँ भी—भगवान् रामचन्द्र के सामने भी दुराव = छिपाव करना चाहा, यह देखो स्त्री-स्वभाव का कैसा प्रभाव है। रामचन्द्रजी के सामने जाने पर भी सती ने कपट का त्याग न किया। तुलसीदास जी इसका कारण बतलाते हैं—'स्त्रीस्वभाव'।

निजमायाबल हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदुबानी॥

यह देखकर रामचन्द्रजी ने अपनी माया के बल की मन ही मन प्रशंसा की और हँसकर वे कोमल वचन बोले।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पितासमेत लीन्ह निज नामू॥

प्रभु रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर सती को प्रणाम किया और प्रणाम करते समय पिता के नाम के साथ अपना नाम भी लिया। पिता और अपना नाम लेकर प्रणाम करने का सदाचार है। यथा—मैं राजा दशरथ का पुत्र रामचन्द्र आपको प्रणाम करता हूँ।

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

पुनः रामचंद्रजी ने कहा, शिवजी कहाँ हैं? आप वन में अकेली क्यों घूम रही हैं? वृषकेतु शिवजी का नाम है, क्योंकि उनकी ध्वजा में वृष-बैल का चिह्न है।

दो०-रामबचन मृदु गूढ सुनि, उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिँ, चलीं हृदय बड़ सोचु॥ ६१॥

रामचन्द्रजी के कोमल तथा अभिप्रायपूर्ण वचन सुनकर सती को बहुत सङ्कोच हुआ, वे लज्जित हुईं, उनका मन बड़ाही दुःखी हुआ, वे डरती डरती शिवजी के पास चलीं।

मैं संकर कर कहा न माना। निज अज्ञान राम पर आना॥

सती कहने लगीं—मैंने शिव का कहना न माना, उनकी बातों पर विश्वास न किया और अपने अज्ञान के कारण मैं राम के पास आयी।

जाइ उतरु अब देइहउँ काहा। उर उपजा अतिदारुन दाहा॥
जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा॥

अब जाकर—रामचंद्रजी के पास से लौटकर शिवजी को मैं क्या उत्तर दूँगी, यह सोचकर उनके मन में असहनीय दुःख उत्पन्न हुआ। सती का मन दुःखित हो रहा है अपने इस कर्म से उनके मनमें व्यथा हो रही है। रामचन्द्र जी ने यह जान लिया और अपना प्रभाव प्रकट करके उनको बतलाया। अर्थात् उन्हें अपनी और शक्ति बतलायी।

सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्रीभ्राता॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहितबंधुसिय सुंदरवेषा॥

सती रास्ते में जारही हैं, उन्होंने एक बड़ी आश्चर्य की बात देखी, वह बात यह थी कि, सती के आगे रामजी सीता और लछमण के साथ वर्तमान हैं। सती ने जब पीछे की ओर देखा तो वहाँ भी लछमण और सीता के साथ सुन्दर वेष में वे दिखाई पड़े।

जहँ चितवत तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना॥

सती जिधर ही देखती हैं उधर ही वे प्रभु—रामचन्द्रजी को बैठे देखती हैं और वहीं प्रवीण सिद्ध तथा मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं।

देखे सिव बिधि बिष्णु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका॥

वंदत चरन करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा॥

इसके अतिरिक्त सती ने अनेक शिव अनेक ब्रह्मा तथा अनेक विष्णु देखे, जिनके प्रभाव की कोई सीमा नहीं थी और वे एक से एक बढ़ कर थे। सती ने और भी सब देवताओं को देखा, जिनके स्वरूप विचित्र थे, वे सब प्रभु की वन्दना करते हैं यथा उनकी सेवा करते हैं।

दो०-सती विधात्री इंदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनरूप॥ ६२॥

सती ब्रह्माणी और लक्ष्मी को भी उन्होंने देखा, वे अनेक थीं और अतुलनीय थीं। इनका स्वरूप वेष भी ब्रह्मा आदि देवताओं के अनुरूप ही था।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥

सती ने देखा कि जितने रामचंद्र के रूप इधर उधर दिखाई पड़ते हैं: उतनेही अपनी अपनी शक्तियों के साथ समस्त देवता भी हैं। अर्थात् एक एक रामचंद्र जी के पास समस्त देवता अपनी अपनी शक्तियों के साथ वर्तमान हैं, इसी प्रकार दूसरे, तीसरे रामचन्द्रजी के यहाँ भी उसी रूप में सब देवता वर्तमान हैं।

जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥

संसार के स्थावर और जंगम जितने जीव हैं, उन सबको भी सती ने देखा, जो अनेक प्रकार के थे।

पूजहिँ प्रभुहिँ देव बहुवेषा। रामरूप दूसरि नहिँ देखा॥

अनेक वेषधारी देवता प्रभु की पूजा करते हैं, सती ने यह देखा, पर रामचन्द्र का दूसरा रूप न देखा अर्थात् सर्वत्र रामचन्द्रजी का एक ही रूप वर्तमान था। यही बात पुनः नीचे की चौपाइओं से भी कही जाती है।

अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे॥
सोइ रघुवर सोइ लछिमन सीता। देखि सती अति भई सभीता॥

सती ने सीताजी के साथ अनेक रामचन्द्रजी को देखा, पर उनका रूप

एक ही था। वे ही रामचन्द्र वे ही लछमण और वे ही सीता सब स्थानोंपर वर्तमान हैं, यह देखकर सती डर गयीं।

हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठी मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीष तहँ दच्छकुमारी॥

हृदय धड़कने लगा, शरीर की सुध जाती रही, सती वहीं रास्ते में ही आँखें बन्द करके बैठ गयीं। पुनः थोड़ी देर के बाद दच्छकुमारी सती ने आँखें खोल कर देखा, पर वहाँ कोई भी दृश्य दिखाई न पड़ा।

पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

सती ने बार बार रामचन्द्रजी के चरणों पर अपना सिर नवाया, अर्थात् सिर नवा कर प्रणाम किया और वे वहाँ से शिवजी के पास चलीं।

दो०—गई समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन विधि, कहहु सत्य सब बात॥ ६२॥

सती जब शिवजी के समीप गयीं, तब उन्होंने हँस कर कुशल प्रश्न पूछे। शिवजी ने कहा, किस प्रकार तुमने परीक्षा ली वह सब बात सचसच बतलाओ।

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयबस सिवसन कीन्ह दुराऊ॥

सती ने रामचंद्र के प्रभाव को समझा था अर्थात् देखा था। शिवजी रामचन्द्रजी के विषय में जो कहते थे उसे सच पाया था। अतएव वे डरीं कि यदि मैं सची सची सब बातें प्रकाशित करूं तो शिवजी अपनी बात न मानने के कारण मुझ पर अप्रसन्न होंगे। अतएव सती ने शिवजी से वहाँ की घटना छिपायी।

कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं॥
जो तुम कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति असि सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना॥

बहुरि राममायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा॥

नाथ, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली, आप ही के समान जाकर मैंने भी प्रणाम किया, आपने जो कहा है वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में भी उस पर अर्थात् रामचन्द्रजी के विषय की आपकी बातों पर विश्वास होता है। मैंने आपही की बातों पर विश्वास कर लिया, इसीसे परीक्षा नहीं ली। तब शिव ने ध्यान धर कर देखा और सती ने जो कुछ किया था, वह सब जान लिया। इन सब बातों को देख सुनकर रामचंद्रजी की माया को उन्होंने प्रणाम किया, जिस माया ने सती से भी झूठ बोलवाया।

हरिइच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना॥

सुजान शिवजी अपने मन में विचारने लगे कि, भगवत को प्रेरणा से जो होनहार होता है, वह बड़ा बलवान है, वह बिना हुए नहीं रहता।

सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ विषाद विसेषा॥

सती ने सीता का वेष धारण किया यह बात जान कर शिवजी के मन में बड़ा दुःख हुआ।

जौ अब करउँ सतीसन प्रीती। मिटइ भगतिपथ होइ अनीती॥

अब यदि मैं सती के साथ प्रीति करूँ, इनसे स्त्री का संबध रक्खूँ तो भक्तिमार्ग की मर्यादा मिटती है और ऐसा होना बड़े ही अधर्म की बात है।

दो०-परम पुनीत न जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदय अधिक संताप॥ ६४॥

स्त्री पुरुष का सम्बन्ध बड़ा पवित्र है, उसका त्याग करना कठिन है और उस प्रेममय सम्बन्ध को अब बनाये रखना भी अधर्म है। अतएव शिवजी कुछ साफ साफ नहीं कहते, पर उनका हृदय भीतर ही भीतर जलता है।

तब संकर प्रभु पद सिरनावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥

तब शिवजी ने प्रभु को प्रणाम किया और उनका स्मरण किया रामचन्द्र के स्मरण करते ही उनके मन में यह बात आयी।

एहि तन सतिहिं भेंट मोहिं नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मनमाहीं॥

शिवजी ने मन ही मन यह संकल्प किया, ऐसा दृढ़ निश्चय किया कि अब इस शरीर से सती से मेरी भेंट न होगी। अर्थात् सती के इस शरीर को मैं अपनी स्त्री न समझूँगा।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥

बुद्धिपूर्वक धैर्य धारण करनेवाले शिवजी ऐसा विचार कर भगवान का स्मरण करते हुए अपने घर चले।

चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढाई॥

शिवजी चले जा रहे हैं, उस समय यह सुन्दर आकाशवाणी हुई, जय महेश, आपने अच्छी तरह भक्ति दृढ़ की, अपनी भक्ति संबंधी दृढ़ता का अच्छा परिचय दिया।

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥

आपके बिना ऐसा प्रण दूसरा कौन कर सकता है, आप समर्थ राम-भक्त हैं, आप भगवान हैं। आकाशवाणी सुन कर सती ने अपने मन में सोचा और सङ्कोच के साथ उन्होंने शिवजी से पूछा—

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीन दयाला॥

हे कृपाल, आपने कौन प्रण किया है कहिए, आप सत्य के धाम हैं, प्रभु आप तो दीनों पर दया करते हैं।

जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥

यद्यपि सती ने अनेक प्रकार से पूछा, तथापि त्रिपुरआराति अर्थात् शिवजी ने कुछ भी नहीं कहा।

दो०-सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वज्ञ।
कीन्ह कपट मैं संभुसन, नारि सहज जड अज्ञ ॥ ८५ ॥

सती ने अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी ने सब बातें जान ली हैं, शिवजी से जो कपट मैंने किया है वह सब इनको मालूम हो गया। स्त्रियों की जड़ता स्वाभाविक है, वे मूर्ख होती हैं। सती ने अपने कार्य को मूर्खतापूर्ण समझा और उसके लिए स्त्रीजाति की स्वाभाविक जड़ता और मूर्खता को कारण बतलाया।

सो०-जल पय सरिस विकाइ, देषहु प्रीति की रीति भलि॥
विलग होइ रसजाइ, कपटषटाई परत पुनि॥

प्रीति की रीति बड़ी ही अच्छी है, देखिए जब जल दूध से प्रीति कर लेता है अर्थात् जब जल दूध में मिल जाता है, तब दोनों एक ही भाव बिकते हैं। पर कपटरूपी खटाई के पड़ते ही दोनों अलग अलग हो जाते हैं, उनका रस जाता रहता है।

हृदय सोच समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥

अपनी करनी पर विचार करने से सती के मन में बड़ा दुःख हुआ, उन्हें इतनी अधिक चिंता हुई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥

कृपासिन्धु शिवजी बड़े ही अगाध हैं, उनके मन की बातों का पता किसी को नहीं लगता, अतएव उन्होंने मेरे अपराधों को प्रकाशित नहीं किया।

संकररुष अवलोकि भवानी। प्रभु मोहिँ तजेउ हृदय अकुलानी॥

शंकर की रुख देख कर भवानी ने समझा कि प्रभु शिवजी ने अब मेरा त्याग किया और इस समझ से वे अपने हृदय में बहुत व्याकुल हुईं।

निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँइव उर अधिकाई॥

सती अपने अपराधों को जानती हैं, वे अपराधिनी हैं, अतएव वे कुछ

कह भी नहीं सकतीं, वे शिवजी से प्रार्थना भी नहीं कर सकतीं, अतएव आवाँ के समान उनका हृदय अधिकता से तप रहा है।

सतिहिं ससोच जानि वृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुषहेतु॥

वृषकेतु शिवजी ने जब सती को दुखी देखा, तब उनके सुख के लिए, उन्हें प्रसन्न करने के लिए, सुन्दर कथा उन्होंने सुनायी।

बरनत पंथ विविध इतिहासा। विस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥

रास्ते भर अनेक प्रकार के इतिहास कहते हुए; शिवजी कैलाश पर्वत पर पहुँच गये।

तँह पुनि संभु समुझि पन आपन। बैइठे बटतर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूप संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

वहाँ अर्थात् कैलास पर पहुँचने पर शिवजी ने अपने प्रण का स्मरण किया और वे एक वटवृक्ष के नीचे कमलासन लगा कर बैठ गये। शिवजी ने अपना स्वाभाविक रूप स्मरण किया, उनकी अखंड समाधि लग गयी।

दो०—सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोच मनमाहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं॥ ६६॥

जब शिवजी समाधिमग्न हुए तब सती कैलाश में रहने लगीं, पर उनका मन बहुत ही दुःखी रहता था। सती और शिव में इस अन्तर पड़ने का भेद किसीको मालूम न था। सती का एक दिन एक युग के समान बीतता था।

नित नवसोच सती उर भारा। कब जइहउँ दुषसागर पारा॥
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिवचन मृषा करि जाना॥

मैं कब इस दुखसमुद्र के पार जाऊँगी, इस बात का दुःख सती के मन में प्रतिदिन नया नया होकर भरने लगा अर्थात् बढ़ने लगा। सती ने अपने मन में कहा कि मैंने रामचन्द्र का अपमान किया है, यह पहला दोष है, और पुनः पतिदेव के बचन को झूठा समझा, यह दूसरा दोष है।

सो फल मोहिं विधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥

इन दोषों का फल मुझे विधाता ने दिया। ऐसे दोषों के लिए जो कुछ उचित था वही उन्होंने किया।

अब विधि अस बूझिय नहिं तोही। संकर विमुख जिआवसि मोही॥

विधि, अब तुमको ऐसा नहीं करना चाहिए, शंकरजी के विमुख होने पर मुझे क्यों जिला रहे हो अर्थात् शंकर जी के विमुख होने पर अब मेरा मर जाना ही अच्छा है।

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महँ रामहिँ सुमिरि सयानी॥

सती के हृदय में कितना दुःख बीत रहा है, उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, बुद्धिमती सती ने मन ही मन रामजी का स्मरण किया।

जौं प्रभु दीनदयाल कहावा। आरतिहरन वेद जस गावा॥

प्रभु, यदि आप दीनदयाल कहे जाते हैं। आप दुःख दूर करनेवाले हैं आपके इस यश को वेदों ने भी गाया है।

तौ मैं विनय करउँ कर जोरी। छूटउ वेगि देह यह मोरी॥

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि बहुत शीघ्र मेरा यह शरीर छूट जाय।

जौ मोरे शिवचरन सनेहू। मन क्रम वचन सत्य व्रत एहू॥

यदि मेरा शिवजी के चरणों में स्नेह हो और मन वचन तथा कर्म से मेरा यही सत्य व्रत हो—

दो०-तौ सबदरसी सुनिय प्रभु, करउ सो वेगि उपाइ।
होइ मरन जेहि विनहिं स्रम, दुसह विपत्ति विहाइ॥६७॥

तो हे समदर्शी प्रभु, आप मेरी प्रार्थना सुनें आप वैसा, उपाय करें जिससे शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो, जिससे विना परिश्रम के इस न सह सकने योग्य विपत्ति का नाश हो।

एहि विधि दुषित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुष भारी॥

प्रजापति दक्ष की कन्या सती इसी प्रकार दुःखित हो रही हैं, उनको बड़ा ही कठिन दुःख हो रहा है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

बीते संवत सहस सतासी। तजो समाधि संभु अविनासी॥
रामनाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे॥

एकहजार सतासी वर्ष बीत गये, तब अविनाशी शिवजी ने समाधि का त्याग किया कुछ लोग सतासी हजार वर्ष अर्थ बतलाते हैं पर वह ठीक नहीं मालूम पड़ता, कवि का वैसा तात्पर्य रहने पर "सतासी सहस" पाठ होता। समाधि से उठ कर शिवजी रामनाम स्मरण करने लगे, तब सती ने समझा कि जगत्पति शिवजी जागे, उनकी समाधि टूटी।

जाइ संभुपद वंदन कीन्हा। सन्मुख संकर आसन दीन्हा॥

सती ने जाकर शिवजी के चरणों को नमस्कार किया, शिवजी ने सामने आसन दिया, अर्थात् अपने सामने सती के बैठने के लिए आसन दिया।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छप्रजेस भये तेहि काला॥

शिवजी सती के बैठ जाने पर रसीली हरिकथा कहने लगे। उन्होंने कहा, उस समय अर्थात् बहुत प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति थे।

देखा विधि विचारि सब लायक। दच्छहिँ कीन्ह प्रजापतिनायक॥

ब्रह्मा ने उन्हें सब प्रकार से योग्य समझा, अतएव उन्हें अर्थात् दक्ष को सब प्रजापतियों का नायक बनाया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा॥

यह बहुत बड़ा अधिकार जब दक्ष ने पाया, तब उनके मन में बड़ा अभिमान हुआ, वे अपनेको सबसे बड़ा समझने लगे।

नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥

इस संसार में ऐसा कोई भी नहीं जन्मा है जिसे प्रभुता पाने पर अहङ्कार न हो। प्रभुता से अहङ्कार का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, संसार में ऐसा कोई जन्मा नहीं है, जिसे प्रभुता पाने पर अहङ्कार न हो।

दो०-दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मषभाग॥ ६८॥

सब मुनियों से पूछ कर दत्त बड़ा यज्ञ करने लगे, जो देवता यज्ञ में भाग पाते थे उन सबको उन्होंने निमन्त्रित किया।

किन्नर नाग सिद्ध गंधर्वा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा॥
विष्णु विरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥

किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, तथा सब देवता अपनी अपनी बधुओं के साथ यज्ञ में भाग लेने के लिए चले। विष्णु, ब्रह्मा और शिव को छोड़ कर और सब देवता अपने अपने विमानों को सजा कर चले।

सती बिलोके गगन बिमाना। जात चले सुंदर विधि नाना॥
सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥
पूछेउ तब सिव कहेउ बषानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥

सती ने आकाश में अनेक प्रकार के सुन्दर विमानों को जाते देखा, उन विमानों पर अपसरा गण मनोहर गान करती हुई जाती थीं जिन के सुनने से मुनियों का ध्यान टूट जाता था, सती ने इन विमानों के जाने का कारण पूछा, शिव ने बतला दिया, पिता यज्ञ कर रहे हैं यह सुन कर सती को कुछ हर्ष हुआ।

जो महेसु मोहीं आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहउ मिस एहीं॥

सती ने विचारा कि यदि शिवजी मुझे आज्ञा दें तो इसी बहाने कुछ दिनों वहाँ जाकर रहूँ।

पतिपरित्याग हृदय दुषु भारी। कहइ न निज अपराध विचारी॥
बोली सती मनोहर बानी। भयसंकोचप्रेमरससानी॥

पति के परित्याग का उनके हृदय में बड़ा भारी दुःख था, वे अपने अपराधों की गुरुता देख कर कुछ कहती नहीं थी। अन्त में सती ने भय, लज्जा और प्रेमयुक्त मनोहर बचन कहे।

दो०—पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ॥ ६९॥

पिता के घर में बड़ा भारी उत्सव हो रहा है, यदि प्रभु की आज्ञा हो तो हे कृपालु, मैं उसे सादर देखने जाऊँ। सादर का अर्थ है आदर के साथ पर यहाँ इससे वाक्य के अर्थ में कोई विशेषता नहीं आती।

(सती का दक्षयज्ञ में जाना उनकी मृत्यु और यज्ञ नाश)

कहेहु नीक मोरे मनभावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥

शिवजी ने कहा, तुमने ठीक कहा, तुम्हारा कहना मुझे भी अच्छा लगता है, पर इसमें एक बात अनुचित है कि, वहाँ से निमंत्रण नहीं आया है।

दच्छ सकल निजसुता बोलाई। हमरे बयर तुम्हहु बिसराई॥

दक्ष ने अपनी अन्य सभी कन्याओं को बुलाया है, पर हमारे वैर के कारण वह तुम्हें भूल गये हैं, तुम्हारे लिए उन्होंने निमंत्रण नहीं भेजा है।

ब्रह्मसभा हमसन दुखु माना। तेहिते अजहुँ करहिं अपमाना*॥

ब्रह्म सभा में दक्ष हम से दुःख मान गये थे अर्थात् अप्रसन्न हो गये थे, इस कारण वह आज तक मेरा अपमान करते जाते हैं।

---

* एक बार देवताओं की सभा बैठी थी। दक्षप्रजापति उस सभा में आये। उनको देखकर सब देवता उठ खड़े हुए, पर शिव, विष्णु और ब्रह्मा ये तीनों नहीं उठे दक्ष ने ब्रह्मा को प्रणाम किया पर शिव का आचरण उनको बहुत बुरा लगा। उन्होंने शिवको लक्ष्य कर के कहा इस नीतिभ्रष्ट ने मेरा अपमान किया, सदाचार का उल्लङ्घन किया। इससे मेरी कन्या ब्याही गयी है अतएव यह मेरे शिष्य के समान है, फिर भी इसने मुझे प्रणाम नहीं किया। यह इस देवसमाज में बैठने योग्य नहीं है। इस प्रकार शिव की निन्दा करके दक्ष ने उनको शाप दिया कि आज से शिव को यज्ञ में भाग न मिले। नन्दीश्वर ने जब अपने प्रभु का अपमान देखा तब उन्होंने भी दक्ष को धर्मविमुख होने का शाप दिया। भृगु ऋषि ने भी नन्दीश्वर को शाप दिया। शिव ने जब यह कलह देखा तब वे उस सभा से उठकर चले आये।

जौ विनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥

भवानी, यदि तुम विना बुलाये वहाँ जाओगी तो शील, स्नेह तथा मर्यादा वहा कुछ न रहेगी।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइय विनु बोलेहु न संदेहा॥
तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहां गये कल्यान न होई॥

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए इसमें सन्देह नहीं, पर इनमें जहाँ विरोध हो गया हो, वहाँ जाने पर कल्याण नहीं होता।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावीवस न ज्ञान उर आवा॥

शिवजी ने अनेक प्रकार से सती को समझाया, पर भावीवश उनके हृदय में ज्ञान नहीं आया। होनहार बुरा था इसी कारण वे कुछ समझ न सकीं।

कह प्रभु जाहु जो विनहिँ बोलाये। नहिँ भलि बात हमारे भाये॥

सती का हठ देखकर शिवजी ने कहा, जाओ, पर जो विना बुलाये जाती हो यह बात मेरी समझ से ठीक नहीं है।

दो०-कहि देखा हर जतन बहु, रहै न दच्छकुमारि।
दिये मुख्यगन संग तव, बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥ ७०॥

शिव ने अनेक प्रकार के यत्न कर के देखा, पर सती रहने के लिए राजी न हुईं, तव त्रिपुरारी शिव ने अपने मुख्य गण को साथ देकर उन्हें विदा किया।

पिता भवन जव गई भवानी। दच्छत्रास काहु न सनमानी॥
सादर भलेहि मिली एक माता। भगिनी मिली बहुत मुसुकाता॥

भवानी जव पिता के घर गयीं तव दक्ष के भय से किसी ने भी इनका आदर सत्कार नहीं किया। दक्ष ने भी नहीं किया और उनके डर से दूसरों ने भी न किया, पर सती की माता उनसे आदरपूर्वक मिली, सती जब

अपनी बहिनों से मिली, तब उनलोगोंने हंस दिया, अर्थात् हंसकर तिरस्कार किया।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहिँ बिलोकि जरे सब गाता॥

दक्ष ने भी कोई कुशल संवाद नहीं पूछा, सती को देखते ही उनका समूचा अंग जलने लगा।

सती जाइ देषेउ तब जागा। कहहुँ न दीष संभु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमान समुझि उरदहेउ॥

तब सती यज्ञ देखने लगीं, पर वहाँ कहीं भी उन्होंने शिवजी का भाग नहीं देखा। तब सती को शिवजी की बातें स्मरण आयीं, इस प्रकार अपने प्रभु शिवजी का अपमान देखकर उनका कलेजा जलने लगा अर्थात् क्रोध और दुःख से वे सन्तप्त हो गयीं।

पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा। जस यह भयउ महापरितापा॥

सती को पहला दुःख इतना नहीं मालूम हुआ था। पर यह दुःख उन्हें बहुत बड़ा मालूम हुआ।

यद्यपि जग दारुन दुष नाना। सब तें कठिन जातिअपमाना॥
समुझिसोसतिहि भयउ अतिक्रोधा। बहु विधि जननी कीन्हप्रबोधा॥

संसार में यद्यपि अनेक दुःख हैं; और वे कठिन भी हैं पर उन सबसे बढ़कर दुःख जाति के मनुष्यों द्वारा अपमानित होना है। इस बात को समझकर सती को बड़ा क्रोध हुआ, बहुत प्रकार से उनकी माता ने उन्हें समझाया।

दो०-सिव अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोली बचन सक्रोध॥७१॥

सती शिवजी का अपमान न सह सकीं, हृदय भी उनका शान्त न हुआ, तब वे समूची सभा को ललकार कर क्रोधपूर्वक बोलीं।

सुनहु सभासद सकलमुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकरनिंदा॥

सो फल तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू॥

हे सभासदो, समस्त मुनियों, आप लोग सुनें, शिवजी की निन्दा जिन जिनने की होगी या सुनी होगी, वे सब उसका फल शीघ्र ही पावेंगे और पिता को भी अच्छी तरह इसके लिए पश्चात्ताप करना होगा।

संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहां तहं असि मरजादा॥
काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूंदि नत चलिय पराई॥

सन्त शिव और विष्णु की निन्दा जहाँ सुनें वहाँ के लिए यह परम्परागत सदाचार है, यदि वस चले तो निन्दा करनेवाले की जीभ काट ले, यदि वस न चले तो कान बन्द कर के वहाँ से चला जाय।

जगदातमा महेस पुरारी। जगतजनक सब के हितकारी॥

पुरारी महेश जगत् के आत्मा हैं अर्थात् सब जगत् में व्यापक हैं, वे जगत् के उत्पादक पिता हैं और सब के हित करनेवाले हैं।

पिता मंदमति निंदति तेही। दच्छसुक्रसंभव यह देही॥

हमारे पिता अज्ञानी हैं, जो उन शिव की निन्दा करते हैं। यह मेरा शरीर उन्हींका है, उन्हींके वीर्य से उत्पन्न हुआ है।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू॥

हृदय में चंद्रमौलि शिव का ध्यान कर मैं उसी कारण से-इस शरीर के दक्ष के होने के कारण से मैं शीघ्र ही इसका त्याग करूंगी।

अस कहि जोगअगिनि तनुजारा। भयउ सकल मष हाहाकारा॥

ऐसा कह कर योग की अग्नि में उन्होंने अपना शरीर जला दिया। यज्ञ मण्डप में सब जगह हाहाकार होने लगा।

दो०—सतीमरन सुनि संभुगन, लगे करन मषषीस।
जग्य विधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस॥७२॥

सती की मृत्यु सुनकर शिवजी के गण यज्ञ का विनाश करने लगे, यज्ञ का नाश हो रहा है, यह देखकर मुनीश्वर भृगु ने उसकी रक्षा की।

समाचार सब संकर पाए । बीर भद्र करि कोप पठाए ॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह विधिवत फल दीन्हा ॥

यह सब समाचार शिवजी ने जब पाया तब उन्हों ने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा । वीरभद्र ने जाकर यज्ञ का नाश कर दिया और सब देवताओं को उचित फल भी दिया ।

भइ जग विदित दच्छ गति सोई । जसि कछु संभुविमुख कै होई ॥

दक्ष की संसार प्रसिद्ध वह गति हुई जो शिव से शत्रुता रखनेवालों की होती है ।

यह इतिहास सकल जग जाना । ताते मैं संछेप बषाना ॥

यह इतिहास, यह कथा सबको मालुम है इस कारण संक्षेप में ही मैंने इसका वर्णन किया ।

सती मरत हरि सन वर माँगा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥

सती ने मरने के समय विष्णु से जन्म जन्म शिवजी के चरणों में अनुराग होने का वर माँगा ।

तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमी पारवती तनु पाई ॥

उसी वर के कारण वे हिमालय के घर जाकर जन्मीं और उनका पार्वती नाम हुआ ।

जबतें उमा सैल गृह जाई । सकल सिद्धि संपति तहँ छाई ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रम कीन्हे । उचित वास हिम भूधर दीन्हे ॥

सती हिमालय के घर जब से गयीं तबसे वहाँ समस्त सिद्धि और सम्पति छागयीं । मुनियों ने हिमालय के पास जहाँ तहाँ आश्रम बनवाये और हिमालय ने भी उन लोगों को उचित स्थान दिये ।

दो०—सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटी सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति ॥ ७२ ॥

वहाँ नये नये और अनेक जाति के वृक्ष उत्पन्न हुए, उनपर खूब फूल

फल लगे हुए थे, उस पर्वत पर अनेक प्रकार के मणियों की खान उत्पन्न हुई।

सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं॥
सहज बयर सब जीवन त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥

उस पर्वत पर की सब नदियों में सुन्दर जल की धारा बहने लगी, पशु पक्षी भ्रमर आदि सभी सुख से रहने लगे। सब प्राणियों ने अपना परस्पर का स्वाभाविक विरोध त्याग दिया, वे उस पर्वत पर विशेष प्रेम करने लगे।

सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये॥
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जस जासू॥

जिस प्रकार राम की भक्ति पाने से मनुष्य शोभित होता है उसी प्रकार पार्वती के घर में आने से वह पर्वत भी शोभने लगा। उसका घर सदा ही मंगलमय है जिसका यश ब्रह्मा आदि देवता गाते हैं। अर्थात् जिसके भाग्य की सराहना देवता करें उसके घर के मंगलमय होने में सन्देह क्या?

(नारद कथित पार्वती का लक्षण)

नारद समाचार सब पाये। कौतुकही गिरिगेह सिधाये॥

नारद ने जब यह समाचार पाया अर्थात् हिमालय के घर सती के जन्म लेने की बात नारद को मालूम हुई, तब वे स्वभावतः हिमालय के घर आये।

सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखार बर आसन दीन्हा॥
नारि सहित मुनिपद सिरनावा। चरनसलिल सब भवनु सिचावा॥
निजसौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेला अनुचरना॥

पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया, उनके चरण धोये और उत्तम आसन दिया। अपनी स्त्री के साथ उन्होंने नारद को प्रणाम किया और उनके चरण धोये हुए जल को घर में छिड़कवाया। हिमालय ने अपने सौभाग्य

का बहुत वर्णन किया, और कन्या को बुलवा कर उनके चरणों के पास रख दिया। मेला–रक्खा, मेलना रख देने को कहते हैं।

दो०–त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय बिचारि ॥ ७४ ॥

हिमालय ने कहा, आप त्रिकालज्ञ हैं, सर्वज्ञ हैं, आप सब जगह आते जाते रहते हैं। हे मुनिवर, हृदय में विचार कर मेरी कन्या के गुण दोष कहें।

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदुबानी। सुता तुम्हार सकलगुनखानी ॥

मुनि ने हँसकर गूढ़ और कोमल बचन कहा, तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। गूढ़ वाणी वह है जिसका अर्थ गुप्त हो।

सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी ॥

यह तुम्हारी कन्या सुन्दर है, यह स्वभाव से ही सुशील और बुद्धिमती है, इसका नाम उमा, अम्बिका और भवानी है।

सबलच्छनसंपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहिं पियारी ॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि ते जसु पइहहिं पितुमाता ॥

यह कन्या सब लक्षणों से युक्त है, यह अपने पति की सदा प्रीतिपात्रा रहेगी। उसका अहिवात सदा अचल रहेगा और इसके कारण माता पिता को यश होगा। अहिवात कहते हैं सधवापन को।

होइहि पूज्य सकलजग माँही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाँहीं ॥

यह कन्या समस्त जगत् में पूज्य होगी और इसकी सेवा करनेवालों को कुछ दुर्लभ नहीं रहेगा।

एहि कर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा ॥

इसका नाम स्मरण कर समस्त संसार की स्त्रियाँ असिधाररूप पातिव्रत्य का पालन करेंगी। यह पतिव्रताओं के लिए आदर्श होगी, इसके दिखलाये मार्ग से संसार की स्त्रियाँ तलवार की धार के समान कठिन पातिव्रत्य का पालन करेंगी।

सैल सुलच्छनि सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥

हे शैलराज, तुम्हारी कन्या सब प्रकार से सुलक्षणी है, अब इसके दो चार अवगुण हैं वह भी सुनो।

अगुन अमान मातुपितुहीना। उदासीन सब संसयछीना॥

निर्गुण, मान रहित, पितृ मातृहीन, संसार से उदासीन और सब संशयों से रहित इसको पति मिलेगा।

दो०–जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहिकहँ मिलहि, परी हस्त असि रेख॥ ७॥

योगी, जटाधारी, कामनाहीन, नङ्गा रहनेवाला, अमंगल वेषवाला ऐसा स्वामी इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी रेखा पड़ी है।

सुनि मुनिगिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतहि उमा हरषानी॥
नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥

मुनिकी बात सुनकर और अपने मन में उसे सत्य समझ कर शैलराज और उनकी स्त्री दोनों दुःखित हुए, पर उमा प्रसन्न हुई। नारद ने भी इसका भेद न जाना। शैलराज उनकी स्त्री तथा पार्वती का दशा एक थी, उनके बाहरी लक्षण समान थे, पर समझ भिन्न थी, इसीसे एक प्रसन्न हुई और दूसरी अप्रसन्न। आगे साफ देखिये।

सकलसखी गिरिजा गिरि मैना। पुलकसरीर भरे जलनैना॥
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो वचन हृदय धरि राषा॥
उपजेउ सिवपदकमलसनेहू। मिलन कठिन मन माँ संदेहू॥

सब सखियाँ, पार्वती, हिमालय और हिमालय की स्त्री मैना इन सब का समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया और आंखों में जल भर आया। सब के लक्षण समान थे, पर पार्वती और उसकी सखियाँ प्रसन्न थीं और पिता माता दुःखी। देवर्षि नारद की बात झूठी नहीं होती, इसलिए पार्वती

ने उस वचन को स्मरण कर लिया। शिवजी के चरण कमलों में पार्वती का स्नेह उत्पन्न हुआ, पर उनका मिलना कठिन है इसलिए सन्देह भी हुआ।

जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखीउछंग बैठि पुनि जाई॥

प्रीति प्रकाशित करने के लिए यह समय उचित नहीं है यह जान कर पार्वती ने शिवजी के प्रति जो प्रेम उत्पन्न हुआ था उसे छिपा लिया और वे जाकर सखी के गोद में बैठ गयीं।

झूठ न होइ देवरिषिबानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी॥

देवर्षि नारद की बातें झूठी नहीं होती, पार्वती के विषय में जो इन्होंने कहा है वह सच ही उतरेगा, इस कारण शैलराज और उनकी स्त्री तथा चतुर सखियाँ दुःखित हुईं।

उर धरि धीर कहै गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ॥

गिरिराज हिमालय ने मन में धैर्य धर कर अर्थात् अपने को सम्भाल कर कहा कि हे नाथ, कहिए क्या उपाय किया जाय?

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनहार॥ ७८॥

मुनीश नारदने ने कहा कि, हिमवान् सुनो विधि ने जो भाग्य में लिखा है उसको मिटानेवाले देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं है। ये कोई भी भाग्य की रेखा को नहीं मिटा सकते।

तदपि एक मैं कहउ उपाई। होइ करइ जो दैवसहाइ॥

तथापि मैं एक उपाय बतलाता हूँ यदि भाग्य अनुकूल हुआ तो कार्य-सिद्धि हो जायगी।

जस बर मैं बरनेउ तुम्ह पाँहीं। मिलिहि उमहिं तस संसय नाहीं॥
जे जे बरके दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥

जैसे वर का वर्णन मैंने तुम्हारे सामने किया है, पार्वती को वैसा ही

वर मिलेगा इसमें सन्देह नहीं। वर के जो जो दोष मैंने बतलाये हैं वे सब शिवजी में हैं। ऐसा मैं समझता हूँ।

जौ विवाहु संकरसन होई। दोषउ गुनसम कह सबु कोई॥

यदि शिवजी के साथ पार्वती का विवाह हुआ तो ये दोष भी गुण ही के समान हो जायँगे। उस समय ये दोष निन्दनीय नहीं किन्तु प्रशंसनीय हो जायँगे। सभी लोग ऐसा हीं समझेंगे।

जौ अहिसेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्हकर दोषु न धरहीं॥
भानु कृसानु सर्वरस षाहीं। तिन्हकह मंद कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहँ नहि दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

विष्णु सर्प की शय्या बना कर सोते हैं पर इस कारण विद्वान् विष्णु की कोई बुराई नहीं करते। सूर्य और अग्नि सब प्रकार के अच्छे बुरे रसों को खाते हैं पर इस कारण कोई भी उनको बुरा नहीं कहता। गङ्गाजी में पवित्र और अपवित्र सब प्रकार का जल बहता है इससे कोई गङ्गा को अपवित्र नहीं कहता। जो समर्थ है, शक्तिमान है, उसके लिए कोई दोष नहीं, जिस प्रकार सूर्य, अग्नि और गङ्गा को।

दो०–जौ अस हिसिषा करहि नर, जड विवेक अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महँ, जीव की ईस समान॥७७॥

जो जड मनुष्य विवेक के अहङ्कार से इस बात में हिसिखा करे अर्थात् देखा देखी करे, बड़ों ने बुराई की तो हमारे करने में क्या दोष है ऐसा समझे, वह मनुष्य कल्पभर नरक में पड़ता है। क्योंकि जीव तो ईश्वर के समान नहीं है। जीव जीव ही है और ईश्वर ईश्वर; ईश्वर बुराई करता है इसलिए हम भी बुराई करें यह बुरा विचार है।

सुरसरि जल कृत बारुनी जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसे। ईस अनीसहि अंतर तैसे॥

यह शराब गंगाजल से बनायी गयी है इस बात को जान कर भी सज्जन उसका पान नहीं करते, पर वही शराब यदि गंगा की धार में मिल जाय तो वह पवित्र हो जाती है। ईश्वर और जीव का भी यही भेद है। जब जीव जीवावस्था में है तब वह अपवित्र है पर जब वह ईश्वर के पास पहुँच जाता है तो पवित्र हो जाता है।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि विवाह सब विधि कल्याना॥

भगवान शिवजी स्वभाव से ही समर्थ हैं, अतएव उनसे व्याह होने पर सब प्रकार से कल्याण ही होगा।

दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किए कलेसू॥

पर शिवजी दुराराध्य हैं उनकी आराधना बड़ी कठिन है, पर क्लेश उठाने पर अर्थात् तपस्या करने पर वे आशुतोष शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हो जाते हैं।

जौं तपु करइ कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

यदि तुम्हारी कन्या तपस्या करे तो त्रिपुरारी शिव भावी को मिटा सकते हैं अर्थात् उनसे व्याह होने का योग न होगा तो उसे भी दूर कर सकते हैं।

जद्यपि बर अनेक जग माँहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाँहीं॥

यद्यपि संसार में अनेक वर हैं पर इसके लिए अर्थात् तुम्हारी कन्या के लिए शिवजी को छोड़ दूसरा वर नहीं है।

बरदायक प्रनतारितभंजन। कृपासिंधु सेवकमनरंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे॥

शिवजी वर देनेवाले हैं, अपनी शरण में आये हुओं के दुःखों को दूर करनेवाले हैं, वे कृपा के समुद्र हैं, वे अपने सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, शिवजी की आराधना के बिना इच्छित फल नहीं मिल सकता, चाहे करोड़ों योग जप क्यों न साधा जाय।

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्ह असीस।
होइहि यह कल्यान अब, ससंय तजहु गिरीस ॥ ७८ ॥

इतना कह कर नारद ने भगवान् का स्मरण किया, पार्वती को आशिर्वाद दिया और कहा कि गिरराज अब कल्याण होगा, तुम सन्देह दूर कर दो।

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ॥

गिरराज से इस प्रकार कहकर नारदमुनि ब्रह्माजी के स्थान पर गये, अब आगे जो चरित हुआ सो सुनो।

पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनिबैना॥

पति, हिमालय को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—नाथ मैं मुनि की बात नहीं समझी।

जौं घरु वरु कुलु होइ अनूपा। करिय विवाहु सुता अनुरूपा॥
न त कन्या बरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रानपियारी॥

यदि कन्या के योग्य उत्तम घर वर और कुल मिले तो विवाह कीजिए, नहीं तो मेरी कन्या का कुमारी रहनाही अच्छा है; नाथ, उमा मेरे प्राणों के समान प्रिय है।

जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड सहज कहिहि सबलोगू॥

यदि गिरजा के योग्य वर न मिला और आपने व्याह कर दिया तो सब लोग कहेंगे कि—पर्वतराज स्वभावतः जड़ है, मूर्ख है, पत्थर ही हैं।

सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥

पति, यही सब सोच कर आप कन्या का व्याह करें जिससे पीछे पछताना न पड़े, पीछे दुःख न उठाना पड़े।

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥

ऐसा कहकर उसने पति के चरणों पर सिर रख दिया। तब गिरराज स्नेहपूर्वक बोले—

बरु पावकप्रगटै ससिमाहीं। नारदबचन अन्यथा नाहीं॥

चन्द्रमा से अग्नि का निकलना यदि सम्भव हो तौभी नारदजी की बात झूठी नहीं हो सकती। यदि ऐसा समय आवे जब असम्भव बातें भी सम्भव होने लगें तो भी नारद की बातों का असत्य होना सम्भव नहीं।

दो० प्रिया सोचु परिहरहु सब, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमएउ जेहि, सोइ करिहहि कल्यान॥७१॥

प्रिया, सब प्रकार के दुःखों का त्याग करो? सोच करना छोड़ दो, श्रीभगवान् का स्मरण करो, जिन्होंने पार्वती को बनाया है; वेही कल्याण करेंगे।

अब जौ तुमहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिषावन देहू॥
करइ सो तपु जेहि मिलहिं महेसू। आन उपाय न मिटहिं कलेसू॥

यदि तुम्हारा अपनी कन्या पर प्रेम है तो अब जाकर उसको ऐसी शिक्षा दो; जिससे वह तपस्या करे, तपस्या से ही उसे शिव मिलेंगे, दुःख दूर होने का दूसरा उपाय नहीं है।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुंदर सबगुननिधि बृषकेतू॥

नारद जी का वचन अभिप्राययुक्त था और हेतुयुक्त भी था, शिव गुणवान् हैं और वे सब प्रकार से सुन्दर हैं। अभिप्राय छिपाकर जो वाक्य कहा जाय वह सगर्भ है।

अस बिचारि तुम तजहु असंका। सबहि भाँति संकर अकलंका॥

यह सोचकर तुम सब आशङ्काओं का त्याग करो, क्योंकि शिवजी सब प्रकार से निष्कलङ्क हैं, उनमें कोई दोष नहीं।

सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥

पतिके वचन को सुन कर मैना मन ही मन प्रसन्न हुई, वे उठकर तुरत पार्वती के पास गयीं।

उमहि बिलोकि नयनभरिबारी। सहितसनेह गोद बैठारी॥

बारहि बार लेति उर लाई। गदगदकंठ न कछु कहि जाई॥

उमा को मैना ने देखा, उनकी आँखें जल से भर आईं, प्रेम से उन्होंने उमा को गोद में बैठा लिया, बार बार उनको छाती से लगाया, गला भर आया, इसलिए वे कुछ कह न सकीं।

जगतमातु सर्वज्ञ भवानी। मातु सुखद बोली मृदुबानी॥

भवानी सर्वज्ञ हैं, वे जगत की माता हैं, वे माता को सुख देनेवाली कोमल वाणी बोलीं—

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावौं तोहि।
सुन्दर गौर सुविप्र वर, अस उपदेसेउ मोहि॥ ८०॥

माता सुनो, मैंने एक स्वप्न देखा है, आपको सुनाती हूँ। सुन्दर एक ब्राह्मण ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है।

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी॥

शैलकुमारी तुम जाकर तपस्या करो, नारद ने जो कुछ कहा है; वह विचार कर कहा है और वह सत्य है।

मातुपितहिं पुनि यह मतिभावा। तपु सुखप्रद दुख दोषनसावा॥

माता पिता को भी यह बात अच्छी लगी है, क्योंकि तपस्या सुख देनेवाला तथा दुःख और दोषों का नाश करनेवाली है।

तपबल रचई प्रपंच बिधाता। तपबल बिष्णु सकलजगत्राता॥
तपबल संभु करहिं संहारा। तपबल सेष धरइ महि भारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहिं जाइ तपु अस जिय जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥

तपस्या के बल से ही विधाता इस सृष्टिप्रपंच की रचना करते हैं, तपस्या के बल से ही विष्णु समस्त जगत् की रक्षा करते हैं, तपस्या के बल से ही शिवजी संहार करते हैं, तपस्या के बल से ही शेषनाग पृथिवी का भार धारण किये हुए हैं। यह समस्त सृष्टि तप के आधार पर ही स्थित है, यह जानकर

भवानी तुम जाकर तपस्या करो। पार्वती की बात सुनकर माता विस्मित हुई, उन्होंने गिरिराज को बुलाकर स्वप्न सुनाया।

मातु पितहि बहु बिधि समुझाई। चली उमा तप हित हरषाई॥

माता पिता को अनेक प्रकार से समझा कर उमा प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करने के लिए चली।

प्रिय परिवार पिता अरु माता। भये बिकल मुख आव न बाता॥

प्रिय परिवार, पिता और माता सभी विकल हुए, उनके मुँहसे कोई बात न आयी।

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहिं कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ॥ ८१॥

उसी समय वेदशिरा नामक मुनि आये और उन्होंने सबको समझा कर कहा, पार्वती की महिमा सुनकर परिवारवालों तथा माता को धैर्य हुआ, वेदशिरा ने पार्वती की महिमा का वर्णन किया, अतएव परिवारवालों को धैर्य हुआ।

उर धरि उमा प्रानपतिचरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना॥

उमा प्राणपति अर्थात् शिवजी के चरणों को हृदय में रखकर और वनमें जाकर तपस्या करने लगीं।

अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥

पार्वती बहुत ही सुकुमार हैं, उनका शरीर तपस्या के योग्य नहीं है, पति के चरणों का ध्यान कर उन्होंने सब प्रकार के भोगों का त्याग कर दिया है।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
संबत सहस मूल फल खाये। सागु खाइ सत बरस गँवाये॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥

पति के चरणों में नित नित नया नया अनुराग उत्पन्न होने लगा, शरीर को वे भूल गयीं, और उनका मन तपस्या में लग गया।

बेलपात महि परै सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई॥

जो बेलपत्र सूख कर पृथिवी में गिर जाते हैं, उन्हें तीन हजार वर्षों तक पार्वती ने खाया।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना॥

पुनः सूखे पत्तों का भी खाना उन्होंने छोड़ दिया, इस कारण उमा का नाम अपर्णा हुआ। पर्ण माने पत्ती।

देखि उमहिँ तपखीनसरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गँभीरा॥

उमा का शरीर तपस्या से क्षीण हो गया है यह देख कर आकाश से गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई।

दो०-भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज कुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहि त्रिपुरारि॥८२॥

ब्रह्मवाणी यह थी–हे गिरिराजकुमारि, सुनो तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ, जो असहनीय कष्ट तुम उठा रही हो उसका त्याग करो, अब त्रिपुरारी शिवजी तुम्हें मिलेंगे।

अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी॥

अनेक धीर, अनेक मुनि, अनेक ज्ञानी हो गये हैं, पर ऐसी तपस्या किसी ने नहीं की।

अब उर धरहु ब्रह्मबरबानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी॥

अब ब्रह्मा के वचन को मन में धरो जो सदा पवित्र और सत्य है।

आवहिँ पिता बुलावन जबहीँ। हठ परिहरि घर जायहु तबहीँ॥

जिस समय पिता तुमको बुलाने के लिए–घर ले जाने के लिए आवें, हठ छोड़ कर तुम उसी समय घर चली जाना।

मिलिहिँ तुम्हहिँ जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥

जब तुमको सप्तर्षि मिलें तब ब्रह्मा के बचन को अर्थात् मेरे वचन को सत्य समझना। यहाँ वागीश शब्द का अर्थ है ब्रह्मा, क्योंकि वे सरस्वती के पति हैं।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥

आकाश से जो ब्रह्मा की वाणी हुई थी उसे सुनकर पार्वती प्रसन्न हुई, उनका शरीर पुलकित हो गया।

उमाचरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥
जबते सती जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भएउ बिरागा॥

उमा के सुन्दर चरित का मैंने वर्णन किया अब सुहावने शंकर के चरित को आप लोग सुनें। सती ने जाकर जब प्राण त्याग कर दिये तब शिवजी के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ।

जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं रामगुनग्रामा॥

वे सदा रामचन्द्र जी के नाम का जप करते थे और जहाँ तहाँ रामजी के गुणों को सुनते थे।

दो०-चिदानंद सुख धाम सिव, बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकललोकअभिराम॥८३॥

शिवजी ज्ञान आनन्द और सुख के धाम हैं, उनमें मोह, मद और काम नहीं है। समस्त संसार में रमणीय विष्णु को हृदय में धारण करके शिवजी पृथिवीपर्यटन करते थे।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ज्ञाना। कतहुँ रामगुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगतबिरह दुखदुखित सुजाना॥

शिवजी कहीं पर मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते थे और कहीं राम के गुणों का वर्णन करते थे। शिवजी स्वयं अकाम हैं, उन्हें किसी प्रकार की कामना नहीं है, फिर भी वे भगवान् की भक्ति के विरह से दुःखित हैं, क्योंकि वे सुजान हैं।

एहि विधि गयउ काल बहुबीती। नित नव होइ राम पद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अविचल हृदय भगति कै रेखा॥

इस प्रकार बहुत समय बीत गया, रामजी के चरणों में शिवजी का प्रेम नित नित नया नया होने लगा। भगवान् राम ने शिवजी के इन नियमों तथा प्रेम को देखा, और शिवजी के हृदय में भक्ति की दृढ़ रेखा है, अविचल भक्ति है, यह भी देखा।

प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला। रूपसीलनिधि तेज बिसाला॥

तब मनुष्यों के कर्मों के जाननेवाले कृपालु राम प्रकट हुए, वे शील और रूप के निधान हैं तथा उनका तेज विशाल है।

बहु प्रकार संकरहिं सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥

रामजी ने शिवजी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की। उन्होंने कहा, तुम्हारे बिना ऐसा व्रत कौन निबाह सकता है।

बहुबिधि राम सिवहिं समुझावा। पारबती कर जनम सुनावा॥

अनेक प्रकार से रामजी ने शिवजी को समझाया और पार्वती के जन्म होने की भी बात कही।

अतिपुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

कृपानिधि रामजी ने पार्वती के पवित्र कार्यों—तपस्या आदि को विस्तार के साथ कहा।

दो०—अस बिनती मम सुनहु सिव, जौ मोपर निजनेहु।
जाइ बिवाहहु सैलजहिं, यह मोहि माँगे देहु॥ ८४॥

रामजी ने कहा, हे शिव यदि तुम्हारा मुझ पर अपनेपन का प्रेम हो तो मेरी यह बिनती सुनो, जाकर पार्वती से ब्याह करो, यही मैं माँगता हूँ सो मुझे दो।

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥

शिव ने कहा, यद्यपि ऐसा करना उचित नहीं. तथापि आप स्वामी हैं, आपकी बात मैं मेट नहीं सकता।

सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा ॥

शिर पर रखकर आपकी आज्ञा का मैं पालन करूँगा, हे नाथ मेरा यह परम धर्म है, अर्थात् आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है।

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभजानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा सिरपर नाथ तुम्हारी ॥

माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का विना विचारे ही पालन करना चाहिए, क्योंकि वह कल्याणदायी है। आप सब प्रकार से मेरे हितकारी हैं, आपकी आज्ञा मेरे सिर माथे पर है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकरबचना। भगतिबिबेकधरमजुतरचना ॥

शिवजी के वचन सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए, क्योंकि वे वचन भक्ति, विवेक तथा धर्म से युक्त थे।

कह प्रभु हर तुह्मार पन रहेउ। अब उर राखेउ जो हम कहेउ ॥

प्रभु ने कहा, शिव तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हुई, अब जो मैं कहता हूँ उसे मन में रखना, उसे याद रखना।

अंतरधान भये अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राषी ॥
तबहि सप्तरिषि सिव पहि आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥

इतना कह कर भगवान वहाँ से अन्तर्धान हो गये, शिवजी ने उसी अन्तर्धान के समय की मूर्ति को हृदय में रख लिया। उसी समय सप्तर्षि-गण शिवजी के पास आये, शिवजी सुन्दर वचन उन लोगों से बोले।

दो०—पारवती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परीछा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठयेहु भवन, दूरि करेहु संदेहु ॥ ८५ ॥

शिवजी ने कहा, पार्वती के पास जाकर आप लोग उनके प्रेम की परीक्षा लें, गिरिराज को कहकर, पार्वती को घर भेजवा दीजिए और उनके सब सन्देहों को दूर कर दीजिए।

तब रिषि तुरत उमा पहँ गयऊ। देखि दसा मुनि विसमय भयऊ॥
रिषिन गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिवंत तपस्या जैसी॥

तब ऋषिगण शीघ्र ही वहाँ से पार्वती के पास गये, पार्वती की दशा देखकर उन लोगों को बड़ा ही विस्मय हुआ। ऋषियों ने वहाँ गौरी को मूर्तिमती तपस्या के रूप में देखा। अर्थात् स्वयं तपस्या ही मानों गौरी का रूप धरकर विराज रही है।

बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तप भारी॥
केहि अवराधहु का तुम चहहू। हमसन सत्य मरमु किन कहहू॥

मुनियों ने कहा, हे शैलकुमारी, सुनो, किस कारण इतना कठिन तपस्या कर रही हो। किसकी आराधना करती हो, क्या चाहती हो, इन सबका भेद हम से सच सच कहो।

कहत वचन मन अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमरी जड़ताई॥

उत्तर देते हुए पार्वती को बड़ी लज्जा आई, उन्होंने कहा, मेरी मूर्खता सुनकर आप लोग हंसेंगे।

मन हठ परा न सुनइ सिषावा। चहत बारिपर भीति उठावा॥

मेरे मन ने हठ पकड़ लिया है वह किसी की शिक्षा नहीं सुनता, वह पानी पर भीत उठाना चाहता है। अर्थात् मैं एक असम्भव कार्य के लिए तपस्या कर रही हूँ।

नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पंखन हम चहहिं उड़ाना॥

नारद का कहना मैंने सत्य मान लिया है और मैं बिना पाँख के ही उड़ना चाहती हूँ।

देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिय सदासिवहि भरतारा॥

मुनिगण आप लोग मेरा अविवेक तो देखिये, हम सदा शिवको पति बनाना चाहती हैं।

दो०-सुनत वचन विहँसे रिषय, गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेस सुनि, कहहु बसेउ को गेह ॥ ७९ ॥

पार्वती की बात सुनकर ऋषिगण हँसे, उन लोगों ने कहा, तुम्हारी यह देह पर्वत से उत्पन्न हुई है, नारद के उपदेश से किसका घर बसा है कहो तो।

दच्छसुतन्ह उपदेसन्हि जाई। तिन फिरि भवन न देखा आई ॥

नारद ने जाकर दक्षसुतों को भी उपदेश दिया था, जिसका फल यह हुआ कि वे लौटकर घर न गये।

चित्रकेतु कर घर उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥

चित्रकेतु के घर का उन्होंने नाश किया, हिरण्यकशिपु का भी यही हाल उन्होंने किया।

नारदसिष जे सुनहिं नरनारी। अवसि होहिं तजि भवन भिषारी ॥

नारद का उपदेश जो स्त्रीपुरुष सुनते हैं, अवश्य ही वे घर छोड़ कर भिक्षुक बन जाते हैं।

---

* दक्ष प्रजापति ने असिक्नी नाम की अपनी स्त्री से दस हजार पुत्र उत्पन्न किये जो हर्यश्व नाम से प्रसिद्ध हुए, वे अपने पिता की आज्ञा से सृष्टि करने के लिए चले, वे पश्चिम दिशा में नारायण सर नामक तालाब पर पहुँचे, उस तालाब में उनलोगोंने स्नान किया। उस तालाब में स्नान करने के प्रभाव से उनका हृदय निर्मल होगया। उनके हृदय में प्रवृत्तिधर्म तथा निवृत्तिधर्म के प्रश्न उठने लगे। इसी समय नारद मुनि वहाँ पहुँचे, और उन्होंने उनको उपदेश दिया। नारद के उपदेश से वे विरक्त हो गये और तपस्या करने चले गये। दक्षप्रजापति को जब समाचार मालूम हुआ तब वे बड़े दुःखी हुए। उन्होंने पुनः एक हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो शवलाश्व नाम से प्रसिद्ध हुए। वे भी वहीं गये और उसी प्रकार नारद के उपदेश से साधु हो गये।—येही नारद हैं, जो इनका उपदेश सुनता है वह उन्हीं दक्ष पुत्रों के समान हो जाता है।

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबहिं चह कीन्हा॥

नारद का मन कपटी है, पर शरीर साधुओं के समान है, वह सबको अपने समान बनाना चाहते हैं।

तेहि के वचन मानि विस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा॥

उसकी बातों का विश्वास कर के तुम वैसे को पति बनाना चाहती हो, जिसका संसार पर स्वभाव से ही प्रेम नहीं है।

निर्गुन निलज कुवेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

जो निर्गुण हैं, निर्लज्ज हैं, जिसका बुरा वेष है, जो कपाल-खोपड़ी धारण करता है, जिसके कुल का कोई ठिकाना नहीं, जिसे घर नहीं, अधिक क्या कहा जाय, जिसे वस्त्र तक नहीं, अतएव जो नङ्गा रहता है और जो साँपों को धारण करता है।

कहहु कवन सुष अस वर पाये। भल भूलिहु ठग के बौराये॥

कहो, भला ऐसे वर के पाने से क्या सुख होगा, तुम भी ठग के बहकाने से भूल में पड़ी हो।

पंच कहे सिव सती विवाही। पुनि अवडेरि मरायेन्हि ताही॥

सब लोग कहते हैं कि शिवजी ने सती से ब्याह किया था और पुनः उसका त्यागकर उन्होंने उसे मरवा भी डाला।

दो०–अब सुष सोवत सोचु नहिं, भीष माँगि भव षाहिं।
सहज एकाकिन के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥८७॥

सती को मरवाकर शिवजी अब सुख से सोते हैं। किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, भीख मांगकर खाते हैं। जो स्वभाव से ही अकेला रहनेवाला है, उसके घर में क्या किसी स्त्री का गुजारा हो सकता है?

अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम कहुँ वर नीक बिचारा॥

अब भी हम लोगों का कहना मान लो, तुम्हारे लिए हम लोगों ने एक अच्छा वर सोचा है।

अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं वेद जासु जसलीला॥

वह अत्यन्त सुन्दर पवित्र सुखदायी तथा सुशील है और जिसके यश की शोभा वेद गाते हैं।

दूषनरहित सकलगुनरासी। श्रीपति पुरबैकुण्ठनिवासी॥

उसमें कोई दोष नहीं है, वह सब गुणों की खान है वह लक्ष्मी का पति है और बैकुण्ठ का रहनेवाला है।

अस बर तुमहि मिलाउब आनी। सुनत बिहँसि कह बचन भवानी॥

ऐसा वर हम तुम्हारे लिए ला देंगे। ऋषियों की इस बात को सुनकर उमा हँसी और उन्होंने कहा।

सत्य कहहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटइ बरु देहा॥

आप लोग सच कहते हैं कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है, अतएव यह शरीर छूट जायगा; पर हठ नहीं छूटेगा।

कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहु सहजु न परिहर सोई॥

सुवर्ण भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है और जलाये जाने पर भी वह अपने स्वाभाविक स्वभाव का त्याग नहीं करता। उसी प्रकार मैं भी पर्वत की बेटी हूँ मैं ही भला अपना स्वभाव कैसे छोड़ दूं।

नारदवचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख-सिधि तेही॥

नारद के वचन को मैं न छोड़ूंगी इससे घर उजरे या बसे, मुझे इसका डर नहीं। जो गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं करता, उसके लिए स्वप्न में भी सुख और सिद्धि का मिलना सुगम नहीं है।

दो०—महादेव अवगुनभवन, विष्णु सकलगुनधाम।
जेहि कर मनु रम जाहिसन, तेहि तेहीसन काम॥८८॥

महादेव दुर्गुणों के भवन हैं और विष्णु सब गुणों के धाम हैं, पर इससे क्या, जिसका मन जिससे रमता है उसको उसीसे काम है, प्रेम गुणी और दुर्गुणी का विचार नहीं करता।

जौ तुम्ह मिलतेउ प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिष तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्म संभुहित हारा। को गुनदूषन करइ विचारा॥

हे मुनीश्वरो, यदि आप ही लोग पहले मिलते, तो मैं आपकी ही शिक्षा ग्रहण करती, उसीको माथे चढ़ाती। अब मैंने अपना जीवन शिवजी के लिए अर्पण कर दिया है, गुण दोषों का विचार कौन करे।

जौ तुम्हरे हठ हृदय विसेषी। रहि न जाइ विनु किए बरेषी॥

यदि तुम्हारे हृदय में विशेष आग्रह हो यदि वर कन्या की बातें बिना किये तुमसे न रहा जाता हो।

तौ कौतुकिअन्हि आलस नाहीं। वर कन्या अनेक जग माहीं॥

और यदि तुम्हें आलस न हो क्योंकि तुम दिल्लगीबाज हो, तो ढूंढो इस जगत में वर कन्या अनेक हैं उनका घाटा नहीं है।

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। वरउ संभु नहिं रहउँ कुआँरी॥

कोटि जन्मों तक मेरा यह हठ है कि यदि मैं वरण करूंगी तो शिव का, नहीं तो क्वारी ही रहूंगी।

तजउँ न नारदकर उपदेसू। आपु कहहि सतबार महेसू॥

नारद का उपदेश मैं न छोड़ूंगी, यदि स्वयं महादेव जी ही क्यों न कहें, सो भी एक बार नहीं, सौ बार कहें तो भी मैं नारद के उपदेश को नहीं छोड़ने की।

मैं पा परौं कहैं जगदंबा। तुम गृहगवनहु भयउ विलंबा॥

जगदम्बा पार्वती ने कहा, मैं अब आपलोगोंके पैरों पड़ती हूं, अब आपलोगोंके घर जाने का विलम्ब हो रहा है।

देषि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी। जय जय जगदंबिके भवानी॥

पार्वती के प्रेम को देखकर मुनियों में ज्ञानी सप्तर्षिगण ने कहा, भवानि जगदम्बके, आपकी जय, बार बार जय।

दो०–तुम्ह माया भगवान सिव, सकलजगतपितुमातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु॥ ८९॥

आप माया हैं, शिव स्वयं भगवान् हैं, आपलोग समस्त संसार की माता और पिता हैं। इतना कहकर और भवानी को प्रणाम कर मुनि वहां से विदा हुए, हर्ष के कारण उनका शरीर बार बार पुलकित हो जाता था।

जाइ मुनिन्ह हिमवंत पठाये। करि विनती गिरिजहि गृह लाये॥

जाकर के मुनियों ने हिमावान को पार्वती के पास भेजा, हिमवान विनती कर के पार्वती को घर लौटा लाये।

बहुरि सप्तरिषि सिव पहि जाई। कथा उमा के सकल सुनाई॥
भये मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥

पुनः सप्तर्षि शिवजी के समीप गये, वहां पार्वती की सब कथा उनलोगों ने सुनायी, पार्वती के प्रेम की बात सुनकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और सप्तर्षि भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गये।

मनु थिरु करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायकध्याना॥

तब सुजान शिव अपना मन स्थिर करके रघुनाथ का ध्यान करने लगे।

(मदन दहन)

तारकु असुर भयेउ तेहि काला। भुजप्रतापबलतेज बिसाला॥

उसी समय तारक नाम का एक असुर हुआ था, जिसकी भुजाएँ, प्रताप, बल और तेज विशाल थे।

तेइ सब लोक लोकपति जीते। भये देव सुखसंपतिरीते॥

उसने सब लोकों और लोकपतियों को जीत लिया था, जिससे सभी देवता सुख और सम्पति से सूने हो गये थे।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि विविध लराई॥

वह अजर और अमर था, इसलिए कोई उसको जीत नहीं सकता था

उसको जीतने के लिए देवताओं ने अनेक प्रकार की लड़ाई की, पर वे स्वयं हार गये, उसको न हरा सके।

तब बिरंचिसन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥

तब ब्रह्मा के यहां जाकर देवताओं ने पुकार की, अपना दुख सुनाया, ब्रह्मा ने देखा कि सब देवता दुःखी हैं।

दो०-सबसन कहा बुझाइ बिधि, दनुजनिधन तब होइ।
संभुसुक्रसंभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ॥ ८०॥

सब देवताओं को समझा कर ब्रह्मा ने कहा, इस दानव की मृत्यु तब होगी, जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न होगा, वही इसको रण में जीतेगा।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करहिं सहाई॥

मेरा कहना सुनकर आप लोग उपाय करें, भगवान् आप लोगों को इस काम में सहायता देंगे।

सती जो तजी दच्छमख देहा। जनमी जाइ हिमाचलगेहा॥
तेइ तपु कीन्ह संभुपति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥

जिस सती ने दक्ष के यज्ञ में शरीरत्याग किया था, वही हिमालय के घर जाकर उत्पन्न हुई है। उसने शिवजी को पति बनाने के लिए तपस्या की है, पर शिवजी सब छोड़कर समाधि में बैठे हैं, यद्यपि यह बहुत बड़ी कठिनता है, तथापि आप लोग मेरी एक बात सुनें।

पठवहु काम जाइ सिव पाँही। करइ छोभ संकरमनमाँही॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिवाह बरिआई॥

आप लोग कामदेव को शिवजी के पास भेजें, वह जाकर शिवजी के मन को क्षुभित करे, उनका मन संसार की ओर खींचे, तब जाकर मैं खुशामद करके जबरदस्ती उनका ब्याह कराऊंगा।

एहि विधि भलहि देवहित होई। मत अतिनीक कहइ सब कोई॥

इस प्रकार देवताओं का कल्याण अनायास ही होगा, सब लोगों ने कहा कि ब्रह्मा का उपाय अच्छा है।

अस्तुति सुरन कीन्ह असहेतू। प्रगटे विषमबान झषकेतू॥

इस काम के लिए देवताओं ने कामदेव की स्तुति की, उससे विषमबाण अर्थात् पांचबाण वाले झषकेतु—जिनकी ध्वजा पर मछली का चिह्न है अर्थात् कामदेव—प्रकट हुए।

दो०—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुसल मोहि, बिहंसि कहेउ अस मार॥८९॥

देवताओं ने अपनी विपत्ति की सब बातें कहीं उनको सुनकर कामदेव ने अपने मन में विचार किया, शिवजी से विरोध करने में मेरा कल्याण नहीं है, कामदेव ने ऐसा हंस कर कहा। मार कामदेव को कहते हैं।

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। स्तुति कह परम धरम उपकारा॥

फिर भी मैं आपलोगोंका काम करूंगा, क्योंकि वेदों ने उपकार को बड़ा धर्म कहा है।

परहित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहि तेही॥

जो दूसरों के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, सज्जन सदा उसकी प्रशंसा करते हैं।

अस कहि चलेउ सबहिं सिर नाई। सुमनधनुष कर सहित सहाई॥

ऐसा कहकर और सबको प्रणाम कर कामदेव हाथ में पुष्पधनुष तथा सहायकों को साथ लेकर चला।

चलत मार अस हृदय विचारा। सिवविरोध ध्रुव मरन हमारा॥

चलते चलते कामदेव ने ऐसा विचार किया कि शिव के विरोध मे निश्चय ही मेरी मृत्यु होगी।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निजवस कीन सकलसंसारा॥

कोपेउ जबहिं वारिचरकेतू। छन महँ मिटे सकलश्रुतिसेतू॥

तब उसने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जब वारिचरकेतु अर्थात् कामदेव ने क्रोध किया, तब एक ही क्षण में श्रुति की मर्यादा मिट गयी, सभी मनमाने करने लगे। वारिचर = मछली, केतु = ध्वजा, जिसकी ध्वजा पर मछली के चिह्न हो, मीनकेतु, कामदेव।

ब्रह्मचर्यव्रतसंजम नाना। धीरजधर्मज्ञानविज्ञाना॥
सदाचार जप जोग विरागा। सभय विवेक कटक सब भागा॥

ब्रह्मचर्य, अनेक प्रकार के व्रत, धीरता, धर्म, ज्ञानविज्ञान, सदाचार जप, योग वैराग्य और विवेक ये सब डरकर अपनी अपनी सेना के साथ भाग गये।

छं०-भागेउ विवेकसहाइसहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रंथ पर्वतकंदरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे।
होनहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइमाथ केहि रतिनाथ जेहि कहु कोप कर धनुसरधरा॥

उस कामदेव के वीर जब रणक्षेत्र की भूमि पर आये, तब विवेक अपने सहायकों के साथ भाग गया, सद्ग्रन्थ भागकर उस समय पर्वत की गुफाओं में जा छिपे। क्या होनेवाला है, हमारी रक्षा करनेवाला कौन है इस प्रकार के विचारों से संसार में खलबली मच गयी, ऐसा कौन दो मस्तकवाला है जिस पर कामदेव ने धनुष बाण लेकर चढ़ाई की है।

दो०-जे सजीव जगचर अचर, नारिपुरुष अस नाम॥
ते निज निज मरजाद तजि, भये सकल वस काम॥ ८२॥

संसार में जो चेतन हैं, जो स्थावर जंगम हैं, जिनका स्त्री और पुरुष ऐसा नाम है उनसबने अपनी अपनी मर्यादा छोड़ दी और वे काम के वश हो गये।

सब के हृदय मदन अभिलाषा। लतानिहारि नवहिं तरुसाषा॥
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई। संगम करहिँ तलाव तलाई॥
जहँ असि दसा जडन की बरनी। को कहि सकइ सचेतनकरनी॥
पसु पच्छी नभजलथलचारी। भये कामबस समय बिसारी॥

कामदेव ने सबके हृदयों में अभिलाषा उत्पन्न कर दी, लता को देखकर वृक्षों की शाखाएँ नीचे झुकने लगीं। उत्साहित होकर नदियां समुद्र की ओर दौड़ीं, तलाइयों ने तलाब से संगम किया। जहां जड़ों की ऐसी दशा हो गयी थी, वहां चेतनों की दशा का वर्णन कौन कर सकता है, पशु पक्षी आकाशचारी जलचारी और स्थलचारी सभी काम के अधीन हो गये, वे अपने अपने नियमित समय को भूल गये।

मदनअंध व्याकुल सब लोका। निसिदिन नहिं अवलोकहिं कोका॥

काम ने सबको अन्धा बना दिया, सभी लोग व्याकुल हो गये, चक्रवाक और चक्रवाकी को दिन रात के भेद का ज्ञान जाता रहा।

देवदनुजनर किंनर व्याला। प्रेतपिसाचभूतबेताला॥
इन्हकी दसा न कहेउ बषानी। सदा काम के चेरे जानी॥
सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। तेऽपि कामबस भये बियोगी॥

देवता, दानव, मनुष्य, किन्नर, नाग, प्रेत, पिशाच, भूत और वेताल इनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता? क्योंकि ये तो काम के चेरे हैं ही। सिद्ध विरक्त महामुनि योगी आदि भी कामवश होगये और वियोग का दुःख भोगने लगे।

छं०-भये कामबस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देषहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देषत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामयम्।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृतकौतुक अयम्॥

योगीश्वर तपस्वी भी कामवश हो गये, फिर साधारण अज्ञानियों को

क्या कहा जाय, जो लोग पहले समस्त संसार को ब्रह्ममय देखते थे, वे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियां समस्त संसार को पुरुषमय देखने लगीं और पुरुष स्त्रीमय देखने लगे। दोही दण्ड के भीतर समस्त ब्रह्माण्ड में काम ने ऐसा कौतुक दिखा दिया।

सो०-धरा न काहू धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महँ॥

किसीका भी धैर्य न रहा, कामदेव ने सबके मनपर अधिकार कर लिया, उस विकट काल में उसीका उद्धार हो सकता था जिसकी रक्षा स्वयं रघुवीर करें।

उभय घरी अस कौतुक भयउ। जब लगि काम संभुपहँ गयउ॥
सिवहिं बिलोकि ससंकेउ मारू। भये जथाथित सब संसारू॥

दो घड़ी तक—जबतक कामदेव शिवजी के पास न पहुंच गया—तभीतक ऐसा कौतुक हुआ। शिव को देखतेही मारु अर्थात् कामदेव डर गया और इससे समस्त संसार अपनी पूर्व की स्थिति में आ गया। एकवचन बतलाने के लिए मार शब्द में "उ" लगाकर "मारु" बनाया गया है, तुलसीदास ने इस नियम का बहुत स्थानों पर अनुसरण किया है,

भये तुरत जगजीव सुखारे। जनु मद उतरि गये मतवारे॥

शीघ्रही संसार के जीव सुखी हो गये, मानों मतवाले का नशा उतर गया हो।

रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना॥

रुद्र-शिव को देखकर कामदेव डर गया; क्योंकि शिवजी दुराधर्ष हैं उनपर आक्रमण करना कठिन है, उनके पास जाना भी आसान नहीं है क्योंकि वे साक्षात् भगवान हैं।

फिरत लाज कछु कहि नहि जाई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई॥

कामदेव यदि शिव के सामने से लौट जाय तो यह उसके लिए लज्जा की बात है, ऐसी दशा में कर्त्तव्य निश्चित करना उसके लिए कठिन था,

अन्त में कामदेव अपने मन में मरने का निश्चय कर के उपाय करने लगा अर्थात् शिवजी पर उसने आक्रमण किया।

प्रगटे तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नवतरुराजविराजा॥

शीघ्र ही वहां सुन्दर वसन्त ऋतु प्रकट हुई, वृक्षों की श्रेणियां कुसुमित हो गयीं।

वन उपवन वापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसाविभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देषि मुएहि मन मनसिज जागा॥

वन उपवन वापी तड़ाग तथा दिशाएं सभी बहुत सुन्दर मालूम होने लगे। चारों ओर मानो अनुराग प्रकट होने लगा, जिसको देखकर मृतक के शरीर में भी कामवासना उत्पन्न हुई।

छं०-जागेउ मनोभव मुएहु मन वनसुभगता न परइ कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनलसखा सही॥
विकसे सरन्हि बहुकंजगुंजतपुंज मंजुल मधुकरा।
कल हंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

मृतक के शरीर में भी कामदेव उत्पन्न हुआ, उनकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता, शीतल मन्द और सुगन्ध वायु मानो कामदेव रूपी अग्नि का मित्र बन रहा है, तालाबों में बहुत से कमल विकसित हुए हैं, जिन पर सुन्दर भमरों का समूह गुंजार करता है, हंस पिक और शुक मधुर स्वर में गान कर रहे हैं और अप्सराएँ नाच रही हैं।

दो०-सकल कला करि कोटिविधि, हारेउ सेनसमेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय निकेत॥ ८३॥

करोड़ों उपाय तथा सब कलाएँ कर के कामदेव अपनी सेना के साथ हार गया, शिवजी की अचल समाधि न टूटी, तब उसने मनही मन बड़ा क्रोध किया।

देषि विशाल विटप बर साषा। तेहि पर चढ़ेउ मदन मनमाषा॥

कामदेव ने एक वृक्ष की बड़ी शाखा देखी, मन में क्रोध कर वह उसपर चढ़ गया।

सुमनचाप निज सर संधाने। अति रिसि ताकि श्रवन लगि ताने॥

उसने अपना पुष्पधनुष और वाण चढ़ाया, तथा अत्यंत क्रोध करके कानों तक उसे खींचा।

छाड़ेउ विषमवान उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईसमन छोभ विशेषी। नयन उघारि सकल दिसि देषी॥
सौरभ पल्लव मदन विलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका॥

कामदेव का छोड़ा हुआ वाण शिवजी की छाती में लगा, शिवजी की समाधि टूट गई, वे जाग पड़े, शिवजी का मन बहुत व्याकुल हुआ, उन्होंने आंखें खोल कर चारों ओर देखा, पत्तों में कामदेव को छिपा उन्होंने देखा, उनको बड़ा क्रोध हुआ जिससे तीनों लोक कांप गया।

तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भये जरिछारा॥

तब शिव ने अपना तीसरा नेत्र खोला, जिससे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भये असुर सुखारी॥

संसार में बड़ा भारी हाहाकार हुआ, देवता डर गये और असुर सुखी भये।

समुझि कामसुख सोचहि भोगी। भये अकंटक साधक जोगी॥

कामसुख का स्मरण कर के भोगी लोग दुःखी हुए, पर साधना करनेवाले योगी शत्रुहीन होगये। अतएव वे सुखी हो गये।

छं०—जोगी अकंटक भये पतिगति सुनति रति मुरछित भई।
रोदति वदति बहुभाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अतिप्रेम करि विनती विविधविधि जोरिकर सनमुष रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरषि बोले सही॥

योगी शत्रुहीन हुए, पति की इस दशा का वृतान्त सुनकर रति मूर्च्छित हो गई, वह रोने लगी, बहुत बकने लगी और दुःख करती हुई वह शिवजी के पास गयी। हाथ जोड़ कर अनेक प्रकार से विनती करती हुई वह शिवजी के सामने खड़ी रही। शिवजी आशुतोष हैं, कृपालु हैं, स्त्री को देखकर उन्होंने कहा।

दो०—अबतें रति.तव नाथ करि, होइहि नाम अनंग।
बिनु वपु व्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलनप्रसंग ॥८८॥

रति, अब से तुम्हारे पति का नाम "अनङ्ग" (अङ्गरहित) होगा। बिना शरीर के भी उसका प्रभाव सब जगह रहेगा, अब अपने पति से तुम्हारा मिलना कब होगा यह सुनो।

जब जदुवंस कृष्ण अवतारा। होइहि हरन महामहिभारा॥
कृष्णतनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा॥

पृथिवी का भार उतारने के लिए जब यदुवंश में श्री कृष्ण का अवतार होगा, तुम्हारा पति उसी कृष्ण का पुत्र होगा, यह मेरी बात झूठ नहीं हो सकती।

रति गवनी सुनि शंकरवानी। कथा अपर अब कहौं बषानी॥

शिवजी का वचन सुनकर रति चली गयी। अब यहां से दूसरी कथा का वर्णन करता हूं।

(शिवबिवाह की तयारी)

देवन समाचार जब पाये। ब्रह्मादिक वैकुंठ सिधाये॥
सब सुर विष्णु विरंचि समेता। गये जहां शिव कृपानिकेता॥

देवताओं ने जब यह संवाद सुना तब ब्रह्मा आदि देवता बैकुण्ठ गये। वहां से सभी ब्रह्मा विष्णु आदि देवता वहां गये जहां कृपालु शिवजी रहते थे।

पृथक् पृथक् तिन्ह कीन्ह प्रशंसा। भये प्रसन्न चंद्रअवतंसा॥

सब देवताओं ने अलग अलग शिवजी की प्रशंसा की, जिससे चन्द्र-अवतंस अर्थात् चन्द्रमौलि शिवजी प्रसन्न हुए।

बोले कृपासिंधु वृषकेतू। कहहु अमर आये केहि हेतू॥

कृपासिन्धु शिवजी बोले, हे देवगण आपलोग किस कारण से आये हैं, सो कहें।

कह विधि तुम्ह प्रभु अन्तरयामी। तदपि भगति बस बिनवउं स्वामी॥

ब्रह्मा ने कहा प्रभु, आप तो अन्तर्यामी हैं अर्थात् जिस लिए हम लोग आये हैं वह आपको मालूम ही है, स्वामी, तथापि भक्तिवश मैं कुछ कहता हूं।

दो०—सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाह।
निज नयनन्ह देषा चहहिं, नाथ तुम्हार बिवाह॥ ८५॥

शंकर, सब देवताओं के मन में इस प्रकार की बड़ी लगन है कि वे अपनी आंखों से नाथ, तुम्हारा व्याह देखें।

यह उत्सव देषिअ भरि लोचन। सो कछु करहु मदनमदमोचन॥

यह उत्सव आँखभर कर हमलोग देखें, हे काममदनाशक, इसका आप कुछ उपाय करें।

काम जारि रति कँह बर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा॥

काम को जलाकर रति को जो वर दिया, सो हे कृपासिन्धो, आपने यह बहुत अच्छा किया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥

हे नाथ, प्रभुओं का यह स्वाभाविक स्वभाव है कि वे दण्ड देकर पुनः अपराधी पर प्रसन्न हो जाते हैं।

पारवती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥

पार्वती ने बहुत बड़ी तपस्या की है, अब आप उसको ग्रहण करें।

सुनि विधि विनय समुझि प्रभुवानी। ऐसइ होउ कहा सुखमानी॥

ब्रह्मा की विनती सुनकर तथा प्रभु की आज्ञा को समझ कर अर्थात् स्मरणकर शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि ऐसा ही होगा।

तब देवन दुंदुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाई॥

तब देवताओं ने दुन्दुभी बजायी और पुष्पवृष्टि कर के महादेव की जय जय की।

अवसर जानि सप्तरिषि आये। तुरतहिं विधि गिरिभवन पठाये॥

अवसर देखकर सप्तर्षि भी वहां आ गये, ब्रह्मा ने शीघ्र ही उनलोगों को हिमालय के घर भेजा।

प्रथम गए जँहँ रही भवानी। बोले मधुर बचन छलसानी॥

पहले वे लोग जहां पार्वती थीं वहां गये और कपटयुक्त मधुर वाणी बोले।

दो०—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद कर उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ काम महेस॥ ८९॥

तुमने हमारा कहना तब नहीं सुना, नारद का उपदेश तुम मानती रही, अब तुम्हारा प्रण झूठा हुआ, कामदेव को शिवजी ने जला दिया।

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी। उचित कहेउ मुनिवर विज्ञानी॥

मुनियों की बात सुनकर हंसकर पार्वती बोली, हे विज्ञानी मुनिवर, आप लोग ठीक कहते हैं।

तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा॥
हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी॥

तुम लोगों की समझ से महादेवजी ने कामदेव को अब जलाया है, तो क्या अबतक वे विकारयुक्त थे अर्थात कामी थे? हमारी समझ से सदाशिव, योगी हैं, वे अजन्मा हैं निर्दोष हैं कामनाहीन हैं और अभोगी हैं।

जो मैं सिव सेयउँ अस जानी। प्रीति समेत करममनबानी॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहैं सत्य कृपानिधि ईसा॥

मन वचन और कर्म से प्रेमपूर्वक यही जानकर यदि मैंने शिवजी की

सेवा की है, तो हे मुनीश्वरो, सुनिए, मेरे प्रण को कृपानिधान महादेव अवश्य ही सत्य करेंगे।

तुम्ह जो कहेहु हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा॥

आप लोग जो कहते हैं कि महादेव जी ने कामदेव को जला दिया, यह आपलोगों के बड़े अविवेक की बात है।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहि काऊ॥
गए समीप से अवसि नसाई। असि मनमथ महेस के नाई॥

तात, अग्नि का यह स्वाभाविक स्वभाव है कि उसके पास बर्फ नहीं जाती, यदि वह जाय तो अवश्य नष्ट होजाती है, जैसे कामदेव शिवजी के पास जाकर नष्ट हुआ।

दो०-हिय हरषे मुनिबचन सुनि, देषि प्रीति विश्वास।
चले भवानी नाइ सिर, गये हिमाचलपास॥ ९७॥

पार्वती की बातें सुनकर तथा उनका शिवजी में विश्वास और प्रेम देख सप्तर्षि प्रसन्न हुए, वे भवानी को प्रणाम कर हिमालय के पास गये।

सब प्रसंग गिरिपतिहि सुनावा। मदनदहन सुनि अतिदुखपावा॥

सब घटनाएँ उन लोगोंने हिमालय को सुनायीं, कामदेव के भस्म होने की बात से उनको विशेष कष्ट हुआ।

बहुरि कहेउ रतिकर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत हरषाना॥

पुनः मुनियों ने रति को जो शिवजी से वर मिला था—वह कहा, जिसे सुनकर हिमवान प्रसन्न हुए।

हृदय विचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिये बोलाई॥

हिमवान ने महादेव की प्रभुता का मनही मन विचार कर मुनियों को आदरपूर्वक बुलवाया।

सुदिन सुनषत सुघरी सोचाई। बेगि वेदविधि लगन धराई॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहिपद विनय हिमाचल कीन्ही॥

शुभ दिन शुभ नक्षत्र, तथा सुन्दर घड़ी विचरवा कर वेदविधि के अनुसार उन्होंने शीघ्र ही लग्न निश्चित की, लग्नपत्री लिखकर उन्होंने सप्तर्षियों को दी और मुनियों के चरण पकड़ कर उन्होंने विनय की।

जाइ बिधिहि दीन्ही सो पाती। बांचत प्रीति न हृदय समाती॥

सप्तर्षियों ने जाकर वह ब्रह्मा को दी, पढ़कर ब्रह्मा को इतना आनन्द हुआ जो हृदय में नहीं समाया।

लगन बांचि अज सबहिं सुनाई। हरषे सुनि सब सुरसमुदाई॥

बांच कर ब्रह्मा ने सबको लग्न सुनायी, जिसे सुनकर सब देवता प्रसन्न हुए।

सुमनबृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगलकलस दसहु दिसि साजे॥

आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई, बाजे बजने लगे और चारों दिशाओं में मंगलकलश शोभित हुए।

(बारात)

दो०—लगे संवारन सकल सुर, वाहन विविध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद, करहिं अपछरा गान॥ ९८॥

सभी देवता वाहन तथा अनेक प्रकार के विमान सजाने लगे, मंगल सूचक और सुखकारी सगुन होने लगे, अप्सराएँ गान करने लगी।

सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटामुकुट अहिमौर संवारा॥

शिवजी के गण शिवजी का शृंगार करने लगे, जटा का मुकुट और सर्पों की मौर सजाकर उनलोगोंने बनाये।

कुंडलकंकन पहिरे ब्याला। तनबिभूति पट केहरिछाला॥
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नरसिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला॥
कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि बाजहिं बाजा॥

शिवजी ने सर्प का कुण्डल और कंकण धारण किया, शरीर में भस्म रमाया और वस्त्र के स्थान में व्याघ्रचर्म धारण किया, ललाट पर चन्द्रमा, मस्तक पर सुन्दर गंगा तीन आंखें, सर्पों का यज्ञोपवीत, गले में विष, वक्षःस्थल में नरमुण्ड की माला, कृपालु और कल्याण के धाम शिवजी ने ऐसा अमंगल वेष बनाया, हाथों में त्रिशूल और डमरू शोभित हुआ और वे बैलपर चढ़कर चले, बाजे बजने लगे।

देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं॥
बिष्णु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि वाहन चले बराता॥

शिवजी को देखकर देवताओं की स्त्रियां हंसने लगीं और बोलीं, इस वर के योग्य दुलहिन संसार में नहीं है। विष्णु ब्रह्मा आदि देवसमूह अपने अपने वाहन पर चढ़कर बरात चले।

सुरसमाज सब भांति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥

यद्यपि देव समाज सब प्रकार से अनुपम है, फिर भी वर के योग्य बरात नहीं बनी।

दो०-बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसि राज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥९९॥

विष्णु ने ऐसा हँसकर कहा और तब उन्होंने सब दिक्पालों को बुलाकर कहा कि आपलोग अपने अपने समाज के साथ अलग अलग चलें

बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु परपुर जाई॥
बिष्णुबचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेनसहित बिलगाने॥

भाई वर के योग्य बारात नहीं है, दूसरे के नगर में जाकर तुम लोग हँसी कराओगे क्या? विष्णु के इस वचन को सुन कर देवता मुसकाने लगे और वे अपने अपने आदमियों के साथ अलग अलग हो गये।

मनहीं मन महेस मुसुकाहीं। हरि के ब्यंग बचन नहिं जाहीं॥

विष्णु के वचन सुन कर शिवजी मन हीं मन मुसकाये और उन्होंने कहा, विष्णु के व्यंग बोलने की आदत अभी भी नहीं छूटती।

अतिप्रिय वचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥

अपने प्रिय विष्णु के प्रियवचन सुनकर शिवजी ने भृंगी को भेज कर अपने गण को बुला लिया।

सिव अनुसासन सुनि सब धाये। प्रभुपद जलजसीस तिन्ह नाये॥
नाना बाहन नाना वेषा। बिहंसे सिव समाज निज देषा॥

शिवजी की आज्ञा सुन कर सभी दौड़े आये और उन्होंने अपने प्रभु के चरण कमलों को प्रणाम किया। उनके अनेक प्रकार के वाहन थे और वे स्वयं भी अनेक प्रकार के थे, अपने इस बिलक्षण समाज को देखकर शिवजी हँसे।

कोउ मुषहीन विपुलमुष काहू। बिनु पद कर कोउ बहुपदबाहू॥
विपुल नयन कोउ नयनविहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अतितनषीना॥

उनके समाज में किसीका मुख ही नहीं था, किसीके अनेक मुख थे, किसीके हाथ ही पैर न थे और किसीके अनेक हाथ पैर थे। किसीकी अनेक आंखें थीं और किसीकी आंखें थी ही नहीं, कोई खूब हृष्ट पुष्ट और कोई बिलकुल दुर्बल था।

छं०—तनषीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्यसोनित तन भरे॥
षरस्वानसुअरसृगालमुष गनवेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जुगिन जमात बरनत नहिं बनै॥

किसीका शरीर क्षीण है, कोई बहुत मोटा है, किसीने पवित्र वेष धारण किया है और किसीने बहुत ही अपवित्र, विकराल नरमुण्ड का भूषण कोई धारण किये हुए है, ताजा रुधिर सबने अपने अपने शरीर में लगाया है। गधा, कुत्ता, सूअर, सियाल आदि के मुखवाले अनेक प्रकार के

गण थे, उनकी गणना कौन करे। प्रेत, पिशाच, योगिनी आदि के अनेक जमात थे। जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सो०-नाचहिं गावहिं गीत, परमतरङ्गी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन विचित्र विधि॥

मस्त भूत नाचते थे, गीत गाते थे जो देखने में अच्छा नहीं मालूम होता था और विलक्षण बातें भी करते थे।

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होत मग जाता॥

जैसे दूलह थे, वैसी ही बरात भी सजी थी। रास्ते में अनेक प्रकार का तमाशा होता जाता था।

इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अतिबिचित्र नहि जाइ बखाना॥

यहाँ कन्या के घर हिमालय ने अतिविचित्र शामियाना बनवाया था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनिसिराहीं॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहँ नेवति पठावा॥

संसार में जितने छोटे बड़े पर्वत हैं, जिनका वर्णन कर के पार पाना कठिन है, उनको और वन, समुद्र, सब नदी तालाब को हिमालय ने निमन्त्रण भेजा था।

कामरूप सुंदर तनुधारी। सहित समाज सोह नरनारी॥
आए सकल हिमाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा॥
प्रथमहि गिरि बहु गृह सँवराये। जथाजोग जहँ तहँ सब छाये॥

वे सब अपनी रुचि के अनुसार सुन्दर रूप धर कर अपनी स्त्रियों तथा सङ्गी साथियों के साथ हिमालय के घर आये और प्रेमपूर्वक मंगल गान गाने लगे। हिमालय ने पहले ही से बहुत से घर बनवा रखे थे, उनमें वे यथायोग्य ठहराये गये।

पुरसोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई॥

सुन्दर नगर की शोभा के सामने ब्रह्मा की चतुरता भी थोड़ी जंचने लगी, अर्थात् नगर की सजावट बड़ी ही सुन्दर की गयी थी।

छं०-लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बनबागकूपतड़ागसरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल विपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छवि देषि मुनिमन मोहहीं॥

पुर की शोभा के सामने ब्रह्मा की निपुणता भी तुच्छ मालूम होती थी, वन, बाग, कूप, तड़ाग, नदियां, इन सबकी सुन्दरता का वर्णन कौन कर सकता है। प्रत्येक घर में मंगल वन्दनवार ध्वजा पताका आदि शोभित हो रही थी, सुन्दर स्त्री पुरुषों की सजी छवि देखकर मुनियों का मनभी मोहित हो जाता था।

दो०-जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिधि सिधि संपति सकल सुख, नित नूतन अधिकाइ॥१००॥

जिस नगर में जगदम्बा ने जन्म धारण किया है, उस नगर का क्या वर्णन किया जा सकता है, वहां ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति सुख आदि की नित नयी नयी अधिकता होती है।

नगर निकट बरात सुनि आई। पुर षरभर सोभा अधिकाई॥
करि बनाव सब वाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना॥

नगर के पास बारात आई इस खबर से नगर में खलबली पड़ गयी, और शोभा बढ़ गयी। सब लोग सवारियों को सजाकर आदर पूर्वक बारात की अगवानी करने के लिए चले।

हिय हरषे सुरसेन निहारी। हरिहि देषि अति भये सुषारी॥
सिवसमाज जब देषन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे॥
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लइ जीव पराने॥

देवताओं की सेना देखकर लोग मन में प्रसन्न हुए और विष्णु को देख लोग अत्यन्त सुखी हुए। जब शिवजी का दल वे लोग देखने लगे तब तो डरे और उनके वाहन भागे। जो बड़े थे वे तो धैर्य धरकर वहां खड़े रहे, पर लड़के अपना जीव लेकर भाग गये।

गये भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं वचन भय कंपित गाता॥
कहिय कहा कहि जात न वाता। जमकर धार कि धौं बरिआता॥

लड़के भागकर अपने अपने घर गये, पिता माताओं ने दौड़ कर आने का कारण पूछा, वे कहने लगे पर भय से उनकी देह कांपती थी, उन्होंने कहा, क्या कहें बात तो आती ही नहीं, यह बारात क्या है यमराज की सेना है।

वर वौराह वरद असवारा। व्याल कपाल विभूषन छारा॥

वर तो पागल है, वह बैल पर चढ़ा है, सांप, नरमुण्ड तथा भस्म उसके भूषण हैं।

छं०—तन छार व्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा।
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि विकटमुष रजनीचरा॥
जो जियत रहहि वरात देखत पुन्य वड़ तेहिकर सही।
देषिहि सो उमा विवाह घर घर वात अस लरिकन कही॥

वर के शरीर में भस्म लिपटी है नाग नरमुण्ड भूषण हैं, वह स्वयं नंगा जटाधारी और भयंकर है, उसके साथ भूत प्रेत पिशाच योगिनी और विकटमुखवाले राक्षस हैं, जो बारात देखने से भी जीते रहें उनका बड़ा भारी भाग्य समझना चाहिए, और वेही उमा का ब्याह देखेंगे इस प्रकार की बात लड़कों ने अपने अपने घर कही।

दो०—समुझ महेश समाज सब जननि जनक मुसुकाहि।
वाल वुझाये विविध विधि, निउठर होउ डर नाहि॥१०१॥

शिवजी के दल की बातें सुनकर पिता माताओं ने हँस दिया, अनेक

प्रकार से लड़कों को समझाया, कहा कि डर की कोई बात नहीं, निडर हो जाओ।

लै अगवान बरातहि आए। दिये सबहिं जनवास सुहाये॥
मैना सुभ आरती संवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचनथार सोह बरपानी। परिछन चली हरहिं हरषानी॥
बिकटबेष रुद्रहिं जब देषा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गये महेस जहां जनवासा॥

अगवानी करके बारात ले आये; और रहने के लिए सबको उत्तम जनवासे दिये; मैना ने शुभ आरती बनायी, उसके साथ स्त्रियां मंगल गान गाती थीं, हाथों में सुवर्ण का थाल शोभता था, वे प्रसन्न होती हुई शिवजी को परछने के लिए चलीं। पर जब स्त्रियों ने रुद्र का विकट रूप देखा, तब उनको बड़ा डर मालूम हुआ, डरके मारे भागकर वे घर में घुस गयीं, शिवजी भी जहां जनवासा था वहां गये।

(पारवती की माता का मोह)

मयना हृदय भयउ दुष भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥

मैना के हृदय में बहुत अधिक दुःख। हुआ, उन्होंने पार्वती को अपने पास बुला लिया।

अधिक सनेह गोद बैठारी। स्यामसरोजनयन भरि बारी॥
जेहि बिधि तुम्हहिं रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ बर बाउरकसकीन्हा॥

बड़े प्रेम से उन्होंने पार्वती को गोद में बैठा लिया, नीलकमल के समान सुन्दर उनकी आंखों में जलभर आया। उन्होंने कहा जिस ब्रह्मा ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया, उसी अविवेकी ने तुम्हारे वर को ऐसा बुरा क्यों बनाया।

छं०--कस कीन्ह बर बौरिह बिधि जेहिं तुमहि सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई॥

तुम सहित गिरिते गिरउँ पावक जरउँ जलनिधि महि परउँ।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत विवाह न हौं कराउँ॥

जिस ब्रह्मा ने तुमको इतनी सुन्दरता दी, उन्होंने वर को बौराह क्यों बनाया, जो फल कल्पतरु में लगाना चाहिए था जबरदस्ती वह बबूल में लगाया गया। तुमको लेकर मैं पर्वत पर से गिर जाऊँगी, या आग में जल मरूंगी, अथवा समुद्र में डूब मरूंगी, घर रहे चाहे जाय, संसार में अपयश भलेही हो, पर जीते जी इस वरसे विवाह नहीं करने दूंगी।

दो०—भइ विकल अबला सकल, दुषित देषि गिरिनारि।
करि विलाप रोदति वदति, सुतासनेहसँभारि॥ १०२॥

गिरिराज की स्त्री मैना को दुःखी देखकर सब स्त्रियाँ व्याकुल हुईं, वह पुत्री के स्नेह के कारण विलाप करती थी, रोती थी और पुनः अपने को सम्भार कर कहती थी।

नारद कर मैं काह बिगारा। भवन मोर जिन बसत उजारा॥

नारद का मैंने क्या बिगाड़ा था जिन्होंने मेरे बसे हुए घर को उजाड़ दिया?

अस उपदेश उमहिं जिन दीन्हा। बौरे वरहिं लागि तप कीन्हा॥

नारद ने उमा को ऐसा उपदेश दिया जिससे उसने बौराह वरके लिए तपस्या की।

साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया॥
परघरघालक लाज न भीरा। बांझ कि जान प्रसव की पीरा॥

सचमुच नारद को न मोह है और न माया, वे तो त्यागी साधु हैं, उन्हें न तो धन है न घर है और न स्त्री है। दूसरे का घर उजाड़ते उन्हें लज्जा न आयी और न दुःख ही हुआ, भला वन्ध्या प्रसव की पीड़ा क्या समझ सकती है, जिसे कोई सन्तति हुई ही नहीं वह भला प्रसव की पीड़ा क्या जाने।

जननिहिं विकल विलोकि भवानी। बोली जुत विवेक मृदुबानी॥

माता को विकल देखकर भवानी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोली—

अस बिचार सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता॥

माता, तुम इस बात को निश्चित समझ कर शोक करना छोड़ दो कि विधाता की इच्छा टारे नहीं टरती।

करम लिषा जो बाउरनाहू। तौ कत दोष लगावहु काहू॥

कर्म में जब बुरा पति लिखा है, तो इसमें किसी का दोष क्या? इसके लिए तुम किसी पर दोष क्यों लगाती हो?

तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

माता, क्या ब्रह्मा की रेखा तुम मिटा सकोगी, यदि नहीं, तो फिर व्यर्थ अपने सिर कलङ्क क्यों लेती हो।

छं०—जिनिलेहु मातु कलंक करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुष जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि वचन उमा विनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहुभाँति विधिहिं लगाइ दूषन नयनवारि बिमोचहीं॥

माता कलंक मत लो, दुःख छोड़ो, दुःख करने का अवसर नहीं है। हमारे भाग्य में जो कुछ दुःख सुख लिखा है, वह हम जहाँ जाँयगी वहीं पावेंगी। पार्वती के विनीत और कोमल वचन सुनकर स्त्रियाँ सोचने लगी, उनलोगोंने ब्रह्मा की बड़ी निन्दा की, उनकी आँखों से आँसू बहने लगा।

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरित निकेत॥ १०३॥

उस समय घर का समाचार सुनकर नारद और सप्तऋषियों के साथ हिमालय शीघ्र ही घर में गये।

(नारद का उपदेश)

तब नारद सबहीं समुझावा। पूरब कथाप्रसंग सुनावा॥

तब नारद ने सब को समझाया और पार्वती के पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया। सतीरूप में उन्होंने अपना शरीर त्याग किया और पुनः शिवको ही पति पाने की अपनी अभिलाषा प्रकट की, यह सब कथा नारद ने सुनायी।

मैना सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी॥
अजा अनादिसक्ति अविनासिनि। सदा संभु अरधंगनिवासिनि॥

नारद ने कहा—मैना, मेरी बात सुनो, जो सत्य है। तुम्हारी कन्या शिव की स्त्री जगदंबा है। यह अजा अनादिशक्ति अविनाशिनी तथा शिव के आधे अंग में सदा निवास करनेवाली है।

जगसंभवपालनलयकारिनि। निजलीलासुभाववपुधारिनि॥

यह संसार का उत्पादन, पालन और नाश करनेवाली है और अपनी इच्छा से शरीर धारण करनेवाली है।

जनमी प्रथम दच्छगृह जाई। नाम सती सुन्दर तनु पाई॥
तहँउँ सती शंकरहीं बिवाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जगमाहीं॥

पहले इस का जन्म दक्ष के घर में हुआ था इसका नाम सती था और इसने सुन्दर शरीर पाया था। उस जन्म में भी शिवजी ने ही इसे ब्याहा था, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है।

एक बार आवति शिवसंगा। देखेउ रघुकुलकमलपतंगा॥

एक बार शिवजी के साथ यह आती थीं, इन्होंने रघुकुलकमलदिवाकर रामचन्द्र को देखा। पतंग का अर्थ सूर्य भी है।

भयउ मोह सिव कहा न कीन्हा। भ्रमबस वेष सीय कर लीन्हा॥

यह मोह के वश हो गयीं, शिवजी का कहना इन्होंने नहीं माना, भ्रमवश इन्होंने सीता का वेष धारण किया।

छं०—सियवेष सती जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरी।
हरबिरह जाइ बहोरि पितु के जग्य जोगानल जरी॥

अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुन तप किया ॥
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा संकरप्रिया ॥

सती ने सीता का वेष धारण किया, इस अपराध से शिवजी ने इनका त्याग किया। शिवजी के विरह के कारण पुनः यह अपने पिता के घर गयीं और उनके यज्ञ में योगाग्नि के द्वारा जल मरीं। अब तुम्हारे घर उत्पन्न हुई हैं, अपने पति के पाने के लिए इन्होंने कठोर तपस्या की है, यह जान कर सन्देह छोड़ दो, पार्वती सदा से शिवजी की प्रिया है।

दो०—सुन नारद के वचन तब, सब कर मिटा विषाद।
छन मह व्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥ १०४ ॥

नारद के वचन सुनने से सब का दुःख दूर हुआ, एक क्षण में ही समूचे नगर में घर घर यह संवाद फैल गया।

(विवाह)

तब मैना हिमवंत अनंदे। पुनि पुनि पारवतीपद बंदे ॥

तब मैना और हिमवान् भी प्रसन्न हुए, इन्होंने बार बार पार्वती के चरणों की बन्दना की।

नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥
लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटकघट नाना ॥

स्त्री पुरुष, बालक युवा प्रौढ़ सभी नगरवासी, बहुत प्रसन्न हुए। नगर में मंगल गान होने लगा, अनेक सोने के घड़े सब ने सजाकर रक्खे।

भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥

अनेक प्रकार का भोजन बनवाया गया, सूपशास्त्र में भोजन बनाने की जैसी विधि है। भोजन बनाने की विद्या को सूपशास्त्र कहते हैं।

सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहि मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती। विष्णु विरंचि देव सब जाती ॥
विविध पांति बैठे जेवनारा। लगे परोसन निपुन सुआरा ॥

उस जेवनार का क्या वर्णन किया जा सकता है; क्योंकि वह उस घर में बना था जिसमें माता भवानी निवास करती हैं। आदरपूर्वक सब बरातियों को विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं को तथा अपनी जाति के सब लोगों को बुलाया गया। भिन्न भिन्न पंक्तियों में जेवनार बैठी और निपुण परोसनेवाले परोसने लगे। सुआर परोसनेवाले को कहते हैं।

नारिवृंद सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारी मृदुबानी॥

देवता लोग खा रहे हैं यह जान कर स्त्रियों का समूह कोमल वचनों से गाली गाने लगा।

छं०—गारी मधुर सुर देहि सुंदरि व्यंग वचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब बिनोद सुनि सचुपावहीं॥
जेवत जो बढ्यो अनंद सो मुख कोटिहु न परै कह्यो।
अंचवाइ दीन्हें पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

स्त्रियाँ मधुर सुर में गाली देती हैं और दिल्लगी की बातें सुनाती हैं। देवता देर लगा कर भोजन करते हैं और विनोद की बातें सुनकर चुप हो रहते हैं। भोजन करते समय जो आनन्द हुआ वह करोड़ों मुख से भी नहीं कहा जा सकता है। अँचवाकर भोजन करके हाथ मुंह धो लेने पर पान दिया गया और जिसका जहाँ स्थान रहा वे सब वहाँ अपने अपने स्थान को गये।

दो०—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठये देव बोलाइ॥ १०५॥

पुनः मुनिगण ने हिमवान के पास आकर लगन का समय सुनाया, विवाह का समय हो गया है, यह देखकर उन्होंने देवताओं को बुलाया।

बोलि सकल सुर सादर लीन्हें। सबहिं जथोचित आसन दीन्हें॥
बेदी बेदविधान संवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥
सिंहासन अतिदिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचिबनावा॥

हिमवान ने सब देवताओं को आदरपूर्वक बुलवा लिया और सबको यथायोग्य आसन दिया। वेदविधान के अनुसार वेदी बनायी गयी. सधवा स्त्रियाँ मंगल गान गाने लगीं। सिंहासन बड़ा ही सुन्दर और दिव्य था। जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो ब्रह्मा ने उसे स्वयं बनाया हो।

बैठे सिव विप्रन्ह सिर नाई। हृदय सुमिरि निजप्रभु रघुराई॥

ब्राह्मणों को प्रणाम कर, हृदय में अपने प्रभु रघुनाथ जी का स्मरण कर के शिवजी उस सिंहासन पर बैठे।

बहुरि मुनीसन उमा बोलाई। करि सिंगार सखीं लै आई॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनइ छवि अस जग कवि को है॥
जगदंबिका जानि भवबामा। सुरन मनहि मन कीन्ह प्रनामा॥

पुनः मुनियों ने पार्वती को बुलाया, सिंगार कर के सखियाँ उन्हें ले आयीं। उनका सुंदर रूप देखकर सब देवता मोहित हो गये, उस रूप का वर्णन करे ऐसा कवि इस संसार में कौन है? ये जगदम्बिका हैं; शिवजी की स्त्री हैं, इस बात को जानकर देवताओं ने मन ही मन उन्हें प्रणाम किया।

सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

भवानी सुन्दरता की सीमा हैं, करोड़ों मुंह से भी उस सौन्दर्य का वर्णन नहीं हो सकता है।

छं०-कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जगजननी सोभा महा।
सकुचहिं कहत स्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानी गवनी मध्यमंडप सिव जहां।
अवलोकि सकहिं न सकुचि पतिपदकमल मनमधुकर तहां॥

करोड़ों मुखों से भी जगत जननी की महती शोभा का वर्णन नहीं हो सकता। वेद शेष और शारदा भी उस शोभा का वर्णन करते सकुचाते हैं, फिर तुलसी की कौन गणना? शोभाधाम माता भवानी मण्डप के मध्य में

जहाँ शिव थे गयीं, वे सङ्कोच के कारण स्वयं न देख सकीं, पर उनका मन-रूपी भ्रमर पति के चरण कमलों के पास चला गया।

दो०—मुनि अनुसासन गनपतिहिं, पूजेउ संभु भवानि।
कोउ संसय करइ जनि, सुर अनादि जिय जानी॥ १०६॥

मुनि की आज्ञा से शिवजी और पार्वतीजी ने गणेश की पूजा की। इस विषय में किसीको सन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि देवता अनादि हैं। गणेश जी शिवजी के पुत्र हैं फिर शिवजी के व्याह में वे कहाँ से आये ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिए, क्योंकि देवता अनादि हैं।

जस विवाह कै विधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुसकन्यापानी। भवहिँ समर्पी जानि भवानी॥

वेदों में विवाह की जैसी विधि लिखी हुई है, वह सब मुनियों ने कराई। पर्वतराज ने कुश और कन्या का हाथ अपने हाथ में लेकर तथा उसे भवानी समझ कर अर्थात् शिव की प्रिया समझ कर शिवजी को समर्पित कर दिया।

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरषे तब सकल सुरेसा॥

शिव ने जब पार्वती का पाणिग्रहण कर लिया, तब सब देवगण मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए।

वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥

मुनि वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे और देवता शिवजी का जय जयकार करने लगे।

बाजहिं बाजन विविध विधाना। सुमन वृष्टि नभ भइ विधि नाना॥
हरगिरिजा कर भयउ विवाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

अनेक तरह से बाजे बजने लगे और आकाश से पुष्पों की वृष्टि अनेक प्रकार से हुई। शिव और पार्वती का व्याह हुआ, इससे समस्त भुवनों में खूब आनन्द हुआ।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि वस्तु विभागा॥

अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गाय, वस्त्र, मणि, तरह तरह की अन्य चीजें, सोने के बर्तनों में भर कर गाड़ियों अन्न हिमालय ने दहेज में दिया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

छं०—दाइज दियो बहु भाँति पुनि करजोरि हिम भूधर कह्यौ।
का देउ पूरनकाम संकर चरनपंकज गहि रह्यौ॥
सिव कृपासागर ससुर कर संतोष सब भाँतिहिं कियो।
पुनि गहे पदपाथोज मैना प्रेमपरिपूरन हियो॥

अनेक प्रकार के दहेज देकर हिमालय ने हाथ जोड़कर कहा, मैं क्या दूं, शिवजी तो पूर्ण काम हैं। उन्हें किसी वस्तु की वासना नहीं है, ऐसा कह कर उन्होंने शिवजी के चरण पकड़ लिये, कृपासागर शिवजी ने भी सब प्रकार से अपने श्वसुर को संतुष्ट किया। पुनः मैना ने प्रेमपूर्ण हृदय से शिवजी के चरण छुए।

दो०—नाथ उमा मम प्रानसम, गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, होइ प्रसन्न बर देहु॥१०७॥

मैना ने कहा, हे नाथ, उमा मेरे प्राणों के समान है, उसे आप अपने घर की दासी बनावें, आप पार्वती के सब अपराधों को क्षमा करें और प्रसन्न होकर वर दें।

बहु बिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिर नाई॥
जननि उमा बोलि तब लीन्ही। लेइ उछंग सुंदर सिष दीन्ही॥

शिवजी ने अनेक प्रकार से अपनी सास को समझाया और वे शिवजी को प्रणाम कर के अपने घर चली गयीं। तदनन्तर माता ने पार्वती को बुलाया और गोद में लेकर उन्होंने अच्छी शिक्षा दी।

करेहु सदा संकरपद पूजा। नारिधरम पतिदेव न दूजा॥

उन्होंने कहा, शिवजी के चरणों की सदा पूजा करना, क्योंकि पतिदेव की पूजा के अतिरिक्त स्त्रियों को दूसरा धर्म नहीं है।

बचन कहत भरि लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

वचन कहते हुए उनकी आँखें भर आयीं, पुनः उन्होंने पार्वती को छाती से लगाया।

कह बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥
भइ अतिप्रेम बिकल महतारी। धीरज कीन्ह कुसमय बिचारी॥

ब्रह्मा ने संसार में स्त्रियाँ क्यों बनायीं, क्योंकि पराधीनता में तो स्वप्न में भी सुख नहीं होता। पार्वती की माता अत्यन्त प्रेम के कारण बहुत विकल हुईं, पर विकल होने का यह समय नहीं है; यह सोच कर के उन्होंने धैर्य धारण किया।

पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रेम कछु जाइ न बरना॥

पुनः बार बार मिलती हैं, चरणों पर पड़ती हैं, उस परम प्रेम का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सब नारिन मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥

पार्वती सब स्त्रियों से मिलो भेंटीं, पुनः जाकर वे माता की छाती से लिपट गयीं।

छं०—जननी बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकत मातु तन तब सखी लेइ सिवपहँ गई॥
जाचक सकल संतोष संकर उमासहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले॥

माता से मिल कर पार्वतीजी चलीं। सब लोगों ने उन्हें उचित आशीर्वाद दिये, जाते समय लौट लौट कर वे माता की ओर देखने लगीं। तब सखियाँ लेकर उन्हें शिवजी के पास गयीं। शिवजी ने सब याचकों को

प्रसन्न किया और पार्वती को लेकर वे घर चले, उस समय देवगण प्रसन्न हुए, पुष्प की वृष्टि हुई और बाजे बजे।

दो०-चले संग हिमवंत तब, पहुंचावन अतिहेतु॥
विविध भांति परितोष करि, विदा कीन्ह वृषकेतु॥१०८।

हिमवान पहुंचाने के लिए बड़े प्रेम से उनके साथ चले। शिवजी ने अनेक प्रकार से उन्हें धैर्य दिलाकर लौटा दिया।

तुरत भवन आये गिरि राई। सकलशैलसर लिए बोलई॥
आदर दान विनय बहु माना। सब कर विदा कीन्ह हिमवाना॥

गिरिराज शीघ्र ही अपने घर चले आये और सब पर्वतों तथा तलावों को उन्होंने बुलवाया। उनको सत्कार कर के दान देकर विनयपूर्वक बहु मान देकर विदा किया।

जबहि संभु कैलासहि आये। सुर सब निज निज लोक सिधाये॥

शिवजी जब कैलास चले आये तब देवता अपने अपने लोकों को गये।

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहउ बखानी॥
करहिं विविध विधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा विहार नित नयउ। एहि विधि विपुल काल चलिगयउ॥

तुलसीदास कहते हैं कि शिव और पार्वती जगत् के पिता माता के समान हैं, इस कारण उनके शृंगार का मैंने वर्णन नहीं किया। शिवजी अपने गणों के साथ कैलास पर्वत पर रहने लगे और वहाँ अनेक प्रकार के भोग विलास करने लगे। शिव और पार्वती के नित नये नये विहार होने लगे, इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

तब जनमेउ षटवदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहि मारा॥

तब षडानन नामक कुमार का जन्म हुआ, जिन्होंने रण में तारकासुर को मारा।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षटमुख जनम सकल जग जाना॥

षडानन के जन्म की कथा तब वेद और पुराणों में प्रसिद्ध है तथा सब लोग जानते हैं।

छं०-जगु जान षटमुषजनमु करम प्रताप पुरषारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुतकर चरित सँछेपहि कहा॥
यह उमासंभु विवाहु जे नर नारि सुनहिं जे गावहीं।
कल्यान काज विवाह मंगल सर्वदा सुष पावहीं॥

षडानन के जन्म, कार्य, प्रताप तथा उनके महान पुरुषार्थ को समस्त संसार जानता है, इसी कारण शिवजी के पुत्र षडानन की कथा मैंने संक्षेप में ही कही है। इस शिव पार्वती के विवाह की कथा को जो स्त्री पुरुष कहेंगे अथवा गावेंगे, उनके यहाँ सदा मंगल कार्य होंगे, विवाह होगा और वे सुख पावेंगे।

दो०—चरितसिंधु गिरिजारमन, वेद न पावहिँ पारु॥
वरनइ तुलसीदास किमि, अतिमति मंद गँवारु॥१०२॥

शिवजी के चरितसमुद्र का पार वेद भी नहीं पा सकते, फिर तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है, जो मतिमन्द, हैं गवांर है।

संभुचरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अतिसुष पावा॥

सरस और सुन्दर शिवजी के चरित को सुनकर भरद्वाज मुनि ने बड़ा सुख पाया।

(याज्ञवल्क्य के द्वारा कथा प्रारम्भ)

वहु लालसा कथा पर वाढ़ी। नयन नीरु रोमावलि ठाढ़ी॥
प्रेम विवस मुख आव न वानी। दसा देषि हरषे मुनि ज्ञानी॥

कथा सुनने की उनकी इच्छा और वलवती हुई, आँखें भर आयी रोंगटे खड़े हो गये। भरद्वाज प्रेम विह्वल हो गये अतएव उनके मुँह से शब्द नहीं निकलें। ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि भारद्वाज की यह दशा देख वहुत प्रसन्न हुए।

अहो धन्य तव जनम मुनीसा। तुम्हहिं प्रान सम प्रिय गौरीसा॥

हे मुनीश, आपका जन्म धन्य है। शिवजी आपको प्राणों के समान प्रिय हैं।

सिवपदकमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहि ते सपनेहु न सुहाहीं ॥

शिवजी के चरण कमलों में जिनका प्रेम नहीं है, राम को वे स्वप्न में भी नहीं भाते।

बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू। रामभगत कर लच्छन एहू ॥

शिव के चरणों में निश्छल प्रेम होना ही रामभक्त का लक्षण है।

सिव सम को रघुपति व्रतधारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी ॥

शिवजी के समान रामजी में नेह रखनेवाला कौन है ? जिन्होंने विना अपराध ही सती के समान स्त्री का त्याग कर दिया।

पन करि रघुपति भगति दृढ़ाई। को सिवसम रामहिं प्रिय भाई ॥

प्रतिज्ञा करके जिन्होंने राम भक्ति को दृढ़ बनाया, ऐसा शिव के समान रामजी को प्रिय दूसरा कौन है ?

दो०--प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित; बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम राम के, रहित समस्त बिकार ॥११०॥

पहले शिवजी का चरित कह कर तुम्हारा मर्म, तुम्हारे हृदय के भाव मैंने जान लिये, तुम रामजी के पवित्र सेवक हो और सांसारिक सब विकारों से रहित हो।

मैं जाना तुम्हार गुनसीला कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला ॥

मैंने तुम्हारे गुण और शील जान लिये, अब मैं रामजी की लीला कहता हूँ सुनो।

सुनु मुनि आजु समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुष मन मोरे ॥

मुनि, सुनिए आपके सतसंग से मेरे मन में आज जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा ॥

मुनीश, रामजी का चरित अपरिमित है, उसका वर्णन सौ करोड़ शेषनाग मिलकर भी नहीं कर सकते हैं।

तदपि जथास्रुत कहउं बषानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥

फिर भी जैसा मैंने सुना है, वह वाणीपति और धनुष्पाणि प्रभु रामजी का स्मरण कर के कहता हूं।

सारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबिउरअजिर नचावहि बानी॥

शारदा कठपुतली के समान हैं और अन्तर्यामी राम सूत्रधर के समान है। सूत पकड़ने वाला नट जैसे सूत को हिलाता है वैसे ही कठपुतली नाचती है, यहां सम्बन्ध सरस्वती और रामजी का है। अपना भक्त जानकर वे जिस पर कृपाकरते हैं, उसी कवि के हृदय में सरस्वती नाचने लगती है, उसके अधीन हो जाती हैं।

(कैलास का परिचय)

प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुनगाथा॥
परमरम्य गिरिवर कैलासू। सदा जहाँ सिवउमानिवासू॥

उसी कृपालु रघुनाथ को मैं प्रणाम करता हूँ और उनके उज्ज्वल गुणों का वर्णन करता हूँ। पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत बड़ा ही रमणीय है, वहाँ शिवजी और पार्वतीजी का निवास है।

दो०-सिद्ध तपोधन जोगि जन, सुर किन्नर मुनिवृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुषकंद॥१११॥

सिद्ध तपस्वी योगी, देवता किन्नर तथा मुनियों का समूह ये सब पुण्यात्मा वहां निवास करते हैं और सुख के मूल शिवजी की सेवा करते हैं।

हरिहरविमुष धरमरति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहु नहिं जाहीं॥
तेहि गिरिपर वट विटप विसाला। नितनूतन सुंदर सबकाला॥

शिव और विष्णु से जो विमुख हैं, जिनका धर्म में प्रेम नहीं है, एसे

मनुष्य स्वप्न में भी वहाँ नहीं जाते। उसी पर्वत पर एक बहुत बड़ा वट का वृक्ष है, जो प्रतिदिन नया बना रहता है तथा सब ऋतुओं में एक समान सुन्दर रहता है।

त्रिविध समीर सुसीतल छाया। सिव विश्राम विटप स्रुति गाया॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकार की हवा बहती है, छाया बड़ी शीतल है, शिवजी वहाँ विश्राम करते हैं, यह श्रुतियों ने गाया है।

(पार्वती का प्रश्न)

एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु विलोकि उर अति सुख भयऊ॥

एक बार उसी वृक्ष के नीचे प्रभु शिवजी गये, उस वृक्ष को देखकर उनके मन में विशेष आनन्द हुआ।

निजकर डासि नागरिपुछाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥

अपने हाथों से व्याघ्र चर्म बिछाकर कृपालु शिवजी स्वभावतः बैठ गये। नाग का अर्थ है हाथी, उसका रिपु बाघ, नागरिपु की छाल व्याघ्रचर्म।

कुंदइंदुदरगौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥
तरुनअरुनअंबुजसम चरना। नखदुति भगतहृदयतमहरना॥

कुन्दनामक पुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान उनका शरीर गौर वर्ण है, भुजाएँ लंबी हैं, मुनिवस्त्र उन्होंने धारण किया है, तरुण कमलपुष्प के समान उनके चरण हैं, उनके नखों की द्युति से भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर होता है।

भुजगभूतिभूषन त्रिपुरारी। आननसरदचंदछबिहारी॥

त्रिपुरारी शिवजी के भूषण सर्प और भस्म है, उनका मुख शरद के चन्द्रमा की शोभा को हरण करता है, अर्थात् वह उसके समान है।

दो०-जटामुकुट सुरसरित सिर, लोचननलिन विसाल।
नील कण्ठ लावन्य निधि, सोह बालविधुभाल॥ ११२॥

सिरपर जटा, मुकुट और देवनदी गङ्गा शोभती हैं, विशाल नेत्रकमल

है, कण्ठ नीला है, उन लावण्य के समुद्र के मस्तक पर बालचन्द्रमा शोभता है।

बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे सरीर सांतरस जैसे॥

वहाँ बैठे हुए कामरिपु महादेव जी कैसे शोभते थे जैसे शान्त रस ने ही शरीर धारण किया हो।

पारवती भल अवसरु जानी। गईं संभु पहँ मातु भवानी॥

अच्छा अवसर देखकर पर्वतराज की कन्या माता भवानी वहाँ शिवजी के समीप गयीं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बामभाग आसन हर दीन्हा॥

प्रिया पार्वती आयी हैं, यह जानकर महादेव ने उनका बड़ा आदर किया और अपने वामभाग में उनके लिए आसन दिया।

बैठीं सिवसमीप हरषाई। पूरब जनम कथा चित आई॥

प्रसन्न होकर वे शिवजी के पास बैठ गयीं, उस समय अपने पूर्वजन्म की कथा उन्हें स्मरण आयी।

पति हिय हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोलीं प्रियबानी॥

पति के हृदय में हमारे लिए अधिक प्रेम है, यह जानकर उमा हँसीं और प्रिय वचन बोलीं—

कथा जो सकललोकहितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

जिस कथा से सब का कल्याण होता है; वही कथा पार्वती पूछना चाहती थीं।

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥

हे मेरे स्वामी विश्वनाथ, हे पुरारि, आपकी महिमा तीनों भुवनों में प्रसिद्ध है।

चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पदपंकजसेवा॥

स्थावर, जंगम, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

दो०—प्रभु समरथ सर्बज्ञ सिव, सकलकलागुनधाम।
जोग ज्ञान बैराग्यनिधि, प्रनत कलपतरु नाम॥ ११२॥

प्रभो, आप समर्थ हैं, सर्वज्ञ है, कल्याणकर्ता हैं, सब कलाओं और गुणों के आप धाम हैं, आप योग, ज्ञान और वैराग्य के निधि हैं, आपका नाम प्रणत कल्पतरु है अर्थात् शरण में आये हुए के मनोरथ को आप कल्पतरु के समान पूर्ण करते हैं।

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी॥

यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और जो सत्य सत्य मुझे अपनी दासी जानते हैं।

तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथकथा विधिनाना॥

हे प्रभो, मुझे दासी जानकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये, अनेक प्रकार की रघुनाथ की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये।

जासु भवन में सुरतरु होई। सह कि दरिद्रजनित दुख सोई॥

जिसके घर में कल्पवृक्ष हो, वह क्या दरिद्रता के दुःखों को भोग सकता है।

ससिभूषन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी॥

हे शशिभूषण शिवजी, इस प्रकार हृदय में विचार कर, हे नाथ, मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को हरण कीजिये।

प्रभु जे पुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी॥

प्रभो, जो लोग परमार्थवादी हैं, जो संसार की सत्ता को न मान कर केवल सत्य स्वरूप परमात्मा की ही सत्ता मानते हैं, वे श्रीराम को अनादि ब्रह्म कहते हैं।

सेषसारदा वेदपुराना। सकल करहि रघुपतिगुनगाना॥

शेष, सरस्वती, वेद, पुराण आदि सभी रघुनाथ जी का गुणगान करते हैं।

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥

हे अनंग अराति, अर्थात् काम के शत्रु महादेवजी, आप भी दिन रात आदरपूर्वक राम राम जपते रहते हैं।

राम सो अवधनृपतिसुत सोई। कै अज अगुन अलषगति कोई॥

वे राम, क्या वे ही हैं जो अयोध्यापति के पुत्र हैं, अथवा वे अजन्मा त्रिगुणरहित और न जानने योग्य गतिवाले कोई दूसरे हैं?

दो०—जौं नृपतनय तो ब्रह्म किमि, नारिविरहमतिभोरि॥
देषि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अतिमोरि॥ ११४॥

यदि वे ही राजपुत्र ही राम हैं; तो ब्रह्म कैसे? वे तो स्त्री के वियोग में सुध बुध खोये बैठे हैं। इस चरित को देखकर तथा उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि भ्रम में पड़ गयी है।

जौं अनीह व्यापक विभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहिं सोऊ॥

जो इच्छारहित व्यापक विभु कोई दूसरे हैं; तो नाथ, वह भी मुझे समझा कर कहिए।

अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटइ सोइ करहू॥

मैं अज्ञानी हूँ, इसलिए मेरे प्रश्नों को सुनकर मन में आप क्रोध न करें, जिस प्रकार मेरा भ्रम दूर हो वह आप कीजिए।

मैं वन दीप राम प्रभुताई। अतिभय विकल न तुम्हहिं सुनाई॥
तदपि मलिनमन वोध न आवा। सो फल भलीभांति हम पावा॥

मैंने वन में रामजी की प्रभुता देखी है, पर उस समय मैं भय से व्याकुल हो गयी थी, इसलिए मैं आपसे कुछ कह न सकी। फिर भी—प्रभुता देखने पर भी मेरे मन में ज्ञान नहीं हुआ। जिसका फल मुझे भली भाँति मिल गया।

अजहूँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा विनवउँ करजोरे॥

आज भी मेरे मन में कुछ थोड़ा बहुत सन्देह है, कृपा कीजिए, हाथ जोड़ कर मैं विनय करती हूँ।

प्रभु तब मोहिबहुभाँतिप्रबोधा। नाथ सोसमुझिकरहुजनिक्रोधा॥

प्रभो, उस समय आपने मुझे बहुत समझाया था; पर नाथ, मैं कुछ समझ न सकी, यह जानकर आप क्रोध न करें।

तबकर अस विमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥

उस समय के समान मेरे मन में अब मोह नहीं है, अब राम कथा पर मेरा अनुराग उत्पन्न हुआ है।

कहहु पुनीत रामगुनगाथा। भुजगराजभूषन सुरनाथा॥

हे देवताओं के स्वामी, हे सर्पराज भूषण, आप रामचन्द्रजी की पवित्र गुणकथा सुनाइए।

दो०—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु, विनय करउ करजोरि।
बरनहु रघुबरविसदजस, स्रुतिसिद्धांतनिचोरि॥११५॥

पार्वती ने कहा, मैं भूमि में मस्तक रखकर चरण वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़ कर विनय करती हूँ कि जो वैदिक सिद्धान्तों का सार है, रघुवीर के उस उज्ज्वल यश का वर्णन कीजिए।

जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥

यद्यपि स्त्रियों को वैदिक सिद्धान्ततत्त्व सुनने का अधिकार नहीं है, पर मैं तो मन वचन और कर्म से आपकी दासी हूँ।

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

जहाँ दुःखी अधिकारी मिलता है, वहाँ गुप्त रहस्यों को भी सज्जन गण नहीं छिपाते।

अति आरति पूछेउ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥

हे देवताओं के स्वामी, मैं बहुत दुःखी हो कर पूछती हूँ। आप दयाकर रामचन्द्रजी की कथा कहिए।

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुनवपुधारी॥

पहले तो उस कारण का वर्णन कीजिए, जिससे निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया है।

पुनि प्रभु कहहु रामअवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥

प्रभो, पुनः रामावतार की कथा कहिए, पुनः उनके उदार अर्थात् महान् बाल-चरित का वर्णन कीजिए।

कहहु जथा जानकी बिवाही। राज तजा सो दूषन काही॥

जिस प्रकार जनकनन्दिनी से उन्होंने ब्याह किया, सो कहिए और किस दोष से उन्होंने राज्य छोड़ा सो भी कहिए।

बनबसि कीन्हें चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥

बन में रहकर जो उन्होंने अद्भुत चरित दिखाये और जिस प्रकार उन्होंने रावण को मारा, वह सब कहिए।

राज बैठि कीन्हीं बहुलीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

राज्य पर बैठ कर उन्होंने बहुत लीला की है, सुखरूप शिवजी, वह सब कहिए।

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजासहित रघुबंश मनि, किमि गवनेनिजधाम॥११६॥

हे करुणायतन, पुनः राम ने और जो आश्चर्य के काम किये हैं, उन सब को कहिए और रघुवंशमणि रामजी अपनी सब प्रजा को लेकर किस प्रकार अपने धाम को गये सो भी कहिए।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहि बिज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥

प्रभो, पुनः उस तत्व का आप वर्णन करें; जिसमें ज्ञानी और विज्ञानी मग्न रहते हैं।

भगति ज्ञान विज्ञान विरागा। पुनि सब बरनहु सहित विभागा॥

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान वैराग्य इन सबका भी विभाग कर के वर्णन कीजिए।

अउरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति विमल विवेका॥

और भी रामजी की जो अनेक रहस्यमय कथा हैं और जिनसे निर्मल ज्ञान होता है, हे नाथ उन्हें भी कहिए।

जौ प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जानि गोई॥

प्रभो, जो मैंने नहीं पूछा है वह भी हे दयालु, आप छिपा कर न रखें किन्तु वह भी कहें।

तुम्ह त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पावँर का जाना॥

आप त्रिभुवन के गुरु हैं, यह बात वेदों ने कही है, फिर दूसरा मनुष्य इन बातों को क्या जान सकता है, उसे इन बातों का कैसे ज्ञान हो सकता है।

(शिव का उत्तर)

प्रस्न उमा के सहज सुहाई। छल विहीन सुनि सिव मन भाई॥

उमा के प्रश्न स्वाभाविक सुन्दर थे, छल कपट रहित थे, सुनने से वे प्रश्न शिवजी को अधिक रुचे।

हरहिय राम चरित सब आये। प्रेमपुलक लोचन जल छाये॥

रामजी का समस्त चरित महादेव जी के हृदय में आया, समस्त रामचरित उन्हें स्मरण हुआ, वे प्रेम से पुलकित हुए और उनकी आँखें जल से भर आयीं।

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

श्री रघुनाथ का रूप उनके हृदय में आया, ध्यान में रघुनाथजी का दर्शन हुआ, जिससे वे परमानन्दित हुए और उन्होंने बहुत सुख माना।

दो०-मगन ध्यान रस दंड युग, पुनि मन बाहर कीन्ह।
रघुपति चरित महेश तब, हरषित बरनइ लीन्ह ॥ ११७॥

शिवजी दो दण्ड तक ध्यान में मग्न रहे, पुनः उन्होंने अन्तर्मुख मन को बाह्य मुख किया अर्थात् उनका ध्यान भंग हुआ, तब शिवजी प्रसन्न होकर रामजी के चरित का वर्णन करने लगे।

झूठे सत्य जाहि विनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥

बिना ज्ञान के सत्य और असत्य की पहचान नहीं होती, जब तक पहचान न हो; तब तक रस्सी भी सर्प ही समझी जाती है। जिसको जानने से जगत् का नाश हो जाता है, अर्थात् जगत् सम्बन्धी मोह-ममता आदि नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार नींद खुलने पर स्वप्न टूट जाता है, स्वप्न की बातें जाती रहती हैं।

बंदउ बालरूप सोई रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिहि नामू॥

उसी बालरूप रामचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ। जिसके नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

मंगलभवन अमंगलहारी। द्रवौ सो दसरथअजिरबिहारी॥

जो मंगल के भवन हैं और अमंगल को हरण करने वाले हैं, वे दशरथ के आँगने में विहार करनेवाले रामजी मुझ पर प्रसन्न हों। अजिर का अर्थ है आँगन।

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधासम गिरा उचारी॥

त्रिपुरारी शिव ने रामचन्द्र को प्रणाम करके और प्रसन्न होकर अमृत के समान वचन कहे।

धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूछेहु रघुपति कथाप्रसंगा। सकललोक जनपावनिगंगा॥

हे गिरिराजकुमारी, तुम धन्य हो, तुम्हारे समान उपकार करनेवाला

दूसरा नहीं है। तुमने रामचन्द्रजी की कथा पूछी है, वह प्राणियों को पवित्र करनेवाली गंगा है। अर्थात् रामकथा गंगा के समान पवित्र करनेवाली है।

तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगतहित लागी ॥

तुम रघुवीर के चरणों में प्रेम रखनेवाली हो, तुमने संसार के कल्याण के लिए ये प्रश्न पूछे हैं।

दो०-राम कृपातें पारवति, सपनेहु तव मन माहिं ॥
सोक मोह संदेह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं ॥ ११८ ॥

हे पार्वती, मैं तो समझता हूँ कि राम कृपा से तुम्हारे मन में शोक, मोह, सन्देह, भ्रम आदि कुछ भी नहीं है।

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सनत सब कर हित होई॥

तथापि-तुमको किसी प्रकार के सन्देह न रहने पर भी-तुमने वही प्रश्न किये हैं, यह इसलिए कि इनके कहने सुनने से सबका कल्याण होगा। तुमने ये प्रश्न अपने सन्देह दूर करने के लिए नहीं किये हैं, किन्तु परोपकार के लिए।

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। स्रवनरंध्र अहिभवन समाना ॥
नैनन संत दरस नहिं देषा। लोचन मोरपंख कर लेषा

जिन्होंने कानो से हरि कथा नहीं सुनी है, उनके कान साँप के बिल के समान हैं। जिन्होंने अपनी आँखों से सन्तों के दर्शन नहीं किये हैं: उनकी आंखें मोरपंख के समान हैं।

ते सिर कटुतुंबरि समतूला। जे न नवहिं हरि गुरुपदमूला ॥

वह मस्तक कड़ुई तुंबी के समान है जो भगवान और गुरु के चरणों पर नहीं नवता अर्थात भगवान् और गुरु को नमस्कार न करनेवाले मस्तक व्यर्थ हैं।

जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान ते प्रानी ॥
जो नहिं करइ रामगुनगाना। जीह सो दादुरजीहसमाना ॥

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥

जिसके हृदय में हरिभक्ति नहीं है, वह प्राणी जीता हुआ भी मृतक के समान है। जो रामचन्द्रजी का गुण गान नहीं करती वह जीभ मेंढ़क की जीभ के समान है। वह हृदय वज्र के समान कठोर और निठुर है जो भगवान् के चरित को सुनकर प्रसन्न नहीं होता।

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज बिमोहनसीला॥

पार्वती, राम की लीला सुनो, जो राम देवताओं के कल्याण के लिए दानवों को भ्रम में डालते हैं।

दो०-रामकथा सुरधेनु सम, सेवंत सबसुखदानि।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनइ अस जानि॥११८॥

रामजी की कथा कामधेनु के समान है, सेवा करने से वह सब सुखों को देती है, यह जानकर सज्जनों का समाज तथा देवता लोग सभी इसको सुनते हैं, ऐसा कौन है जो न सुनें।

रामकथा सुन्दर करतारी। संसय विहग उड़ावनहारी॥

राम की कथा एक उत्तम करतारी है, थपोड़ी है, जो सन्देहरूपी पक्षियों को उड़ानेवाली है।

रामकथा कलिविटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराज कुमारी॥

रामकथा कलियुग रूपी वृक्ष के लिए कुठार है, हे गिरिराजकुमारी, वह कथा तुम आदरपूर्वक सुनो।

रामनामगुनचरित सुहाये। जनम करम अगनित स्रुति गाये॥
जथा अनन्त रामभगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

श्रुतियों ने राम के अनेक नाम, गुण, चरित, जन्म और कर्म बतलाये हैं, जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं।

तदपि जथास्रुति जसि मति मोरी। कहिहउं देखिप्रीति अति तोरी॥

फिर भी जैसा मैंने सुना है, जैसी मेरी बुद्धि है, उसीके अनुसार मैं कहता हूँ, क्योंकि उसके सुनने के लिए तुम विशेष उत्सुक हो, उसके सुनने में तुम्हारा बड़ा प्रेम है।

उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई॥

पार्वती, तुम्हारे प्रश्न स्वाभाविक सुन्दर हैं, सुखकारी हैं, सज्जनों के अनुकूल हैं, अतएव वे मुझे पसन्द हुए हैं।

एक बात नहिं मोहि सुहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥

भवानी, तुम्हारी एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी है, यद्यपि यह बात तुमने अज्ञान ही के कारण कही है।

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि स्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

तुमने जो कहा कि वे राम क्या कोई दूसरे हैं, श्रुतियाँ जिनके गुण-गान करती हैं और मुनिगण जिनको ध्यान में देखते हैं।

दो०-कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोहपिचास।
पाखंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न सांच॥१२०॥

जो मनुष्य अधम हैं, जिनको मोहरूपी पिशाच ने ग्रस लिया है, जो पाखंडी हरिपद से विमुख हैं, जिन्हें सत्य असत्य का कुछ ज्ञान नहीं है, वेही ऐसी बातें कहते और सुनते हैं।

अज्ञ अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥

जो कुछ भी जानकारी नहीं रखते, जो शास्त्रज्ञ नहीं हैं, जो अभागे अन्धे अर्थात् जिन्हें विवेक नहीं है और जिनके मनरूपी दर्पण में विषयरूपी काई लगी हुई है।

लंपट कपटी कुटिल विसेषी। सपनेहु संत सभा नहिं देषी॥

जो व्यभिचारी, कपटी और कुटिल हैं, जिन्होंने स्वप्न में भी सज्जनों की सभा नहीं देखी है।

कहहिं ते वेदअसंमत बानी। जिन्हके सूझ लाभ नहिं हानी॥

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥

जिन्हें हानि लाभ का ज्ञान नहीं, वे ही ऐसी वेद विरुद्ध बात कहते हैं। उन विचारों का हृदयरूपी दर्पण मलिन है, उनकी आँखें नष्ट हो गयी हैं, फिर वे रामजी का रूप किस प्रकार देख सकते हैं।

जिनके अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥

जिन्हे सगुण और निर्गुण का ज्ञान नहीं है, वे ही कल्पित अनेक बातें कहा करते हैं।

हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥

जो भगवान् की माया के वश होकर संसार में भटक रहे हैं, वे चाहे जो कहें: कुछ असंभव नहीं।

बातुल भूतबिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना॥

जो बकवादी हैं, जिन पर भूत चढ़ा हुआ है, अथवा जो मतवाले हैं, वे विचार कर कोई बात नहीं कहते। जिन्होंने महामोहरूपी मद का पान किया है उनकी कही बातों को नहीं सुनना चाहिए, उनकी बातों पर विचार नहीं करना चाहिए।

सो०—अस निज हृदय बिचार, तजु संसय भजु रामपद।
सुनु गिरि राज कुमारि, भ्रमतम रबिकर बचन मम॥

इस प्रकार हृदय में विचार कर सन्देह का त्याग करो, रामजी के चरणों को भजो, हे पार्वती सुनो, भ्रमरूपी अन्धकार के लिए मेरे वचन सूर्य की किरणों के समान हैं।

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जनु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है, यह बात मुनि, पुराण, पण्डित

और वेद कहते हैं। जो ब्रह्म निर्गुण है, अरूप है, अलख है और तथा वेही ब्रह्म भक्त के प्रेमवश होकर सगुण हो जाते हैं। जो गुण रहित है, वह सगुण कैसे हो जाते हैं, इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार वर्फ और पत्थर अलग अलग नहीं हैं।

जासु नाम भ्रमतिमिरपतंगा। तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा॥

जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के लिए सूर्य है, तो क्या वही स्वयं भ्रम का विषय हो सकता है ? क्या उसीके विषय में लोगों का भ्रम होना सम्भव है ?

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोहनिसालवलेसा॥

सच्चिदानन्द-स्वरूप राम सूर्य के समान है,वहाँ मोहरूपी रात्रि का लेश भी नहीं है।

सहजप्रकाशरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञानबिहाना॥

भगवान् रामचन्द्रजी स्वभावतः प्रकाशस्वरूप हैं, अतएव वहाँ विज्ञान का प्रातःकाल भी नहीं होता, अर्थात् वहाँ ज्ञान की बाल्यावस्था कभी नहीं होती।

हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना। जीवधरम अहमिति अभिमाना॥

हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहंकार, अभिमान आदि जीव के धर्म हैं,

राम ब्रह्म व्यापक जगजाना। परमानन्द परेस पुराना॥

राम व्यापक ब्रह्म हैं, यह संसार में प्रसिद्ध है, वे परमानन्द स्वरूप पुराण पुरुषोत्तम हैं।

दो०-पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥१२१॥

वे पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे प्रकाश स्वरूप हैं, वे जड़ चेतन के स्वामी हैं, वे रघुकुलमणि रामजी मेरे स्वामी हैं, ऐसा कह कर शिवजी ने अपना मस्तक झुका दिया।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्रानी॥

अज्ञानी मनुष्य अपने अज्ञान के कारण यथार्थ बात नहीं जानते, भगवान् का ज्ञान उन्हें नहीं होता, पर वे जड़ मनुष्य इसका दोष भगवान पर लगाते हैं, अपने अज्ञान का दोष न बता कर भगवान का दोष बताते हैं।

जथा गगन घनपटल निहारी। ढाँपेउ भानु कहहिं कुविचारी॥

आकाश में मेघों की घटा देखकर मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि सूर्य छिप गये।

चितव जो लोचन अंगुलि लाए। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाये॥

इसी प्रकार जो अपनी आँखों में अंगुली लगा कर देखता है, उसे साफ साफ, दो चन्द्रमा दिखायी पड़ते हैं।

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

उमा, रामजी के विषय में भ्रम करना उसी प्रकार है, जिस प्रकार आकाश में अन्धकार, धूलि, धुआँ आदि का होना मानना है। आकाश तो शून्य वस्तु है, उसमें कालेपन के लिए तम आदि का सन्देह करना भ्रमात्मक है।

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

विषय, इन्द्रियां, देवता, जीव आदि सभी एक से एक बढ़कर चेतन हैं, पर इन सबका जो प्रकाशक है और जिससे इनकी चेतनता है, वेही अयोध्यापति राम हैं, जो अनादि हैं।

जगत प्रकास प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञानगुनधामू॥

जगत् प्रकाश्य है और राम उसके प्रकाशक हैं अर्थात् रामजी के द्वारा यह जगत् प्रकाशित होता है, वे माया के स्वामी हैं, ज्ञान और गुण के धाम हैं।

जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

जो माया जड़ है और जिसका सहायक मोह है, वह भी जिसकी सत्यता के कारण सत्य के समान भासित होती है।

दो०-रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥१२२॥

जिस प्रकार सीप में चांदी का भ्रम होता है और सूर्य की किरणों में जल का ज्ञान होता है, यह ज्ञान असत्य है। तीनों कालों में यह असत्य है, पर इस भ्रम को कोई हटा नहीं सकता।

एहिविधि जग हरिआस्रित रहई। यदपि असत्य देत दुष अहई॥

इसी प्रकार जगत् भी; यद्यपि वह असत्यस्वरूप तथा दुखदायी है, तथापि भगवान् के आश्रय से रहता है। अर्थात् इस जगत में भगवान् की छाया के भ्रम से यह सत्यस्वरूप तथा सुखदायी प्रतीत होता है।

जौं सपने सिर काटइ कोई। विन जागे न दूरि दुष होई॥

स्वप्न में जिस प्रकार किसी का सिर कोई काट ले, उसका यह दुख तब तक दूर नहीं होता जब तक नींद न टूटे। अर्थात् भ्रम के कारण जो दुःख हुआ है वह भ्रम मिटने पर ही दूर होता है।

जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥

जिसकी कृपा से इस प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं,हे गिरिजा, वे राम चन्द्र हैं और कृपालु हैं।

आदि अंत कोइ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥

जिसके आदि अन्त का पता किसीको नहीं लगा, वेदों ने भी जिसके गुणों का अनुमान करके ही वर्णन किया है।

विनु पद चलइ सुनइ विनु काना। कर विनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। विनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन विनु परस नयन विनु देषा। गहइ घ्रान विनु बास असेषा॥
असि सबभाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

वे बिना पैर के चलते हैं, बिना कान के सुनते हैं, हाथ के बिना अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, उनके मुख नहीं है; पर सब प्रकार के रसों का वे भोग करते हैं, वाणी नहीं है पर वे वक्ता हैं और बड़े योगी हैं। बिना तन अर्थात त्वचा के छूते हैं. आँखों के बिना देखते हैं, नाक नहीं है; पर सब प्रकार की गन्ध सूंघते हैं। इस प्रकार के जिनके अलौकिक कार्य हैं, उनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०–जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ॥१२३॥

वेद और पंडित जिसका वर्णन इस प्रकार करते हैं और मुनि ध्यान करते हैं, वे ही भक्तों के कल्याण के लिए दशरथ के पुत्र हुए हैं, वेही अयोध्या पति भगवान् रामचन्द्र हैं।

काशी मरत जंतु अवलोकी। जासु नामबल करउँ विसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

काशी में जिस जीवको मैं मरते देखता हूँ और जिसके नाम से उसे विशोक अर्थात् मुक्त कर देता हूँ वे ही रघुवर अन्तर्यामी और चराचर के स्वामी मेरे प्रभु हैं।

बिवसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक संचित अघ दहहीं॥

जो मनुष्य विवश होकर भी जिसका नाम ले लेता है, उसके अनेक जन्मों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं।

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भववारिधि गोपद इव तरहीं।

जो आदरपूर्वक राम नाम का स्मरण करते हैं, वे गोपद के समान संसारसमुद्र को पारकर जाते हैं। गौके खुर से जो खड्डा हो जाता है उसे गोपद कहते हैं।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी॥

भवानी, राम वे ही परमात्मा हैं, उनके विषय में जो तुमने भ्रमात्मक वाणी कही है वह अनुचित है।

अस संसय आनत उर माहीं। ज्ञान विराग सकल गुन जाहीं

रामजी के विषय में यदि किसी प्रकार का सन्देह मन में उत्पन्न हो जाय तो वह ज्ञान, वैराग्य आदि सभी गुणों को नष्ट कर देता है।

सुनि शिव के भ्रमभंजन बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना॥

भ्रम को नष्ट करनेवाले शिवजी के वचन सुनकर कुतर्क की रचना मिट गयी। ज्ञान हो जाने से सब कुतर्क भ्रम आदि जाते रहे।

भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

रामजी के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास उत्पन्न हुआ, कठोर अविश्वास दूर हुआ।

दो०—पुनि पुनि प्रभुपद कमल गहि, जोरि पंकरुह पानि।
बोली गिरिजा बचनबर, मनहुं प्रेमरस सानि॥ १२४॥

बारबार शिवजी के चरण कमलों का स्पर्श कर के अपने कर कमलों को जोड़ कर पार्वती बोली, उनके वचन मानो प्रेम रस में सने हुए थे।

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥

आपकी चन्द्रकिरणों के समान शीतल वाणी से शरदऋतु के ताप के समान मेरा भारी भ्रम दूर हो गया।

तुम्ह कृपालु सब संसय हरेऊ। राम सरूप जानि मोहि परेऊ॥

आप कृपाल ने मेरे सब सन्देह दूर कर दिये, अब मुझे रामजी के स्वरूप का ज्ञान हुआ।

नाथकृपा अब गयउ बिषादा। सुषी भयउँ प्रभुचरनप्रसादा॥

नाथ की कृपा से अर्थात आपकी कृपा से मेरा शोक दूर हो गया, आपके चरणों के प्रसाद से मैं सुखी हो गयी।

अब मोहिं आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जो मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू॥

यद्यपि स्त्रियाँ स्वभावतः मूर्ख और अपवित्र होती हैं तथापि हे नाथ, आप मुझे अपनी दासी समझकर और जो आप मुझ पर प्रसन्न हो तो जो मैंने पहले पूछा है वह कहिए।

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्वरहित सब उरपुरबासी॥
नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू॥

जो राम व्यापक ब्रह्म हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, अविनाशी हैं, जो सर्वरहित है, अर्थात् उनमें कोई नहीं पर वे सब में हैं, सबके हृदयरूपी पुर में वास करनेवाले हैं। हे नाथ, वे किस कारण मनुष्य शरीर धारण करते हैं, यह आप मुझे समझा कर कहें।

उमा वचन सुनि परम विनीता। राम कथा पर प्रीति पुनीता॥

शिवजी ने पार्वती के परम विनीत वचन सुने और रामकथा पर उनका परम पवित्र प्रेम देखा।

दो०-हिय हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहुविधि उमहिं प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान॥ १२५॥

स्वाभाविक ज्ञानी कामारि शिवजी तब मन ही मन प्रसन्न हुए और पार्वती की बहुत प्रशंसा कर के कृपानिधान शिव बोले।

सो०-सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरितमानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना विहंगनायक गरुड़॥

भवानि, वह शुभ कथा सुनो, विमल रामचरितमानस की कथा भुसुण्डी ने वर्णन कर के कही थी और पक्षिराज गरुड़ ने सुनी थी।

सो संबाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब॥
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ॥

वह उदार संवाद कैसे हुआ सो मैं आगे चलकर कहूँगा, अभी राम-

चन्द्रजी के अवतार की कथा सुनो, वह बड़ा ही सुन्दर चरित है और निष्पाप है।

हरि गुन नाम अपार, कथारूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुहार, कहउँ उमा सादर सुनहु॥

भगवान के गुण और नाम अपार हैं, उनकी कथा भी अगणित और अपरिमित है, तथापि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, उमा, तुम बुद्धि-पूर्वक सुनो।

(अवतार का कारण)

सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाये। बिपुल बिसद निगमागम गाये॥

गिरिजा, भगवान का चरित्र सुनो वह बड़ा और उज्ज्वल है, उसका वर्णन निगम और आगम ने किया है।

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

हरि का अवतार किस लिए हुआ इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इदमित्थं संस्कृत का एक वाक्य खण्ड है, निश्चय के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥

रामजी मन बुद्धि और वाणी के द्वारा नहीं जाने जा सकते, मेरा ऐसा मत है, चतुर पार्वती सुनो।

तदपि संत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही। समुझि परइ जस कारन मोही॥

तथापि सज्जन, मुनि, वेद, पुराण आदि अपनी अपनी बुद्धि के द्वारा अनुमान कर के जैसा कहते हैं और मेरी समझ में जो कारण आया है, वह मैं तुम को सुनाता हूँ।

जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीत जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥

जब धर्म की हानि होती है, लोगों में धर्मश्रद्धा उठ जाती है, राक्षस; नीच और अभिमानियों की वृद्धि हो जाती है। वे बड़ा अनर्थ करते हैं जिसका वर्णन करना कठिन है, उस समय ब्राह्मण, गौ, देवता और भूमि को कष्ट होता है।

तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

तब तब प्रभु अनेक शरीर धारण कर के कृपानिधि भगवान् सज्जनों की पीड़ा दूर करते हैं।

दो०-असुर मार थापहिं सुरन, राषहिं निज स्रुतिसेतु।
जग विस्तारहिं विषद जस, राम जनम कर हेतु॥१२६॥

राक्षसों को मार कर वे देवताओं को बसाते हैं, अपनी वैदिक मर्यादा की रक्षा करते हैं, संसार में उज्ज्वल यश विस्तारित करते हैं। यही रामजी के जन्म का कारण है, यही निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने का हेतु है।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥
रामजनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका॥

उसी यश को जानकर भक्तलोग संसार से उद्धार पाते हैं, अपने भक्तों के हित के लिए कृपासिन्धु अवतार धारण करते हैं। रामजन्म के अनेक कारण हैं, वे एक से एक बढ़कर विचित्र हैं।

जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

उनके जन्म के एक दो कारण मैं कहता हूँ भवानी, तुम सावधान होकर सुनो।

(रावण का जन्म और उसका पूर्व वृत्तान्त)

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ॥
विप्रस्राप ते दूनउँ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥

विष्णु के दो द्वारपाल थे, वे उनके प्रिय थे, जय और विजय उनके

नाम थे, यह सब कोई जानता है। उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण के शाप से तमोगुण प्रधान राक्षस योनि में जन्म लिया।

कनककसिप अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपतिपदमोचन॥
विजयी समर वीरविख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥

एक का नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरे का नाम हिरण्याक्ष था, ये संसार में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने इन्द्र के अहंकार को चूर्ण किया था। (कनक और हाटक सुवर्ण को कहते हैं। हिरण्य भी सुवर्ण की ही संज्ञा है, छन्द के अनुरोध से नाम का पर्यायवाची शब्दों में उल्लेख किया गया है पर वह ठीक नहीं है)। ये समरविजयी और प्रसिद्ध वीर थे इनमें एक को अर्थात् हिरण्याक्ष को शूकर का रूप धरकर भगवान ने मारा।

होइ नरहरि दूसरी पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा॥

नृसिंह रूप धरकर भगवान ने दूसरे को अर्थात् हिरण्यकशिपु को मारा और अपने भक्त प्रह्लाद का यश फैलाया।

दो०-भये निसाचर जाय तेइ, महावीर बलवान।
कुंभकरण रावन सुभट, सुर विजई जग जान॥ १२७॥

पुनः वे निशाचर योनियों में उत्पन्न हुए, वे बड़े वीर और बलवान हुए, एक का नाम कुम्भकर्ण और दूसरे का नाम रावण हुआ, ये दोनों योद्धा और देवताओं के जीतनेवाले हुए, ये जगत में प्रसिद्ध हैं।

मुकुत न भये हते भगवाना। तीनि जनम द्विज वचन प्रमाना॥

भगवान के हाथों मारे जाने पर भी इनकी मुक्ति नहीं हुई, इसका कारण यह है कि भगवान ने ब्राह्मण के वचन की रक्षा की, ब्राह्मण ने तीन जन्मों तक भगवान के हाथों मारे जाने पर मुक्त होने का शाप दिया था।

एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दशरथ कौसल्या विख्याता॥

भक्तों पर प्रेम रखनेवाले भगवान ने उनके कल्याण के लिए एक बार

पुनः शरीर धारण किया। इस जन्म में कश्यप और अदिति इनके पिता माता थे, जो दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध हैं?

एक कलप एहि विधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥

इस प्रकार एक कल्प में अवतार धारण करके भगवान ने संसार में अनेक पवित्र चरित्र दिखाये।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥

एक कल्प में जालन्धर नामक दैत्य से सब देवता युद्ध में हार गये. इससे देवताओं को दुःखी देखकर शिव ने बड़ा भयानक युद्ध किया, पर वह दैत्य मारे जाने पर भी नहीं मरा।

परम सती असुराधिप नारी। तेहिबलताहि न जितहिं पुरारी॥

क्योंकि उसकी स्त्री परम सती थी, उसीके सतीत्व के प्रताप से शिवजी भी उसे जीत न सके।

दो०—छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुरकारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब, स्राप कोप करि दीन्ह॥ १२८॥

देवताओं के कल्याण के लिए प्रभु ने उस स्त्री का सतीत्व नाश किया, इस बात का ज्ञान जब उस स्त्री को हुआ तो उसने क्रोध करके प्रभु को शाप दिया।

तासु स्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥

प्रभु ने उसका शाप मान लिया, क्योंकि वे तो कौतुकनिधि और कृपालु हैं।

तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रनहति राम परमपद दयऊ॥

वही जालन्धर रावण हुआ और भगवान ने उसे युद्ध में मारकर परम-पद दिया।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥

प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कविन्ह घनेरी॥

एक जन्म का यही कारण है जिसके लिए भगवान रामचन्द्रजी ने मनुष्य शरीर धारण किया है। इसी प्रकार भगवान के प्रत्येक अवतार की अनेक कथा है, मुनियों से सुनकर कवियों ने जिनका वर्णन किया है।

(नारद शाप)

नारद स्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद विष्णुभगत मुनि ज्ञानी॥

एक बार नारद ने भगवान को शाप दिया था। जिस कारण एक कल्प में उन्हें अवतार धारण करना पड़ा। इस बात को सुनकर पार्वती जी बहुत चकित हुई, क्योंकि नारद तो विष्णु के भक्त हैं, मुनि हैं और ज्ञानी हैं, फिर वे भगवान् को शाप कैसे देंगे?

कारन कवन साप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥

पार्वती ने पूछा, किस कारण मुनि ने शाप दिया, भगवान् ने क्या अपराध किया था?

यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनिमनमोह आचरज भारी॥

यह कथा मुझे सुनाइये, नारद के समान मुनि के मन में मोह हुआ यह बड़े आश्चर्य की बात है।

दो०-बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥१२६॥

पार्वती की बात सुनकर शिवजी हंसकर बोले, न तो कोई ज्ञानी है, और न मूढ ही कोई है, रामचन्द्र जी जिसको जब जैसा करते हैं, वह वैसा ही उसी क्षण हो जाता है।

सो०-कहउँ राम गुनगाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद॥

याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं, राम की गुणकथा मैं कहता हूँ,

भरद्वाज, आदर पूर्वक सुनो। वे रघुनाथ संसार के कष्टों को नष्ट करनेवाले हैं, तुलसी कहते हैं कि मानमद का त्यागकर उनका भजन करो।

हिमगिरि गुहा एक अतिपावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आस्रम परम पुनीत सुहावा। देषि देवरिषि मन अति भावा॥

हिमालय की एक पवित्र गुफा है, जिसके पास, देवनदी गङ्गा बहती हैं। वह सुन्दर और पवित्र आश्रम देवर्षि नारद को बहुत पसन्द आया।

निरषि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥

पर्वत नदी तथा सुन्दर वन प्रदेश को देखकर रामचन्द्रजी के चरणों में नारद का अनुराग उत्पन्न हुआ।

सुमिरत हरिहि स्वास गति बांधी। सहज बिमल मन लागिसमाधी॥

हरि का स्मरण करते ही नारद के श्वास प्रश्वास की गति रुक गयी और उनका स्वाभाविक निर्मल मन समाधिमग्न हो गया।

मुनिगति देषि सुरेस डेराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना॥

मुनि की यह गति देखकर अर्थात् वे समाधिमग्न हुए, यह देखकर इन्द्र डर गये और उन्होंने कामदेव को बुलाया तथा उसका सम्मान किया।

सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू॥

इन्द्र ने कामदेव से कहा, अपने साथियों के साथ मेरे लिए तुम जाओ। कामदेव भी मन में प्रसन्न होकर चला।

सुनासीर मन महँ अतित्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥

सुनासीर—इन्द्र के मन में बड़ा भय हो गया, क्या देवर्षि मेरे पुर में वास चाहते हैं और उसीके लिए तपस्या करते हैं?

जे कामी लोलुप जगमाहीं। कुटिल काक इन सबहि डेराहीं॥

कामी, लोभी, कुटिल आदि जो संसार में हैं, वे ही डरते हैं जिस प्रकार कौआ डरता है।

दो०-सूष हाड लेइ भाग सठ, स्वान निरषि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१३०॥

मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भाग जाता है, कुत्ता समझता है कि कहीं यह सिंह मेरी इस सूखी हड्डी को छीन न ले। यही दशा इन्द्र की भी है, उसे भी लज्जा नहीं है। सिंह को भला सूखी हड्डी की क्या जरूरत? भगवद्भक्तों के लिए इन्द्र पद का क्या मूल्य?

तेहि आस्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया वसंत निरमयऊ॥
कुसुमित विविध विटप बहुरंगा। कूजहिँ कोकिल गुंजहिँ भृंगा॥

नारद के उस आश्रम में जब कामदेव गया, तब उसने अपनी माया के द्वारा वसन्त ऋतु बनायी। अनेक प्रकार के वृक्षों में रंगबिरंग फूल लग गये, कोकिल कूकने लगी और भौंरे गूंजने लगे।

चली सुहावनि विविध वयारी। काम कृसानु बढ़ावनि हारी॥

शीतल मन्द सुगन्ध तीन प्रकार की हवा चलने लगी, जो कामाग्नि को धधकानेवाली थी।

रंभादिक सुरनारि नवीना। सकल असमसरकलाप्रवीना॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहुविधि क्रीड़हिं पानिपतंगा॥

कामदेव की सब कला में प्रवीण युवती रम्भा आदि देवाङ्गनाएँ अनेक तरह के गान करने लगीं, तान आदि अलापने लगीं, तथा हाथ के पक्षियों से अर्थात् पालतू पक्षियों से अनेक प्रकार की क्रीडा करने लगी।

देषि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधिनाना॥

अपने सहायकों को देखकर कामदेव प्रसन्न हुआ, उसने पुनः अपने सेवकों को विविध भांति के उपदेश दिये।

कामकला कछु मुनिहि न व्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥

इस कामकला का असर मुनिपर कुछ भी नहीं हुआ, तब पापी कामदेव आपही आप डरने लगा।

सीम कि चापि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

क्या कोई उसकी सीमा पर भी आक्रमण कर सकता है, जिसके रक्षक स्वयं रमापति हैं।

दो०–सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥१३१॥

कामदेव अपने साथियों के साथ बहुत डरा और मन ही मन उसने अपनी हार मान ली, तब उसने जाकर मुनि के चरण पकड़े और अति दुःखित होकर वचन कहे। मैन का अर्थ है मदन अर्थात् कामदेव।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा॥

नारदजी के मन में किसी प्रकार का क्रोध नहीं था, उन्होंने प्रिय वचनों से कामदेव को प्रसन्न किया।

नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी॥

प्रणाम करके तथा आज्ञा पाकर कामदेव अपने साथियों के साथ चला गया। देवराज इन्द्र की सभा में जाकर कामदेव ने मुनि की सुशीलता तथा अपने कार्य आदि का वर्णन किया।

सुनि सबके मन अचरज आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरुनावा॥

कामदेव की बात सुनकर सब को आश्चर्य हुआ, उन लोगों ने मुनि की प्रशंसा कर के भगवान् को प्रणाम किया।

तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मनमाहीं॥

तब नारद शिवजी के पास गये, उस समय उनके मन में यह अहंकार था कि मैंने कामदेव को जीत लिया है।

मार चरित संकरहि सुनाये। अति प्रिय जानि महेश सिषाये॥

नारद ने कामदेव का सब चरित शिवजी को सुनाया। नारद को अपना प्रिय जानकर शिवजी ने उन्हें सिखाया।

बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोहीं॥
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ। चलेहु प्रसंग दुरायहु तबहूँ॥

बार बार मैं तुम्हारी विनती करता हूँ, जिस प्रकार तुमने यह कथा मुझे सुनायी है, उसी प्रकार भगवान् को भी कहीं न सुना देना, कभी बात-चीत में इसका प्रसंग आ भी जाय तो उसे छिपा लेना।

दो०-संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहि सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान॥१३२॥

शिवजी ने हित का उपदेश दिया, पर नारद को वह अच्छा न लगा। याज्ञवल्क्य ने कहा, भरद्वाज, आगे कौतुक सुनिए, देखिए भगवान् की इच्छा कैसी बलवान है।

राम कीन्ह चाहहिं सो होई। करइ अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाये। तब बिरंचि के लोक सिधाये॥
एक बार करतल बर बीना। गावत हरिगुन गानप्रबीना॥

रामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं,वही होता है, ऐसा कोई नहीं है; जो रामजी की इच्छा के विपरीत कर सके। इसी भगवत् इच्छा के कारण शिवजी के वचन नारद को अच्छे नहीं लगे। वहाँ से नारदजी ब्रह्मलोक गये। नारद जी गान विद्या में बड़े प्रवीण हैं, वे हाथ में वीणा लिए हुए थे और हरि यश गा रहे थे।

छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिनाथा॥

मुनिनाथ नारद क्षीरसमुद्र पर गये, जहाँ वेदों के स्वामी भगवान् श्री निवास वास करते हैं।

हरषि मिलेउ उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥

लक्ष्मीपति प्रसन्न होकर और उठकर नारदजी से मिले और ऋषि के साथ ही आसन पर बैठ गये, अर्थात् ऋषि को उन्होंने अपने आसन पर बैठाया।

बोले बिहँसि चराचरराया। बहुते दिनन्ह कीनि मुनि दाया॥

चराचर के स्वामी भगवान् विष्णु बोले, बहुत दिनों के बाद आपने दया की मुनिजी।

कामचरित नारद सब भाषे। यद्यपि प्रथम बरजि शिव राषे॥

यद्यपि शिवजी ने कहने के लिए रोक दिया था, तथापि नारदजी ने काम के सब चरित विष्णु के सुनाये।

अति प्रचंड रघुपति के माया। जेहि न मोहि अस को जग जाया॥

रघुपति की माया बड़ी बलवती है, संसार में ऐसा कौन है जिसे वह मोह न ले।

दो०—रूष वदन करि वचनमृदु, बोले श्री भगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहीं, मोह मारमद मान॥१३३॥

मुनि की बात सुनकर श्री भगवान् ने रूखा मुँह कर के कोमल वचन कहे, उन्होंने कहा तुम्हारे स्मरण करने से ही कामदेव का मान और मद दूर हो जाता है।

सुनि मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहिं जाके॥
ब्रह्मचरज ब्रतरत मतिधीरा। तुम्हहिं कि करइ मनोभव पीरा॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥

मुनि, सुनिए, जिसके हृदय में ज्ञान, वैराग्य नहीं रहता, उसीके मन में मोह उत्पन्न होता है, आप तो ब्रह्मचारी हैं, बुद्धिमान् है भला, कामदेव आप को क्या कष्ट दे सकता है? नारद ने अभिमान के साथ कहा, भगवन्, यह सब आपकी कृपा है।

करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गर्वतरुभारी॥

दयानिधि भगवान ने मन ही मन विचार कर जाना कि नारद के हृदय में बहुत बड़ा अहंकारवृक्ष का अंकुर उत्पन्न हो रहा है।

बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी। पन हमार सेवक हितकारी॥

मेरी प्रतिज्ञा अपने सेवकों के कल्याण करने की है, अतएव मैं शीघ्र ही इस अहंकार वृक्ष के अङ्कुर को उखाड डालूंगा।

मुनिकर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥

मैं अवश्य ऐसा उपाय करूंगा जिससे मुनि का तो हित हो और मेरे लिए एक तमाशा हो।

तब नारद हरिपद सिरु नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥

तब नारद विष्णु के चरणों में प्रणाम करके चले, उनके हृदय में बड़ा अहंकार था।

श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

श्रीपति विष्णु ने तब अपनी माया को प्रेरित किया, जिसने कठिन कार्य किया, सो सुनो।

दो०-बिरचेउ मगु महुँ नगर तेहि, सतजोजन बिस्तार।
श्रीनिवास पुरतेँ अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥ १३४॥

हरि की माया ने मार्ग में एक नगर बसाया, जिसका विस्तार सौ योजन अर्थात् चारसौ कोस था। श्रीनिवासपुर अर्थात् वैकुंठ से भी उसकी रचना अच्छी थी, वह अनेक प्रकार से सजाया गया था।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिजरतितनुधारी॥
तेहि पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय गज सेनसमाजा॥
सत सुरेस समबिभव बिलासा। रूपतेज बल नीति निवासा॥

उस नगर में सुन्दर स्त्री पुरुष रहते थे, मानो वे सब शरीरधारी कामदेव और रति हों। उस नगर में शीलनिधि नाम के राजा रहते थे जिनके अनेक घोड़े हाथी और सेना थी। हजारों इन्द्रों के समान उनका वैभव था, विलास था, वे रूपवान् और नीतिपरायण थे।

बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्रीबिमोह जेहि रूप निहारी॥

उनकी एक कन्या थी, जो संसार को मोहित करनेवाली थी, लक्ष्मी भी उसके रूप को देखकर मोहित हो जाती थी।

सोइ हरि माया सब गुनषानी। सोभा तासु कि जाइ बषानी॥

वह कन्या भगवान् की माया थी सब गुणों की खान थी, उसकी शोभा का वर्णन क्या किया जा सकता है?

करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आये तहँ अगनित महिपाला॥

उस राज कुमारी का स्वयंवर हो रहा था, वहाँ अनेक राजा आये हुए थे।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरवासिन्ह सब पूछत भयऊ॥

कौतुकी नारद मुनि भी उस नगर में गये और नगर वासियों से वहाँ की व्यवस्था पूछने लगे।

सुनि सब चरित भूप गृह आये। करि पूजा नृप मुनि बैठाये॥

पुरवासियों से सब बातें सुनकर मुनि राजा के घर आये, राजा ने पूजा कर के मुनि को बैठाया।

दो०–आनि देषाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदय विचारि॥ १३५॥

राजा ने कन्या को बुलाकर नारद को दिखाया और उन्होंने पूछा, नाथ इस कन्या के गुण दोष विचार कर कहिए।

देषि रूप मुनि विरति विसारी। बड़ी बारिलगि रहे निहारी॥

कन्या को देखते ही मुनि अपना वैराग्य भूल गये, बड़ी देर तक वे कन्या को देखते ही रहे।

लच्छन तासु विलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रगट बषाने॥

उस कन्या के लक्षणों को देखकर मुनि भूल गये, आपे में न रहे, मन में प्रसन्न हुए, पर उसे उन्होंने प्रकाशित नहीं किया।

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

जो इस कन्या को वरेगा, अर्थात् जो इसको व्याहेगा वह अमर होगा और रण में उसको कोई जीत न सकेगा। स्थावर, जंगम समस्त संसार उसकी सेवा करेगा, जिसको राजा शीलनिधि की कन्या वरेगी।

लच्छन सब विचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूपसन भाषे॥

नारद ने उस कन्या के सब लक्षण सोच विचार कर मन में ही रखा और कुछ बनाकर राजा से कह दिया।

सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥

आप की कन्या सुलक्षण है इस प्रकार राजा से कहकर नारद वहाँ से चले, उनके मन में चिन्ता थी।

करउँ जाइ सोइ जतन विचारी। जेहि प्रकार मोहि वरइ कुमारी॥

वे सोचते थे, मैं सोच विचार कर वही उपाय जाकर करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे, मुझ से ही व्याह करे।

जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

नारदजी उस समय जप तप आदि कुछ भी नहीं करते थे, किस प्रकार वह कन्या मिलेगी इसी बात की उन्हें सदा चिन्ता रहती थी।

दो०-एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप विसाल।
जो विलोकि रीझइ कुअँरि, तब मेलइ जयमाल॥ १३६॥

नारदजी ने सोचा इस समय मुझे सौन्दर्य चाहिए, रूप चाहिए, जिसे देख कन्या मुझ पर प्रसन्न हो जाय और मेरे गले में जयमाल डाल दे अर्थात् मुझे वर ले।

हरिसन माँगउँ सुंदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥

भगवान से जाकर मैं सौन्दर्य मांग लाऊं, पर वहाँ जाना कठिन है, वहाँ आने जाने में विलम्ब होगा।

मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

भगवान के समान मेरा हितकारक दूसरा नहीं है, इस समय वे ही मेरे सहायक होंगे।

बहुविधि विनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥

नारद ने उस समय अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति की, कौतुकी और कृपालु भगवान् वहाँ प्रकट हुए।

प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिये हरषाने॥

प्रभु को देखने से नारद की आंखें जुड़ा गयीं, काम होगा इससे वे मन में प्रसन्न हुए।

अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥

बहुत दुःख करके नारद ने सब कथा सुनायी और कहा कि कृपा कर आप मेरी सहायता करें।

आपन रूप देहु प्रभु मोहीं। आन भाँति नहिं पावउँ ओही॥

प्रभु, आप अपना स्वरूप मुझे दीजिए, किसी दूसरे उपाय से मैं उसे न पा सकूंगा।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो वेगि दास मैं तोरा॥

नाथ, जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, वह आप शीघ्र करें मैं आप का दास हूँ।

निजमायाबल देषि विसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला॥

अपनी माया का विशाल बल देखकर दीनदयाल हरि अपने मन में हंसे और पुनः बोले।

दो०-जेहि विधि होइहि परमहित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आनि कछु, वचन न मृषा हमार॥१३७॥

नारद, जिस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा मैं वही करूंगा, दूसरा कुछ न करूंगा, यह मेरी बात झूठी नहीं है।

कुपथ मांगु रुजव्याकुल रोगी। वैद्य न देइ सुनहु मुनिजोगी॥

भगवान् कहते हैं, हे मुनियों में योगी नारद, रोग से व्याकुल रोगी कुपथ मांगता है पर वैद्य उसे कुपथ नहीं देता।

इहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहिअस अंतरहित प्रभु भयऊ॥

इसी प्रकार मैंने तुम्हारा कल्याण निश्चित किया है, ऐसा कह कर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

माया विवश भये मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥

नारद मुनि माया के वश होकर मूर्ख हो गये थे, वे अपनी सुध बुध खो चुके थे, अतएव हरि की गूढ़ बात का वे अभिप्राय न समझ सकें।

गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहितसमाजा॥
मुनिमन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥
मुनिहित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बषाना॥

जहाँ स्वयंवर की भूमि बनी थी, ऋषिराज शीघ्र ही वहाँ गये, बहुत सजधज के साथ और अपने अपने समाज के साथ राजा लोग वहां अपने अपने आसन पर बैठे थे। मुनि अपने मन में बड़े प्रसन्न थे, वे समझते थे मैं ही सुन्दर हूं, मुझ को छोड़ कर वह भूल कर भी दूसरे को नहीं वरेगी। पर मुनि के कल्याण के लिए कृपानिधि ने उन्हें एक दम कुरूप बना दिया था, जिसके विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

सो चरित्र लषि काहु न पावा। नारद जानि सबहिं सिरनावा॥

पर यह भेद किसी ने नहीं समझा, सभी ने उन्हें नारद समझा और प्रणाम किया।

दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्रगन, ते जानहिं सब भेउ।
विप्रवेष देषत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥ १३८॥

वहाँ रुद्र के दो गण थे, वे यह सब भेद जानते थे, ब्राह्मण वेषधर कर के इधर उधर देखते फिरते थे क्योंकि वे भी बड़े ही कौतुकी थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेसगन दोऊ। विप्रवेष गति लषइ न कोऊ॥
करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीक दीन्हि हरि सुंदरताई॥

जिस समाज में अपने को अधिक सुन्दर समझनेवाले नारद बैठते थे, वहीं शिवजी के वे दोनों ब्राह्मण वेषधारी गण भी जाकर बैठ जाते थे। पर उनकी चाल कोई लख नहीं पाता था। वे नारद को सुनाकर दिल्लगी से कहते थे कि भगवान ने अच्छी सुन्दरता दी है।

रीझहिं राजकुअँरि छवि देषी। इनहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥

राजकुमारी यह सूरत देखकर अवश्य प्रसन्न होंगी और विष्णु जान कर इन्हीको वरेंगी।

मुनिहि मोहु मन हाथ पराये। हँसहिँ संभुगन अति सचुपाये॥

मुनि को मोह हो गया था, उनका मन पराये हाथ था, शिवजी के गण भी वहीं भीतर ही भीतर हँसते थे।

जदपिसुनहिँमुनिअटपटबानी। समुझि न परउ बुद्धिभ्रमसानी॥

यद्यपि मुनि शिवजी के गणों की बेढंगी बातें सुनते थे; पर उनकी समझ में कोई बात नहीं आती थी, क्योंकि उन्हें बुद्धिभ्रम हो गया था, उनकी बुद्धि मारी गयी थी।

काहु न लषा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृप कन्या देषा॥

उस अद्भुत लीला को किसीने नहीं देखा, पर राजकुमारी ने वह स्वरूप देखा।

मर्कटवदन भयंकर देही। देषत हृदय क्रोध भा तेही॥

मुंह वानर का है, शरीर भयानक है, उनको देखते ही राजकन्या को क्रोध हुआ।

दो०—सषी संग लेइ कुअँरि तब, चलि जनु राजमराल।
देषत फिरइ महीप सब, करसरोज जयमाल॥ १३९॥

राजकुमारी तब सखी को साथ लेकर चली, मानो राजहंसी जा रही हो, उसके करकमलों में जयमाला थी, वह घूम कर सब राजाओं को देखने लगी।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेह न विलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिँ अकुलाहीं। देषि दसा हरगनमुसुकाहीं॥

नारद जिस ओर फूल कर बैठे थे, उस ओर राजकुमारी भूल कर भी नहीं देखती थी, मुनि बार बार व्याकुल होकर उचक उचक कर देखते थे और उनकी यह दशा देखकर शिवजी के गण हंसते थे।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥

राजा का वेषधर कर कृपाल हरि वहाँ गये और प्रसन्नतापूर्वक राजकुमारी ने उनके गले में जयमाल डाल दी।

दुलहिन लेइ गे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

हरि दुलहिन ले गये इससे राजाओं के दल में निराशा छा गयी।

मुनि अति विकल मोहमतिनाँठो। मनिगिरि गई छूटि जनुगाँठी॥

मुनि बहुत व्याकुल हुए, क्योंकि मोह के कारण उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, जिस प्रकार गांठ से छूट कर किसी की मणि गिर गयी हो।

तव हरगन बोले मुसुकाई। निज मुष मुकुर बिलोकहु जाई॥

तब शिवजी के गण हंस कर बोले, शीशे में अपना मुंह जाकर तो देखो।

असकहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीष मुनि बारि निहारी॥

ऐसा कह कर वे दोनों तो भय के मारे भाग गये। मुनि ने भी जल में जाकर अपना मुंह देखा।

वेष विलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

अपना रूप देखकर उनको बड़ा क्रोध आया, शिवजी के दोनों गणों को उन्होंने बड़ा कठोर शाप दिया।

दो०–होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ ॥
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥ १४० ॥

तुम दोनों कपटी और पापी हो, तुम दोनों राक्षस हो जाओगे, तुम लोगों ने हमें हंसा है, हमारा अपमान किया है उसका फल लो, फिर किसी मुनि को हंसना।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा॥

नारदजी ने पुनः जल में अपना रूप देखा और अपना पूर्वरूप उन्हें दीख पड़ा, तथापि उनके हृदय में सन्तोष न हुआ।

फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देइहउँ साप की मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥

उनके ओठ फरकने लगे, मन में क्रोध हुआ, वे वहाँ से तत्काल ही विष्णु के पास गये। नारदजी यह सोचते जाते थे कि या तो मैं जाकर भगवान को शाप दूंगा, या स्वयं प्राण त्याग करूंगा, क्योंकि उन्होंने संसार में मेरा उपहास कराया है।

बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥

रास्ते में ही विष्णु से नारद की भेट हुई, उनके साथ लक्ष्मी तथा वही राज कन्या थी, जिससे नारद जी व्याह करना चाहते थे।

बोले बचन मधुर सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल कीं नाईं॥

देवताओं के स्वामी भगवान् मधुर वचन बोले, मुनि जी, व्याकुल पुरुष के समान आप कहाँ जाते हैं?

सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। मायाबस न रहा मनबोधा॥

भगवान् के बचन सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया, नारद माया के अधीन थे इसलिए उन्हें किसी बात का ज्ञान न था।

परसंपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेषी॥

नारद ने कहा, तुम दूसरे की सम्पति देख नहीं सकते. तुम बड़े कपटी हो, तुम्हारे मन में ईर्षा है।

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि विषपान करायहु॥

जब समुद्र मन्थन हुआ तब तुमने देवताओं के द्वारा शिवजी को विष पिला दिया और उन्हें पागल बना दिया।

दो०-असुर सुरा विष संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहार॥१४१॥

राक्षसों को मद्य, शिवको विष दिया तथा स्वयं लक्ष्मी और उत्तम कौस्तुभ मणि आपने अपने लिया। तुम कुटिल हो, सदा अपना स्वार्थसाधन किया करते हो, तुम सदा कपट का व्यवहार करते हो।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिं करहु तुम सोई॥

तुम परम स्वतन्त्र हो, तुम्हारे सिर पर कोई नहीं है, किसी का डर भय नहीं है, इससे जो मन में आता है वहीं करते हो।

भलेहि मंद मंदेहि भल करहू। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू॥

भले को बुरा और बुरे को भला बनाते हो, पर इससे न तो तुम्हारे हृदय में कुछ दुःख ही होता है और न सुख।

डहँकि डहँकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥

दुःख दे देकर तुम ने सब को परचाया है, सब को अपना परिचय कराया है, तुम स्वयं सदा अशंक हो और तुम्हारे मन में सदा उत्साह बना रहता है।

करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अबलगि तुम्हहिं न काहू साधा॥

अच्छे और बुरे कर्मों की बाधा भी तुम्हे नहीं होती, अब तक किसीने भी तुम को नहीं साधा है तथा तुम्हे उचित उत्तर दिया है।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥

पर अब आपने अच्छी जगह निमन्त्रण दिया, अब आप अपनी करनी का फल पावेंगे।

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु साप मम एहा॥

जो शरीर धरकर आपने मुझे ठगा है, वही शरीर आप धारण करें यही मेरा शाप है।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारिविरह तुम्ह होव दुखारी॥

आपने हमारा बानर का आकार बना दिया था, तो वे ही बानर तुम्हारी सहायता करेंगे, तुम्हारे गाढ़े के समय काम आवेंगे। तुमने हमारा बड़ा भारी अपकार किया है, तुमको भी स्त्री का विरह हो और उससे तुम दुःख उठाओ।

दो०–साप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपा निधि लीन्हि॥ १४२॥

प्रभु ने नारद के शाप को माथे चढ़ा लिया, वे प्रसन्न हुए और नारद की उन्होंने बहुत प्रशंसा की। अपनी माया भी कृपानिधि भगवान ने हटा ली।

जब हरिमाया दूर निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥

जब भगवान् ने अपनी माया हटा ली, तब नारद ने देखा कि वहाँ न तो लक्ष्मी हैं और न वह राजकुमारी ही है।

तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥

तब मुनि बड़े डरे और उन्होंने भगवान के चरण पकड़ कर कहा शरण में आये हुओं की रक्षा करने वाले भगवान् मेरी रक्षा करें।

मृषा होउ मम साप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥

हे कृपालु, मैंने जो शाप दिया है, वह झूठा हो, पर दीनदयालु भगवान ने कहा, नहीं मेरी ऐसी इच्छा है, मैं चाहता हूं कि तुम्हारा शाप सत्य हो।

मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे॥
जपहु जाइ संकर सतनामा। होइहि हृदय तुरत विस्रामा॥
कोउ नहिं शिव समान प्रिय मोरे। अस परतीत तजहु जनि भोरे॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई। अब न तुम्हहिं माया नियराई॥

नारद ने कहा—प्रभु मैंने आपको बहुत गालियाँ दी, किस प्रकार मेरा यह पाप दूर होगा, कहिए। भगवान ने कहा, जाकर शिवजी का सौ नाम जपो, तुम्हारे हृदय को शांति मिलेगी, क्षोभ दूर होगा। शिव के समान मेरा प्रिय दूसरा नही हैं, इस विश्वास को भूल कर भी न छोड़ो। जिस पर शिवजी कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति भी नहीं पाता। यह निश्चय करके पृथिवी में भ्रमण करो, अब मेरी माया तुम्हारे पास न जायगी। अब मेरी माया तुम्हें नहीं व्यापेगी।

दो०—बहुविधि मुनिहि प्रवोधि प्रभु, तब भये अन्तरधान।
सत्यलोक नारद चले, करत राम गुनगान॥ १४३॥

इस प्रकार नारद को बहुत समझा बुझाकर प्रभु अन्तर्द्धान हो गये, नारद भी रामगुण का गान करते हुए सत्य लोक की ओर चले।

हरगन मुनिहि जात पथ देषी। विगतमोह मन हरष विसेषी॥

शिवजी के उन दोनों गणों ने मुनि को रास्ते में जाते देखा और देखा कि मुनि का मोह दूर हो गया है तथा उनका मन बहुत ही प्रसन्न है।

अति सभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत वचन सुनाये॥

वे डरते डरते नारद के पास आये और उनके चरण पकड़ कर उन लोगों ने आर्त वचन कहे।

हरगन हम न विप्र मुनिराया। वड़ अपराध कीन्ह फलु पाया॥
साप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला॥

हे मुनिराज, हम दोनों शिवजी के गण हैं, ब्राह्मण नहीं हैं, आपका

हम लोगों ने बड़ा अपराध किया जिसका फल भी मिला। अब आप अपने शाप पर अनुग्रह करें अर्थात् शाप को दूर करें, आप कृपालु हैं। उनकी बात सुनकर दोनों पर दया करनेवाले नारद बोले।

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। वैभव विपुलतेजबल होऊ॥

जाओ, तुम दोनों राक्षस हो जाओ, तुम दोनों को अतुल धन तेज और बल होगा।

भुजबलविस्वजितबतुम्हजहिआ। धरिहहिंविष्णुमनुजतनुतहिआ॥

अपनी भुजा के बल से जिस दिन तुम लोग समस्त संसार को जीत लोगे उसी दिन विष्णु मनुष्य शरीर धारण करेंगे।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहि मुकुत न पुनि संसारा॥
चले जुगल मुनि पद सिरु नाई। भये निसाचर कालहि पाई॥

रण में विष्णु के हाथों तुम्हारी मृत्यु होगी और तुम लोग मुक्त हो जाओगे, संसार की बाधा न रहेगी अर्थात् जीवन मरण के दुःख से छूट जाओगे। वे दोनों मुनि के चरणों में प्रणाम कर चले गये और समय पाकर निशाचर हुए।

दो०—एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुररंजन सज्जनसुखद, हरि भंजन भुवि भार॥ १४४॥

इसी कारण एक कल्प में भगवान् को मनुष्य शरीर धारण करना पड़ा था; क्योंकि वे देवताओं को प्रसन्न करनेवाले सज्जनों के सुखदायी तथा पृथिवी का भार उतारनेवाले हैं।

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद विचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नानाविधि करहीं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
विविध प्रसंग अनूप वषाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥
हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सब संता॥

रामचन्द्र के चरित सुहाये। कलप कोटि लगि जाहिं न गाये॥
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनिज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत-हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी

इसी प्रकार के अनेक जन्म और कर्म भगवान् के हैं, जो सुन्दर सुखदायी तथा विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प में प्रभु अवतार लेते हैं और नाना प्रकार के सुन्दर चरित करते हैं। तब तब अर्थात् भगवान ने जब जब सुन्दर अद्भुत और पवित्र चरित्र किये हैं मुनीश्वरों ने उन चरित्रों का वर्णन भी किया है। उन चरित्रों के वर्णन में अद्भुत अद्भुत कथाप्रसङ्ग भी उन लोगों ने कहे हैं, उन भिन्न भिन्न चरित्रों को सुनकर बुद्धिमान् आश्चर्य नहीं करते। भगवान अनन्त हैं, उनकी कथा अनन्त है, भगवान की कथा को सब लोग अनेक प्रकार से कहते और सुनते हैं। रामचन्द्र जी के सुन्दर चरित एक कोटिकल्प तक गाये जांय तो भी पूरे नहीं हो सकते। भगवान् की माया ज्ञानी मुनियों को भी मोह लेती है यह प्रसंग मैंने तुम से कहा, प्रभु कौतुकी हैं, वे शरण में आये हुओं का हित करते हैं और सेवा करनेवालों के सब दुःख शीघ्र ही दूर कर देते हैं।

सो०—सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं, भजिय महामायापतिहि॥

देवता मनुष्य मुनि आदि कोई भी ऐसा नहीं है जो भगवान की प्रबल माया से मोहित न हुआ हो। यह विचार कर महामाया के पति भगवान् का भजन करना चाहिए।

(कदर्म और देवहूति की कथा)

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ विचित्र कथा विस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोशलपुरभूपा॥
जो प्रभु विपिन फिरत तुम्ह देषा। बंधु समेत धरे मुनिवेषा॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सतीसरीर रहिहु बौरानी॥

अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रमरुजहारी॥

शैलकुमारी, और भी कारण सुनो, मैं विस्तारपूर्वक वह कथा कहता हूं जिससे अजन्मा निर्गुण और निराकार ब्रह्म कोशलपुर के राजा के रूप में प्रकट हुए। मुनिवेष धारण करके भाई के साथ बन में जिनको तुमने घूमते हुए देखा है। भवानी, जिनके चरित को देखकर जब तुम सती के रूप में थी तब बौराय गयी थी, तुम्हारा कर्त्तव्यज्ञान नष्ट हो गया था। आज भी तुम्हारी वह छाया नहीं मिटती अर्थात् तुम्हारा वह भ्रम नहीं जाता, अतएव भ्रमरूपी रोग को दूर करने वाला उनका चरित सुनो।

लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥

उस अवतार में भगवान ने जो लीला की, वह अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं।

भरद्वाज सुनि संकरबानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी॥

याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा, हे भारद्वाज, शिवजी की बात सुनकर पार्वती कुछ लज्जित हुई और वे प्रेमपूर्वक हंसी।

लगे बहुरि बरनइ वृषकेतू। सो अवतार भयउ जेही हेतू॥

जिस कारण वह अवतार हुआ था, सो शिवजी पुनः कहने लगे।

दो०—सो मैं तुम्ह सन कहउँ सब, सुनु मुनीस मन लाइ।
राम कथा कलिमलहरनि, मंगलकरनि सुहाइ॥ १४५॥

याज्ञवल्क्य ने कहा, हे मुनीश! वह सुन्दर रामकथा जो कलि के पापों को दूर करती है तथा मंगल करती है, कहता हूं आप मन लगा कर सुनें।

स्वायभुवमनु अरु सतरूपा। जिन्हतें भइ नर सृष्टि अनूपा॥

स्वायंभुवमनु और शतरूपा थी, जिनसे यह अद्भुत सृष्टि उत्पन्न हुई है।

दंपतिधरम आचरन नीका। अजहुं गाव स्त्रुति जिन्हके लीका॥

उन दोनों ने दंपतिधर्म—स्त्री-पुरुष का धर्म बड़ी उत्तमता से पाला, जिनकी मर्यादा को श्रुति आज तक गाती है।

नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि भगति भयउ सुत जासू॥

इनके पुत्र उत्तानपाद हुए और इनके पुत्र ध्रुव हुए जो भगवद्भक्त थे।

लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। वेद पुरान प्रसंसहिं जाही॥

उनके छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा वेदपुराण करते हैं।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रियनारी॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥

उनकी कन्या का नाम देवहूती था, ये कर्दम ऋषि की कन्या थीं। जिन देवहूति ने आदिदेव दीनदयाल कृपालु कपिल भगवान् को गर्भ में धारण किया था।

सांख्य शास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवना॥

भगवान कपिल तत्व विचार में—ज्ञान के विचार करने में बड़े ही निपुण थे। इन्होंने सांख्य शास्त्र प्रकाशित किया।

तेहि मुनिराज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला॥

मुनि, उन्होंने अर्थात मनु ने बहुत समय तक राज्य किया और प्रभु की आज्ञाओं का भी पालन किया।

सो०—होइ न विषयविराग, भवन वसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु॥

घर में रहते रहते चौथापन आ गया, अर्थात वृद्धावस्था आ गयी। फिर भी विषयों से वैराग्य नहीं हुआ, विषय भोग से तृप्ति न हुई। इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ, उन्होंने सोचा कि इस प्रकार तो समूचा जन्म ही चला जायगा और भगवान की भक्ति न हो सकेगी।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारिसमेत गवन बन कीन्हा॥

तब उन्होंने पुत्र को जबरदस्ती राज्य का भार दे दिया और आप रानी के साथ वे वन में चले गये।

तीरथ बर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधिदाता॥

नैमिष तीर्थ बड़ा ही श्रेष्ठ और प्रसिद्ध है, वह बहुत ही पवित्र है और साधकों को सिद्धि देनेवाला है।

बसहिं तहां मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हिय हरषि चलेउ मनुराजा॥
पंथ जात सोहहिँ मतिधीरा। ज्ञान भगति जनु धरे शरीरा॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा॥

वहां मुनि और सिद्ध लोग रहते हैं, मन में प्रसन्न होते हुए मनुराज वहाँ नैमिषारण्य में चले। मार्ग में जाते हुए वे बुद्धिमान राजा तथा रानी शरीर धारी ज्ञान और भक्ति के समान मालूम पड़ते थे। मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धरकर जाते हो। वे जाकर गोमती नदी के तीर पहुंचे, उसके निर्मल जल में प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने स्नान किया।

आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी। धरम धुरंधर नृपरिषि जानी॥

ये धर्म पालक राजर्षि हैं यह जानकर सिद्ध मुनि तथा ज्ञानी इनसे मिलने आये।

जहँ जहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥
कृष सरीर मुनिपटपरिधाना। संतसभा नित सुनहिं पुराना॥

जहाँ जहाँ उत्तम तीर्थ थे वे सब तीर्थ मुनियों ने राजा रानी से करवाये। दुर्बल शरीर तथा मुनियों के समानवस्त्र धारण करनेवाले राजा वहाँ नित्य सज्जनों के समाज में जाकर पुराण सुनने लगे।

दो०-द्वादस अक्षर मंत्र पुनि, जपहिँ सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अतिलाग॥ १४६॥

तदनन्तर प्रेमपूर्वक द्वादश अक्षर के मंत्र का जप करने लगे, उन स्त्री पुरुषों का मन भगवान् के चरणकमलों में लग गया।

करहिं अहार साकफलकंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥

कन्द फल शाक आदि का वे अहार करते थे और सच्चिदानन्द भगवान् का स्मरण करते थे।

पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥

पुनः फल मूल का भी त्याग कर केवल जल के अधार पर रह कर भगवान् के लिए अर्थात् भगवान् को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने लगे।

उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। चिदानंद निरुपाधि अनूपा॥

उनके मन में सदा इस बात की अभिलाषा रहा करती थी कि उस प्रभु को मैं अपनी आँखों कब देखूंगा, जो निर्गुण सत्व रज तम इन तीन गुणों से परे हैं। अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं तथा परमार्थवादी जिनका सदा ध्यान करते हैं। वेद नेति-नेति कह कर जिनका निरूपण करते हैं, जो ज्ञान और आनन्दमय है, जो देश और काल से परे हैं तथा जो अद्वितीय हैं।

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंसतें नाना॥

शिव ब्रह्मा तथा विष्णु भगवान् आदि अनेक देवता जिनके अंश से उत्पन्न होते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥

ऐसे प्रभु भी भक्तों के अधीन हैं, वे भक्तों के कल्याण के लिए शरीर धारण करते हैं।

जौ यह बचन सत्य स्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

मनु ने मन में कहा कि यदि श्रुति का यह कहना सत्य है, यदि भगवान् भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं तो मेरी अभिलाषा पूरी होगी।

दो०—एहिविधि बीते बरष षट, सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर आधार॥ १४७॥

इस प्रकार जल के आहार पर रहकर तपस्या करते हुए उनको छः हज़ार वर्ष बीत गये, पुनः वायु के आहार पर रह कर उन्होंने सात हजार वर्ष तक और तपस्या की।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढे रहे एक पग दोऊ॥
बिधि हरि हर तप देषि अपारा। मनु समीप आये बहुबारा॥
मांगहु बर बहुभांति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥

पुनः वायु के आहार का भी त्यागकर उन दोनों स्त्री पुरुषों ने दस हज़ार वर्ष तक एक पैर से खड़े रह कर तपस्या की। उनकी कठिन तपस्या देख कर शिव ब्रह्मा विष्णु आदि अनेक बार उनके यहाँ आये। आकर उन लोगों ने अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये, पर वे धीर थे, बहुत चलाये जाने पर भी न चले, प्रलोभनों के फंदे में न फंसे।

अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिँ पीरा॥

शरीर में केवल हड्डियाँ रह गयीं, पर उनको थोड़ी भी पीड़ा नहीं मालूम हुई। मनाक् संस्कृत का शब्द है इसका अर्थ है थोड़ा।

प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी॥

तपस्या करनेवाले राजा और रानी अनन्य गति हैं, भगवान् को छोड़ कर दूसरी उनकी गति नहीं, अतएव सर्वज्ञ प्रभु ने उन्हें अपना दास मान लिया, उन्हें अपना सेवक समझा।

मांगु मांगु बर भइ नभवानी। परम गंभीर कृपामृतसानी॥

वर मांगो मांगो यह आकाश वाणी हुई, जो गम्भीर थी तथा कृपा रूपी अमृत में सनी हुई थी।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। स्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये। मानहुँ अबहिं भवन तें आये॥

कानों से होकर वाणी हृदय में पहुँची, तब वह मृतकों के जिलाने-वाली वाणी के समान प्रतीत हुई। इस वाणी के सुनने से उनका शरीर हृष्ट पुष्ट तथा सुन्दर हो गया, मानो वे अभी घर से आ रहे हों।

दो०—स्रवन सुधासम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदय समात॥ १४८॥

कानों के लिए जो अमृत के समान थे ऐसे वचन सुनकर उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। दण्डवत् प्रणाम करके मनु बोले। उनके हृदय में उस समय भगवत्प्रेम नहीं समाता था।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरि हर वंदित पदरेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुषदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥
जौं अनाथहित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू॥

हे सेवकों के लिए कल्पवृक्ष तथा कामधेनु, हे ब्रह्मा विष्णु महेश के द्वारा पूजित चरण, हे सेवा करनेवालों के लिए सुलभ, सब को सुख देने-वाले, शरणागतों की रक्षा करनेवाले और स्थावर जंगम सबके स्वामी, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, यदि आपका मुझपर प्रेम है तो मुझ अनाथ के लिए आप यह वर दें।

जो स्वरूपवस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मनमानसहंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रशंसा॥

जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है जिस स्वरूप के दर्शन के लिए मुनि अनेक यत्न करते हैं, जो स्वरूप भुशुंडी के मनरूपी मानस का हंस है, जो सगुण भी है और निर्गुण भी है तथा वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं।

देषहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

हम उसी स्वरूप को भर आंख देखना चाहते हैं, हे भक्त दुःख मोचन, आप कृपा करें।

दंपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेमरसपागे॥

उन दम्पती के अर्थात् राजा रानी के वचन प्रभु को बड़े अच्छे लगे, क्योंकि वे कोमल थे विनय युक्त थे तथा प्रेम रस से सने हुए थे।

भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

भक्तवत्सल कृपानिधान तथा विश्वाधार भगवान् उस समय प्रकट हुए।

दो०—नील सरोरुह नीलमनि, नील नीर धर स्याम।
लाजहिं तनुसोभा निरखि, कोटिकोटिसतकाम॥ १४६॥

नील कमल, नीलमणि और नीलमेघ के समान श्याम मूर्ति प्रकट हुई, जिनके शरीर की शोभा देख कर करोड़ों सौ कामदेव लज्जित होते हैं। नीलकमल के समान पवित्र और सुन्दर नीलमणि के समान मूल्यवान् तथा नीलमेघ के समान उपयोगी तथा उत्कण्ठा शान्त करने वाली वह मूर्ति थी। तीन उपमानों का यही तात्पर्य है।

सरद मयंक बदन छबि सींवाँ। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥

उनका मुख शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान है, वह शोभा की सीमा है, कपोल चिबुक और गला शंख के समान है। दर शब्द का अर्थ है शंख।

अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधुकर निकर बिनिंदक हासा॥

ओठ लाल हैं दाँत और नासिका सुन्दर है, चन्द्रमा की किरण समूहों की निन्दा करनेवाली उनकी हँसी है।

नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥

नवीन विकसित कमल के समान उनके नेत्र हैं जिनकी सुन्दर शोभा है, और चितवन सुन्दर तथा जी को भली लगने वाली है।

भृकुटि मनोजचापछबिहारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥

उनकी भौंहे कामदेव के धनुष की छवि हरण करनेवाली थी, अर्थात उनके समान सुन्दर थीं, मस्तक का तिलक और भी शोभा बढ़ाता था।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥

कानों में मकर के समान कुण्डल और मस्तक पर मुकुट शोभता था, उनके बाल घुंघराले थे जो भ्रमर समूह के समान मालूम पड़ते थे।

उर श्री वत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥

वक्षःस्थल पर श्रीवत्स और सुन्दर बनमाला थी, गले में जड़ाऊ चौकी और हार थे जिसमें मणि गड़े हुए थे।

केहरिकंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषण सुंदर तेऊ॥
करिकरसरिस सुभग भुज दंडा। कटि निषंग कर सर को दंडा॥

सिंह के समान उनके कन्धे थे, सुन्दर यज्ञोपवीत लटकता था, भुजाएं भी भूषणों से शोभित हो रही थीं, हाथी की सूंड के समान उनके भुजदण्ड सुन्दर थे, कमर में तरकस और हाथ में बाण तथा धनुष शोभित थे।

दो०—तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, यमुन भँवर छवि छीनि॥१५०॥

उस मूर्ति का वस्त्र पीला था जो विद्युत की निंदा करनेवाला था, पेट पर सुन्दर तीन रेखाएँ अर्थात त्रिवली थी और उस मूर्ति की सुन्दर नाभि मानो यमुना की छवि छीने लेती थी।

पदराजीव वरनि नहिं जाहीं। मुनिमनमधुप बसहिं जिन्ह माहीं॥
बामभाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छविनिधि जगमूला॥

चरण, कमल के समान थे, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। जिन चरण कमलों में मुनियों का मनरूपी भ्रमर निवास करता है। उनके बामभाग में उन्हींके समान आदि शक्ति शोभित हो रही थीं, जो संसार की मूल हैं तथा शोभा की खान हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्माणी॥

जिनके अंश से अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं, और जो गुणों की खान हैं।

भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

छबिसमुद्र हरिरूप बिलोकी। एकटक रहे नयनपट रोकी॥

जिनके भृकुटिविलास से अर्थात देखने से ही यह संसार उत्पन्न होता है, वेही सीता उस राम के बाम भाग में शोभती थीं। वे मनु और शतरूपा, भगवान् का शोभासमुद्र रूप देखकर बिना पलक घुमाये एक टक देखते रहे।

चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनुसतरूपा॥
हरषविवस तनुदसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥

सादर उस अनूप रूप की ओर देखते रहे, मनु और शतरूपा का मन उस मूर्ति के देखने से तृप्त नहीं हुआ। वे हर्ष से विभोर हो गये, चरण पकड़ कर वे दण्ड के समान पड़ गये, अर्थात उन्होंने दण्डवत् की।

सिर परसे प्रभु निज करकंजा। तुरत उठाये करुनापुंजा॥

अपने कर कमलों से प्रभु ने उनका मस्तक स्पर्श किया और करुणा-निधि भगवान् ने उन्हें तुरत उठा लिया।

दो०-बोले कृपा निधान प्रभु, अति प्रसन्न मोहि जानि।
मांगहु वर जोइ भाव मन, महा दानि अनुमानि॥१५१॥

पुनः करुणा निधान बोले,—मुझे प्रसन्न जान कर और मैं बहुत बड़ा दानी हूँ, यह समझ कर मन चाहा वर माँगो।

सुनि प्रभु वचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदु बानी॥

प्रभु के वचन सुनकर और दोनों हाथ जोड़कर वे धीरतापूर्वक कोमल वचन बोले—

नाथ देषि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे॥

नाथ, आपके चरण कमल देखने से अब हमारे सब मनोरथ पूरे हुए, हम आपके दर्शन कर कृतार्थ हुए।

एक लालसा बडि मन माहीं। सुगम अगम कहि जाति सो नाहीं॥

मेरे मन में एक बड़ी लालसा है, एक चाह है, वह छोटी भी है और

बड़ी भी, अतएव वह चाह कही नहीं जाती, उसको प्रकाशित करते सङ्कोच मालूम होता है। कैसे सुगम है और कैसे अगम है, यह बात आगे बतलायी जाती है।

तुम्हहिं देत अस सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं॥

स्वामी, आपको देने में तो वह सुगम है अर्थात् आपके समान उदार के लिए मेरी उस चाह को पूरा करना सुगम है, पर मुझे मांगते अगम मालूम होता है, मैं अपनी दीनता के कारण अपनी चाह को प्रकाशित करते भयभीत होता हूं। यहां कृपनाई का अर्थ है दीनता कृपणता नहीं।

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बड संपति मांगत सकुचाई॥
तासु प्रभाव न जानहि सोई। तथा हृदय मम संशय होई॥

जिस प्रकार कल्पवृक्ष के पास जाकर भी दरिद्र मनुष्य बहुत सम्पत्ति मांगते लज्जित होता है, क्योंकि वह कल्पवृक्ष के प्रभाव को नहीं जानता, उसे मालूम नहीं कि कल्पवृक्ष कितना दे सकता है, उसी प्रकार का संशय इस समय मेरे मनमें भी हो रहा है।

सो तुम जानहु अंतरयामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥

स्वामी आप अन्तर्यामी हैं, सबके हृदय की बात जानते हैं, आप मेरे मनोरथ को पूरा करें।

सकुचि बिहाइ मांगु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

भगवान् ने कहा, राजन् आप सङ्कोच छोड़ कर मुझसे मांगिए, क्योंकि आपके लिए मुझे कुछ भी अदेय नहीं है, मैं आपको सभी दे सकता हूँ जो कुछ आप मांगे।

दो०—दानिसिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउं सतभाउ।
चाहउँ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥१५२॥

राजा ने कहा—आप दानियों में शिरोमणि हैं, नाथ, आप कृपा के

समुद्र हैं, मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ, यह मैं सच्चे भाव से कहता हूँ, इसमें मैंने कुछ दुराव नहीं रखा।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥

राजा की प्रीति देखकर तथा उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधि ने "एवमस्तु" कहा। भगवान् ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

आपु सरिस खोजउं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
सतरूपहि बिलोकि करजोरे। देबि माँगु बरु जो रुचि तोरे॥

भगवान् ने कहा—राजन् मैं अपने समान किस को ढूंढने जाऊँ, मैं स्वयं ही आकर आपका पुत्र होऊंगा। राजा से ऐसा कहकर भगवान ने शतरूपा को हाथ जोड़े खड़ी देखकर कहा—हे देवि जो आपकी इच्छा हो वह वर आप भी मांगे।

जो वरु नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥

शतरूपा ने कहा—नाथ चतुर राजा ने जो वर मांगा है, हे नाथ वही वर मुझे बहुत ही प्रिय लगा है, अर्थात मैं भी उसी वर से प्रसन्न हूँ।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहिं सुहाई॥

पर प्रभु यह बात है बड़ी ढिठाई की, आप भक्तहितकारी हैं इसलिए यह बात आपको अच्छी लगी।

तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रभाव पुनि सोई॥

आप ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करनेवाले हैं, जगत के स्वामी हैं और सब के हृदयों के विचार जाननेवाले ब्रह्म हैं। इस बात को सोचने से संदेह होता है, अर्थात् स्वयं ब्रह्म पुत्र रूप धारण कैसे करेंगे तथापि प्रभु ने जो कुछ कहा है, वह प्रमाण है, आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, इसमें संदेह नहीं।

जे निजभगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो मति लहहीं॥

नाथ आपके जो भक्त हैं वे जिस प्रकार सुखी हों वह सब उपाय आप करते हैं। अर्थात् भक्तों को सुखी करने के सब उपाय आप करते हैं।

दो०—सोइ सुष सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरनसनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहिँ कृपा करिदेहु॥१५३॥

प्रभु, वही सुख, वही गति, वही भक्ति, अपने चरणों में वही स्नेह, वही विवेक तथा व्यवहार आप कृपा कर मुझे दें। अर्थात् जब आप पुत्ररूप में मेरे यहाँ उत्पन्न हों तो हम लोगों की बुद्धि सांसारिक मोह में न पड़े और हम लोग आपके असली रूप को न भूल जांय कृपा कर यही वर दें, शतरूपा के कहने का यही तात्पर्य है।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बचरचना। कृपासिंधु बोले मृदुबचना॥

कोमल गूढ़ और रुचिर बचन सुनकर कृपासिन्धु भगवान् कोमल वचन बोले।

जो कुछ रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सव संसय नाहीं॥
मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुं न मिटहिं अनुग्रह मोरे॥

जैसी तुम्हारी इच्छा है जैसी तुम्हारे मन की अभिलाषा है, वह सब मैंने तुम्हे दिया, इसमें सन्देह नहीं, माता तुम्हारा यह अलौकिक विवेक जो इस समय वर्तमान है वह मेरी कृपा से कभी नहीं मिटेगा, मैं तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न होऊंगा, तो भी तुम्हारा इस समय का भाव बना रहेगा।

बंदि चरण मनु कहउ बहोरी। अउर एक विनती प्रभु मोरी॥
सुतविषयक तव पदरति होऊ। मोहि बरु मूढ कहइ किन कोऊ॥

मनु ने प्रणाम करके पुनः कहा कि प्रभु मेरी एक और प्रार्थना है। पुत्र के समान ही मेरा आपके चरणों में प्रेम रहे, मैं आपको पुत्र करके ही मानूं यह वर मुझे दीजिए। इस वर के लिए यदि कोई मुझे मूर्ख कहे तो वह भी मुझे स्वीकार है।

मनिविनुफनिजिमिजलविनुमीना। ममजीवनतिमितुम्हहिंअधीना॥

अस बरु मांग चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥

जिस प्रकार मणि के बिना सर्प और जल के बिना मछली का जीना असम्भव है, उसी प्रकार मेरा जीवन आपके अधीन हो, अर्थात आपको देखे बिना मैं एक क्षण भी न जीऊं। ऐसा वर माँग कर मनु भगवान के चरण पकड़े रहे, तब करुणानिधान ने "एवमस्तु" कहा अर्थात् उन्होंने कहा "स्वीकार है"।

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

भगवान् ने कहा अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इंद्र की राजधानी में जाकर रहो।

सो०—तहँ करि भोग बिलास, तात गये कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥

तात, वहां जाकर आप भोग विलास करें, इस प्रकार कुछ समय बीत जायगा, तदनन्तर आप अवध के राजा होंगे अर्थात् अयोध्या के राजा दशरथ आप होंगे और उसी समय मैं आपका पुत्र होऊँगा।

इच्छामय नरवेष सवाँरे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥

मैं इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करके आपके घर प्रकट होऊँगा।

अंसन सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुषदाता॥

अपने अंशों के साथ शरीर धारण करके हे तात, मैं भक्तों के सुख देने वाले चरित करूंगा।

जेहि सुनि आदर नर बड भागी। भव तरहहि ममता मद त्यागी॥
आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥
पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥

जिसके चरित को आदर पूर्वक सुनकर बड़भागी मनुष्य ममता और मद का त्याग कर देते हैं तथा संसार के पार उतर जाते हैं। जिन आदि-शक्ति ने इस समस्त संसार को उत्पन्न किया है और जो मेरी माया है, वे

भी मेरे साथ प्रकट होंगी। इस प्रकार मैं आपकी अभिलाषा पूरी करूंगा। यह मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है।

पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भये भगवाना॥

इस प्रकार बार बार कह कर कृपानिधान भगवान् अन्तर्धान हो गये।

दंपति उर धरि भगति कृपाला। तेहि आस्रमनि बसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति वासा॥

वे दोनों भगवान् की भक्ति को हृदय में धर कर कुछ समय तक उसी आश्रम में रहे। पुनः समय पाकर जीवन समाप्ति की अवधि के आने पर अनायास ही बिना कष्ट के शरीर त्याग कर के वे अमरावती में जाकर रहने लगे।

दो०—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, रामजनम कर हेतु॥ १५४॥

यह पवित्र इतिहास शिवजी ने पार्वती जी से कहा था, हे भरद्वाज रामजी के जन्म लेने का दूसरा कारण सुनो ऐसा याग्यवल्क्य ने कहा।

(राजा प्रताप भानु की कथा)

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति शंभु बखानी॥

मुनि, यह पवित्र और पुरानी कथा सुनो, जो शिवजी ने पार्वती से कहा था।

विश्व विदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू॥

संसार प्रसिद्ध एक कैकय देश है, वहाँ सत्यकेतु नाम के राजा रहते थे।

धर्म धुरंधर नीतिनिधाना। तेज प्रताप सील बलवाना॥
तेहि के भये जुगल सुत बीरा। सब गुनधाम महारनधीरा॥
रजधानी जो जेठ सुत आही। नाम प्रताप भानु अस ताही॥
अपर सुतहिं अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥

वे धार्मिक, नीतिमान, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान और बलवान थे।

उनके दो पुत्र हुए, वे दोनों वीर थे, वे सब गुणों के धाम थे, तथा योद्धा थे। जेठे पुत्र की राजधानी थी अर्थात् वह राज्य का अधिकारी था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे लड़के का नाम अरिमर्दन था, जो भुजबल में अतुलनीय था तथा युद्ध में अचल था हारनेवाला न था।

भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छलबरजित प्रीती॥

भाई भाई में बड़ा प्रेम था, उनमें आपस में खूब पटती थी, उनका प्रेम सब प्रकार के दोष और छल से रहित था।

जेठे सुतहिं राज नृप दीन्हा। हरिहित आपु गवन वन कीन्हा॥

जेठे लड़के को राज्य देकर राजा भगवान् की आराधना करने के लिए आप बन में चले गये।

दो०–जब प्रतापरवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस।
प्रजापाल अति वेद विधि, कतहुं नहीं अघलेस॥ १५५॥

प्रतापभानु जब राजा हुए और देश में उनकी दुहाई फिर गयी, तब वे नीति के अनुसार प्रजा पालन करने लगे, उनके राज्य में कहीं किसीको दुःख नहीं था।

नृप हित कारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्रसमाना॥
सचिव सयान बंधु बलवीरा। आपु प्रतापपुंज रनधीरा॥
सेनसंग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन विलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गह गहे निसाना॥

उनके एक चतुर दीवान थे, जो राजा के हित करनेवाले थे, वे शुक्राचार्य के समान नीति निपुण थे उनका नाम धर्मरुचि था। उनके दीवान बुद्धिमान थे भाई वीर थे और वे स्वयं प्रतापी और योद्धा थे। उनके चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें अगणित वीर थे और वे सब युद्ध में कड़े साहसी थे। घोड़ सवार, हाथी सवार, पैदल और रथ इन चारों को मिलाकर चतुरंगणी सेना होती है। सेना को देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुए, बाजे बजने लगे।

विजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई॥

विजय के लिए सेना बनाकर तथा सुदिन साध कर राजा बाजा बजा कर चले।

जहँ तहँ परी अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई॥

अनेक स्थानों में अनेक लड़ाइयाँ हुई और राजा ने वीरतापूर्वक उन सब लड़ाइयों को जीत लिया।

सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे। लेइ लेइ दंड छाड़ि नृप दीन्हे॥

उन्होंने अपनी भुजा के बल से सातों द्वीपों को अपने वश में कर लिया और कर ले ले कर राजाओं को छोड़ दिया।

सकल अवनिमंडल तेहि काला। एक प्रतापभानु महिपाला॥

उस समय समस्त भूमण्डल का एक ही राजा प्रतापभानु थे।

दो०—स्ववस विस्व करि बाहु बल, निज पुर कीन्ह प्रवेसु।
अरथ धरम कामादि सुष, सेवइ सबइ नरेसु॥ १५६॥

अपने बाहुबल से समस्त संसार अपने वश में करके राजा ने अपनी राजधानी में प्रवेश किया और तब वे अर्थ धर्म काम आदि पुरुषार्थों की सेवा करने लगे।

भूप प्रतापभानु बल पाई। कामधेनु भइ भूमि सुहाई॥
सब दुष बरजित प्रजा सुषारी। धरमसील सुंदर नरनारी॥

राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि कामधेनु हो गयी, अर्थात् वह राजा और प्रजा के मनोरथों को पूरा करने लगी और वह सुन्दर मालूम होने लगी। उनकी प्रजा के सब दुःख दूर हो गये। वे बड़ी सुखी हुई, स्त्री-पुरुष धर्मशील होगये।

सचिव धरमरुचि हरिपदप्रीती। नृपहितहेतु सिखव नित नीती॥

दीवान धर्मरुचि राजा के कल्याण के लिए उन्हें भगवान के चरणों में प्रेम तथा नीति की शिक्षा दिया करते थे।

गुरु सुर संत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सब कै सेवा॥
भूप धरम जे वेद बषाने। सकल करइ सादर सुष माने॥

इससे वे राजा गुरु देवता सज्जन पिता तथा ब्राह्मण सब की सेवा प्रतिदिन करते थे। वेदों ने जो धर्म बतलाये हैं उन सब धर्मों को राजा आदरपूर्वक तथा प्रसन्नता से करते थे।

दिन प्रति देइ विविध विधि दाना। सुनइ सास्त्र वर वेद पुराना॥

प्रतिदिन अनेक प्रकार का दान देते थे और उत्तम शास्त्र वेद और पुराण प्रतिदिन सुना करते थे।

नाना वापी कूप तड़ागा। सुमनबाटिका सुंदर बागा॥
विप्रभवन सुरभवन सुहाये। सब तीरथन्ह विचित्र बनाये॥

उन राजा ने अनेक वापी, कूप तडाग फूलबाग, बड़े बड़े बाग ब्राह्मणों के लिए घर देवमन्दिर सब तीर्थों में बनवाये।

दो०–जहँ लगि कहे पुरान स्रुति, एक एक सब जाग।
वार सहस्र सहस्र नृप, किये सहित अनुराग॥ १५७॥

पुराण श्रुति आदि ने जिन जिन यज्ञ आदि पुण्यकर्मों को एक वार करने के लिए कहा है, उन सब कर्मों का राजा ने हजारों वार सम्पादन किया और बड़े प्रेम से उनका सम्पादन किया।

हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप विवेकी परम सुजाना॥

वे राजा परम विवेकी और चतुर थे इस कारण वे जो कुछ कर्म करते थे वे सब विना फल की इच्छा सेही करते थे। फल कामना को छोड़ कर केवल कर्तव्य बुद्धि से ही वे किसी काम को करते थे।

करइ जे धरम करम मनवानी। वासुदेव अरपित नृप रानी॥
चढ़ि बरबाजि वार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
विंध्याचल गँभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ॥

वे ज्ञानी राजा जो कुछ मन वचन या कर्म के द्वारा धर्म करते थे,

वे सब वासुदेव को भगवान् कृष्ण को अर्पित कर देते थे, एक वार राजा उत्तम घोड़े पर चढ़कर और अपने सब दल के साथ शिकार करने के लिए चले। वे विन्ध्याचल के गहन बन में चले गये और वहाँ उन्होंने पवित्र मृगों का शिकार किया अर्थात् जिन पशुओं को मारने की आज्ञा है उन्हीं का राजा ने शिकार किया।

फिरति विपिन नृप दीष वराहू। जनु बन पुरेउ ससिहि ग्रसि राहू॥

बन में घूमते हुए राजा ने एक सूअर को देखा, मानो वह राहु को और चन्द्रमा को ग्रसकर तथा निगल कर बन में छिपा हो।

बड़विधु नहिं समात मुषमाहीं। मनहुँ क्रोधवस उगिलत नाहीं॥
कोल कराल दसन छवि गाई। तनु विसाल पीवर अधिकाई॥
घुर घुरात हय आरव पाये। चकित विलोकत कान उठाये॥

मानो चन्द्रमा बड़ा है इसलिए वह मुँह में नहीं आता वह भीतर नहीं जाता, पर क्रोध के कारण वह उसे उगलता भी नहीं, निगल तो सकता नहीं, क्योंकि बड़ा है, और उगलता भी नहीं। सूअर के निचले दोनों दातों के लिए यह उत्प्रेक्षा है। भयानक सूअर के दातों का वर्णन किया गया। उसका शरीर लंबा चौड़ा था और मोटा था। घोड़ों की आहट पाकर वह घुरघुराने, लगा चकित होकर और आँख उठाकर इधर उधर देखने लगा। कोलका अर्थ है सूअर।

दो०—नीलमहीधर सिषर सम, देषि विसाल वराहु।
चपरि चलेउ हय सुट्ठुकि नृप, हाँकिन होय निवाहु॥१५८॥

वह सूअर काले पर्वत के शिखर के समान विशाल था, उसको देख कर घोड़ा इधर उधर मुड़कर और तिरछा बायां चलने लगा, अतएव राजा ने हांक कर उसे बढ़ाया, क्योंकि बिना ऐसा किये गति नहीं थी।

आवत देषि अधिक रव वाजी। चलेउ वराह मरुतगति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ विलोकत वाना॥

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रकटत दुरत जाइ मृग भागा। रिसबस भूप चलेउ संग लागा॥

लोगों को आते देख तथा शब्द सुन कर वह सूअर वायुवेग से भागा। उसी समय राजा ने वाण चलाया, पर वह सूअर वाण को देखते ही पृथिवी में मिल गया अर्थात् पृथिवी में चपट कर सो गया। ताक ताक कर अर्थात् निशाना ठीक कर राजा ने वाण चलाये, पर उस सूअर ने छल से अपने शरीर को बचाया। वह सूअर कभी सामने आजाता था, कभी छिप जाता था, दूर चला जाताथा और कभी भागता हुआ दिखाई पड़ता था। राजा भी क्रोध-वश होकर उसके साथ चले, उन्होंने उसका पीछा किया।

गयउ दूरि घन-गहन वराहू। जहँ नाहिँन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल वन विपुल कलेसू। तदपि न मृगमग तजइ नरेसू॥

वह सूअर भागते भागते बड़े घने जंगल में चला गया, जहां हाथी घोड़ों का निवाह नहीं था अर्थात् ये नहीं जा सकते थे। राजा बिलकुल अकेले हो गये, कोई भी उनका साथी न रहा और वन के अनेक कष्ट, तथापि राजा ने उस पशु का मार्ग न छोड़ा। मृग का अर्थ पशु भी है।

कोल विलोक भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहागंभीरा॥

उस कोल अर्थात् सूअर ने राजा को देखा कि ये बड़े धीर हैं, अभी तक पीछा करते ही आते हैं, तब वह भागकर एक पर्वत की गहरी गुफा में छिप गया।

अगम देपि नृप अति पछिताई। फिरेउ महा वन परेउ भुलाई॥

राजा ने देखा कि गुफा में जाना कठिन है इस कारण उनको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे पीछे की ओर लौटे, पर वन में रास्ता भूल गये।

दो०-षेद षिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
षोजत व्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥१५६॥

राजा थक जाने के कारण क्षीण हो गये थे, वे घोड़े के साथ भूखे और

प्यासे हो गये थे, नदी या तालाब का जल ढूंढ़ते ढूंढ़ते वे व्याकुल हो गये और अचेत हो गये, उनकी सुध बुध जाती रही।

फिरत विपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपटमुनिवेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥

वहाँ वन में घूमते हुए राजा ने एक आश्रम देखा, वहाँ एक राजा मुनि के वेष में छिपकर रहता था। यह वह राजा था जिसका देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और वह रणभूमि में अपनी सेना छोड़कर भाग गया था।

समय प्रताप भानुकर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। विपिन बसइ तापस के साजा॥
तासु समीप गमन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहि तब चीन्हा॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरंग तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

प्रताप भानु का समय अच्छा है, उसे सब प्रकार की अनुकूलता है और अपना असमय है, अपना समय प्रतिकूल है, यह जानकर वह राजा घर लौटकर नहीं गया, क्योंकि इसको बहुत ग्लानि हो गयी थी और यह अभिमानी था, इसलिए राजा प्रतापभानु से भी न मिला, उनकी शरण भी न गया। तब से क्रोध को मन ही मन दबाकर वह राजा वन में दरिद्रों के समान रहने लगा और उसने अपना वेष तपस्वियों का सा बना लिया। राजा प्रतापभानु उसके आश्रम में गये। उसने इन्हें पहचान लिया कि ये राजा प्रतापभानु हैं। राजा प्यासे थे, ये उसे पहचान न सके, उसका सुन्दर वेष देखकर इन्होंने उसे कोई मुनि समझा। घोड़े से उतर कर राजा ने उसे प्रणाम किया, पर वह बड़ा चतुर था, उसने अपना नाम नहीं बताया।

दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहि, सरवर दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १६०॥

राजा प्यासे हैं यह जानकर उसने इनको सरोवर बतला दिया, राजा ने प्रसन्नतापूर्वक स्वयं वहाँ स्नान और जलपान किया तथा घोड़े को भी जल पिलाया और धोया।

गै स्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आस्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्हि अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदुबानी॥
को तुम कस बन फिरहु अकेले। सुंदर जुवा जीव पर हेले॥

राजा की थकावट दूर हो गयी, वे बड़े प्रसन्न हुए, तब वह तपस्वी उनको अपने आश्रम में ले गया। सूर्य अस्त हो गये हैं यह जानकर उसने राजा को आसन दिया और कहा, तुम कौन हो? इस वन में अकेले क्यों घूम रहे हो? तुम सुन्दर युवा हो, फिर तुमने अपने प्राणों की यह बाजी क्यों लगायी है?

चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे॥

आपके लक्षण चक्रवर्ती के हैं, आपको देखकर मुझे बड़ी दया आती है।

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुरलभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा॥

राजा ने कहा, प्रतापभानु नाम के एक राजा हैं, हे मुनीश, मैं उनका सचिव हूँ। शिकार के लिए घूमते घूमते मैं भूल गया हूँ, यह तो हमारा बड़ा भाग्य है कि आपके दर्शन हो गये। आपका दर्शन हम लोगों के लिए बड़ा ही दुर्लभ है, पर वह दुर्लभ दर्शन हो गया। इससे समझता हूँ कि मेरी कुछ न कुछ भलाई होनेवाली है। मुनि ने कहा कि, भाई, अब अन्धेरा हो

गया, रात्रि हो गयी और आपका नगर यहाँ से सत्तर योजन दूर है अर्थात् २८० कोस है।

दो०—निसा घोर गंभीर वन, पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जायहु होत बिहान॥

घोर अंधेरी रात है, वन गम्भीर है, रास्ते में कुछ सुनायी नहीं पड़ता। ऐसा समझकर आप आज यहीं रहें, विहान होने पर अर्थात् रात बीत जाने पर जाइएगा।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलइ सहाई।
आपु न आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लेइ जाइ॥ १६१॥

तुलसीदास कहते हैं कि जैसी भवितव्यता होती है; वैसे ही सहायक मिलते हैं, भवितव्यता स्वयं उसके पास नहीं आती, किन्तु मनुष्य को ही वह वहाँ ले जाती है जहाँ उसकी कुछ भलाई या बुराई होनी होती है।

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु बैठ महीसा॥

राजा ने कहा—नाथ अच्छा, ऐसा कह कर उन्होंने उस मुनि की आज्ञा मान ली, घोड़े को बाँधकर आप वृक्ष के नीचे बैठ गये।

नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही॥

राजा ने उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा की और उनको प्रणाम करके अपना भाग्य सराहा।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउँ ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी॥
तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥

पुनः राजा कोमल और सुन्दर बचन बोले, प्रभु, मैं आपको अपना पिता जानकर कुछ ढिठाई करता हूँ। मुनीश, मुझको अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम बतलाइए। राजा उसको नहीं जानते थे, पर

वह राजा को जान गया था, राजा का हृदय साफ था। पर उसका हृदय कपट और चतुरतापूर्ण था।

बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥

वह राजा का शत्रु था, पुनः क्षत्रिय था, उस पर भी राजा था, वह छल बल के द्वारा अपना काम निकालना चाहता था।

समुझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगइ छाती॥

वह शत्रु राजा को सुखी और अपने को दुःखी समझता था, अतएव आँवे की आग के समान उसका कलेजा दहक रहा था।

सरल वचन नृप के सुनि काना। बयर संभारि हृदय हरषाना॥

छलकपटहीन राजा के वचन अपने कानों से सुनकर तथा अपने बैर को स्मरण कर वह हृदय में हर्षित हुआ, क्योंकि उसे बदला लेने का मौका मिला था।

दो०-कपटबोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहितनिकेत॥१६२॥

युक्तियुक्त और कपट से सना कोमल वचन वह बोला, अब मेरा नाम भिखारी है, मैं निर्धन हूँ, रहने का घर भी नहीं है।

कह नृप जे बिज्ञाननिधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
रहहिं अपनपौ सदा दुराये। सब बिधि कुसल कुबेष बनाये॥
तेहि तें कहहिं संत स्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

राजा ने कहा, जो विज्ञानी हैं, जो आपके समान अभिमान रहित हैं, वे अपनेपन को अर्थात् अपने व्यक्तित्व को सदा अपने से दूर ही रखते हैं, सब बातों से भरे पूरे रहने पर भी वे बुरे वेष बनाये रहते हैं। इसी कारण सन्त और वेद पुकार पुकार यह कहते हैं कि जो परम अकिंचन हैं; जो नितान्त दरिद्र हैं; वे भगवान् के चेरे हैं।

तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत। बिरंचि सिवहिं संदेहा॥

आपके समान भिक्षुक, निर्धन और घरबार हीन मनुष्य को देखकर शिव और ब्रह्मा को भी सन्देह होता है, अर्थात् यह किस पद के लिए तपस्या करता है, इस चिन्ता से भी घबड़ा जाते हैं।

जोऽसि सोऽसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करिय अब स्वामी॥

महाराज आप चाहे जो हों, मैं आपके चरणों को नमस्कार करता हूँ। स्वामी, अब आप मुझ पर कृपा कीजिए।

सहज प्रीति भूपति कै देषी। आपुविषय विस्वास विसेषी॥

राजा की स्वाभाविक प्रीति देखकर अर्थात् राजा प्रेमी स्वभाव के हैं और अपने विषय में उनका विशेष विश्वास हो गया है, यह उसने जाना।

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥

तब सब प्रकार से उसने राजा को अपने अधीन किया और पुनः प्रेम जनाते हुए वह बोला।

सुनु सतिभाव कहौं महिपाला। इहाँ वसत बीते बहु काला॥

राजन्, मैं सच सच आपसे कहता हूँ, सुनिए, यहाँ रहते मुझे बहुत समय बीत गया, अर्थात् मैं यहाँ बहुत समय से रहता हूँ।

दो०-अबलगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावहुँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु॥ १६३॥

अब तक मुझसे किसीकी भेंट न हुई, इसीलिए मैंने किसीसे कुछ कहा भी नहीं, लोकप्रसिद्धि तपस्या की शत्रु है, जिस प्रकार अग्नि से वन भस्म हो जाता है, उसी प्रकार लोकप्रसिद्धि से तपस्या भी नष्ट हो जाती है।

सो०-तुलसी देषि सुवेस, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेषि, वचन सुधासम असन अहि॥

तुलसीदास कहते हैं कि, सुन्दर वेष देखकर मूर्ख ही नहीं, किन्तु विद्वान्

भी भूल जाते हैं, वे भी धोखा खा जाते हैं। मयूर सुन्दर होता है, उसकी वाणी भी अमृत के समान होती है पर वह साँप खाता है।

तातें गुपुत रहउँ जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं॥

इसी कारण मैं छिपा रहता हूँ, संसार में प्रकाशित नहीं होता, भगवान् को छोड़कर और किसीसे मेरा कुछ वास्ता नहीं, किसीसे कुछ काम नहीं।

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाये। कहहु कवन सिधि लोक रिझाये॥

प्रभु तो बिना जनाये भी सब बातें जान जाते हैं, फिर बतलाइए संसार को प्रसन्न करने से क्या लाभ।

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे॥
अब जौं तात दुरावउँ तोही। दारुन दोष घटइ अति मोही॥

आप पवित्र बुद्धिमान् और मेरे परमप्रिय हैं और आपका भी मुझपर प्रेम तथा विश्वास है। भाई, अब यदि मैं तुम से कुछ छिपाऊँ तो मुझे बड़ा भारी अपराध हो।

जिमि जिमि तापस कथइ उदासा। तिमि तिमि नृपहिं उपज बिस्वासा॥

वह तपस्वी उदासीनभाव से ज्यों ज्यों कथा सुनाता था, त्यों त्यों राजा का उस पर विश्वास बढ़ता जाता था।

देखा स्वबस करम मन बानी। तब बोला तापस बकध्यानी॥

जब उसे मालूम हुआ कि राजा मन वचन और कर्म से मेरे अधीन हो गया है, तब वह कपटी तपस्वी बोला, बकध्यानी—छली कपटी। बक के समान ध्यान धरनेवाला।

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥

उसने कहा, भाई, मेरा नाम एकतनु है, तब प्रणाम करके राजा पुनः बोले।

कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥

महाराज, आप मुझे सेवक तथा अपना जानकर अपने नामका अर्थ बतलाइए।

दो०-आदि सृष्टि उपजी जबहि, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥ १६४॥

जब आदि सृष्टि उत्पन्न हुई तभी मेरी भी उत्पत्ति हुई थी और तबसे मैंने दूसरा शरीर धारण नहीं किया है, इस कारण मेरा नाम एकतनु पड़ा है।

जनि आचरजु करहु मनमाँहीं। सुत तप तें दुलभ कछु नाहीं॥
तपबल तें जग सृजै विधाता। तपबल विष्णु भये परित्राता॥
तपबल संभु करहिं संहारा। तप तें अगम न कछु संसारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहइ सो लागा॥
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिबेका॥

हे पुत्र, यह सुनकर तुम अपने मन में आश्चर्य न करो; क्योंकि तपस्या के द्वारा संसार में कोई भी बात दुर्लभ नहीं है। तपस्या ही के बल से ब्रह्मा सृष्टि की रचना करते हैं, तपस्या ही के बल से विष्णु सृष्टि की रक्षा करते हैं और शिव तपस्या के बल से ही सृष्टि का संहार करते हैं। तपस्या से संसार में कुछ अगम्य नहीं है। उसकी बातों से राजा का प्रेम उसमें बहुत अधिक बढ़ गया। वह अनेक पुरानी कथा कहने लगा। उसने धर्म, कर्म के अनेक इतिहास कहे तथा वैराग्य और विवेक का निरूपण किया।

उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥

सृष्टि पालन और प्रलय की अनेक कथाएँ उसने सुन्दर शब्दों में कहीं जो आश्चर्यप्रद थीं।

सुनि महीप तापसबस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥

इन सब बातों को सुनकर राजा उस तपस्वी के अधीन हो गए और उन्होंने अपना नाम बतला दिया।

कह तापस नृप जानऊँ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही॥

तब तपस्वी ने कहा, महाराज, मैं आप को जानता हूं, आपने जो यह कपट किया है, वह मुझे बड़ा अच्छा लगा। पहले पहल आपने अपना नाम ठीक ठीक नहीं बतलाया यह ठीक किया।

सो०–सुनु महीस असि नीति, जँह तहँ नाम न कहहिं नृप॥
मोहि तोहि पर अति प्रीती, सोइ चतुरता विचारि तव॥

राजन् सुनिए यह नीति है, राजा लोग अपना नाम सब जगह नहीं बतलाते फिरते। आपकी इस चतुरता को देखकर मेरा प्रेम आप पर बढ़ा है, घटा नहीं।

नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुरु प्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥

राजन्, तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और तुम्हारे पिता का नाम राजा सत्यकेतु है। राजन्, गुरु की कृपा से मैं ये सब बातें जानता हूँ, पर अपनी हानि होने के भय से मैं कहता नहीं।

देषि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥

भाई तुम सीधे हो, मुझमें तुम्हारा प्रेम और विश्वास है तथा तुम नीति निपुण भी हो।

उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा निज पूछे तोरे॥

इन कारणों से तुम पर मेरी कुछ ममता उत्पन्न हो गयी है, इसलिए तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा कहता हूँ।

अब प्रसन्न मैं संसय नाही। माँगु जो भूप भाव मन माही॥

राजन्, अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें संदेह नहीं, अब आपको जो माँगना हो सो माँगो, जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँग सकते हो।

सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद विनय कीन्हि विधिनाना॥

उस तपस्वी के उत्तम वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने उस तपस्वी के चरण पकड़ कर अनेक विनती की।

कृपासिंधु मुनि दरसन तोरे। चारि पदारथ करतल मोरे॥

राजा ने कहा, मुनि, आप कृपासिन्धु हैं, आपके दर्शन से अब चारों पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—हमारे हाथ में हैं। आपकी कृपा से ये सब चीज़ें मुझे अनायास प्राप्त हो सकती हैं।

प्रभुहि तथापि प्रसन्न विलोकी। माँगि अगम बरु, होउँ असोकी॥

तथापि प्रभु आप प्रसन्न हैं; यह देखकर मैं एक बड़ा वर माँगता हूँ और वर को पाकर शोक रहित हो जाना चाहता हूँ।

दो०—जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितइ जनि कोउ॥
एकछत्र रिपुहीन महि, राज कलप सत होउ॥१६५॥

हमारा शरीर जरा मरण और दुःख से रहित हो, युद्ध में मुझे कोई जीत न सके, शत्रु रहित होकर सौ कल्प तक मैं पृथिवी का एकछत्र राज्य करूँ।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तव पद नाइहि सीसा। एक विप्रकुल छाड़ि महीसा॥
तपबल विप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तव बस विधि विष्णु महेसा॥
चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥

तपस्वी ने कहा, राजन्, ऐसा ही होगा, पर इसमें एक कठिनता है; सो भी सुन लो। राजन्, एक ब्राह्मण कुल को छोड़कर और सब यहाँ तक कि काल तक भी तुम्हारे चरणों पर शिर झुकावेगा। ब्राह्मण तपस्या के बल से सदा बली हैं, वे यदि कोप करें तो कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। हे नरेश, तुम यदि किसी प्रकार इन ब्राह्मणों को अपने वश करो तो ब्रह्मा

विष्णु और शिव तुम्हारे अधीन हो जाँयगे। ब्राह्मण कुल के सामने बल का उपयोग लाभकारी नहीं, यह दोनों भुजा उठाकर मैं सच सच कहता हूँ।

विप्रस्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपानिधाना। मो कहँ सर्ब काल कल्याना॥

हे महीपाल, ब्राह्मण के शाप के विना आप का नाश और किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता, यह आप सुन रखो। उसके बचन सुनकर राजा प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा, नाथ, अब मेरा नाश नहीं होगा। हे कृपालु प्रभु, आपकी कृपा से अब मेरा सब स्थान तथा सब काल में कल्याण ही है।

दो०-एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाव निज, कहहु त हमहिं न खोरि॥१६६॥

"एवमस्तु" अर्थात् तुम्हारा कहना ठीक हो, इस प्रकार कपटी मुनि ने कपट पूर्वक कह कर पुनः कहा, अपना भूलना और हमसे मिलना यह किसीसे मत कहना, यदि तुमने कहा और इससे तुम्हारी कुछ हानि हुई तो मुझे दोष न देना।

तातें मैं तोहि बरजउ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठे स्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥
यह प्रगटे अथवा द्विजस्रापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरिहर कोपहिं मन माहीं॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुरु जौं कोप बिधाता। गुरु बिरोध नहिं कोउ जगत्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥
एकहि डर डरपति मन मोरा। प्रभु महिदेव स्राप अति घोरा॥

इसीसे राजन्, मैं तुम्हें रोकता हूँ कि मेरी बातें किसीसे कहने से तुम्हारी हानि होगी। ये बातें यदि छठे कान तक पहुँची, यदि किसी तीसरे

ने सुनी तो तुम्हारा नाश हो जायगा यह मेरी बात सत्य है, ऐसा तुम समझो। हे भानुप्रताप इस कथा के प्रकाशित होने पर तथा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश होगा। तुम्हारे नाश का दूसरा उपाय नहीं है, किसी दूसरे उपाय से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी, चाहे शिव और विष्णु भले ही अपने मन में क्रोध करें। राजा ने कहा, प्रभु के चरण पकड़ कर मैं सत्य सत्य कहता हूँ, ब्राह्मण और गुरु के क्रोध से कौन रक्षा कर सकता है। यदि ब्रह्मा क्रोध करें तो गुरु रक्षा कर सकते हैं, पर गुरु से विरोध होने पर कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है। यदि मैं आपके कहने के अनुसार न चलूँगा तो हमारा नाश अवश्य होगा और उसका मुझे शोक भी न होगा। मेरा मन केवल इसी एक बात से डरता है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा कठोर होता है।

दो०-होहिं विप्र बस कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीन दयाल निज, हितू न देखउँ कोउ ॥१६७॥

ब्राह्मण किस प्रकार वश में होंगे; यह भी आप कृपाकर कहें, हे दीन-दयाल, आपको छोड़कर और कोई भी मेरा हितकारी नहीं है। मैं आपको छोड़कर और किसीको अपना हितकारी नहीं देखता।

सुनु नृप विविध जतन जग माहीं। कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहीं ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई। तहां परंतु एक कठिनाई ॥
मम आधीन जुगति नृप सोई। मोर जाव तव नगर न होई ॥
आजु लगे अरु जब ते भयउँ। काहू के गृह ग्राम न गयउँ ॥

कपटी बोला—हे नृप सुनो, संसार में अनेक उपाय हैं, पर वे कष्टसाध्य हैं, उनकी सिद्धि के लिए कष्ट उठाना पड़ता है, पर उसमें भी सन्देह है, कष्ट उठाने पर भी सिद्धि में सन्देह है। एक अत्यन्त सुगम उपाय है, पर उसमें एक कठिनता है। राजन्, वह युक्ति मेरे अधीन है, पर मेरा जाना आपके

नगर में नहीं हो सकता, तब से मैं उत्पन्न हुआ; तब से लेकर आजतक मैं किसी गाँव में किसीके यहाँ नहीं गया।

जौं न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू॥

यदि मैं तुम्हारे नगर में न जाऊँ तो तुम्हारा अकाज होगा, तुम्हारी हानि होगी, यह आज एक बड़े असमंजस की बात हुई।

सुनि महीस बोलेउ मृदुबानी। नाथ निगम असि नीति बखानी॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरन्ह सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

कपटी मुनि की बात सुन कर राजा कोमल वचन बोले, नाथ, वेदों ने ऐसी नीति बतलाई है कि बड़े छोटों पर स्नेह करते हैं, पर्वत अपने सिरपर तृण धारण करते हैं। अगाध समुद्र अपने ऊपर फेन बहाता है और पृथिवी अपने मस्तक पर सदा धूलि धारण करती है।

दो०—अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल॥१६८॥

ऐसा कह कर राजा ने उनके चरण पकड़ लिये और उन्होंने कहा, कृपा कीजिए, आप दीनदयाल हैं, सज्जन हैं, मेरे लिए आप दुःख उठावें।

जानि नृपहिं आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रबीना॥
सत्य कहउँ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोहीं॥
अवसि काज मैं करिहउँ तोरा। मन तन वचन भगत तैं मोरा॥

राजा को अपने वश में जानकर कपटी तापस बोला, राजन्, सुनो, मैं सत्य कहता हूँ, संसार में मेरे लिए कुछ दुर्लभ नहीं है। मैं अवश्य ही तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि तुम मन वचन और कर्म से मेरे भक्त हो।

जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ। फलइ तबहिं जब करिय दुराऊ॥

योग, उपाय, तप, मंत्र आदि का फल छिपा कर करने से ही होता है।

जौं नरेस मैं करउँ रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥

अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई॥
पुनि तिन्ह के गृह जेवइ जोऊ। तव बस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू॥

राजन्, मैं रसोई बनाऊं और तुम परस कर लोगों को खिलाओ, पर मुझे कोई जानने न पावे अर्थात् मैंने यह रसोई बनायी है; यह बात प्रकट न हो। उस अन्न को जो जो खायगा, वह वह आपकी आज्ञा का अनुसरण करेगा अर्थात् वह आपकी आज्ञा के अधीन होगा। पुनः उनके घर अर्थात् भोजन किये हुए सज्जनों के घर जो जो भोजन करेगा, राजन् वह भी आप के वश में हो जायगा, यह बात आप सुन लें। जाकर यही उपाय करो और एक वर्ष तक करने का सङ्कल्प करो।

दो०-नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप लगि, दिनहिं करब जेवनार॥ १६८॥

प्रतिदिन नये नये सौ हजार ब्राह्मणों को परिवार के साथ वरण करो अर्थात् भोजन के लिए उन्हें निमन्त्रित करो। मैं तुम्हारे सङ्कल्प के लिए दिन ही में रसोई तयार कर दूँगा।

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहहिं सकल विप्र बस तोरे॥

राजन्, इस प्रकार थोड़े कष्टमें सभी ब्राह्मण तुम्हारे वशमें हो जाँयगे।

करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सहजहिं बस देवा॥

और वे ब्राह्मण होम, यज्ञ आदि देवों की सेवा के कार्य करेंगे, इस प्रकार देवता भी तुम्हारे वश में हो जाँयगे।

अउर एक तोहिं कहउँ लखाऊ। मैं एहि वेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया॥

एक और बात तुमको मैं बतलाना चाहता हूँ, मैं इस वेष में किसी के सामने न आऊँगा। राजन, मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर ले आऊँगा।

तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहउँ इहाँ बरष परमाना॥

तपस्या के बल से मैं उसे अपने समान बना दूंगा और उसे एक वर्ष तक यहां छिपा रखूंगा।

मैं धरि तासु बेष सुनु राजा। सब बिधि तोर सवाँरब काजा॥
गइ निसि बहुत सयन अब कीजै। मोहि तोहिं भूप भेंट दिन तीजे॥

राजन्, सुनो, मैं उसका—आपके पुरोहित का—रूप धरकर सब प्रकार से आपके कार्यों को संभालूँगा। राजन्, अब बहुत रात बीत गयी, अब आप सो जाओ, अब आपसे मेरी भेंट तीसरे दिन होगी।

मैं तप बल तोहि तुरंग समेता। पहुँचइहउँ सोवतहिं निकेता॥

मैं अपने तपोबल से घोड़े के साथ सोते सोते ही तुम्हें घर पहुंचा दूंगा

दो०-मैं आउब सोइ बेष धरि, पहिचानेउ तब मोहि।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावउँ तोहि॥ १७०॥

मैं वही वेष धरकर तुम्हारे पास आऊँगा, तब तुम पहँचान लेना, जब मैं तुम्हें एकान्त में बुलाकर सब बातें बतलाऊँ।

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाय बैठ छल ज्ञानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥

आज्ञा पाकर राजा सो गये और वह छली ज्ञानी अर्थात् जो कपट से ज्ञानी बना था; वह जाकर अपने आसन पर बैठा। राजा थके हुए थे; इस कारण उन्हें तो नींद आगयी, पर वह तपस्वी कैसे सो सकता था, उसके मन में सोच की अधिकता थी, वह तो अपने विचारों को काम में लाने के उधेड़ बुन में लगा हुआ था।

कालकेतु निसिचर तहं आवा। जेहि सूकर होइ नृपहिं भुलावा॥
परम मित्र तापसनृपकेरा। जानइ सो अति कपट घनेरा॥

कालकेतु नाम का एक राक्षस आया जो सूअर का रूप धरकर

पहले राजा को भुला कर यहाँ तक लाया था। वह इस तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था और वह अनेक प्रकार का कपट जानता था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। षल अति अजय देवदुषदाई॥

उस राक्षस के सौ पुत्र और दस भाई थे, वे खल थे, अजेय थे तथा देवताओं को दुःखदेने वाले थे।

प्रथमहिं भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देषि दुषारे॥
तेहि षल पाछिल बयरु संभारा। तापस नृप मिलि मंत्र विचारा॥

उनके कारण ब्राह्मणों सज्जनों तथा देवताओं को दुख हो रहा है, यह देख कर राजा भानुप्रताप ने उन सबों को रण में पहले ही मार दिया था, इस पिछले वैर का बदला लेने के लिए वह तपस्वी राजा से मिला और उन दोनों ने सलाह की।

जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावीबस न जान कछु राऊ॥

उन दोनों ने मिलकर वे ही उपाय किये, जिनसे शत्रु का नाश हो और राजा भी भावी से मोहित होकर उन लोगों के छल कपट न जान सके।

दो०–रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुं देत दुष रवि ससिहि, सिर अवसेषित राहु॥१७१॥

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए, आज भी राहु जिसका सिर ही बचा हुआ है वह भी सूर्य और चन्द्रमा को दुःख देता है।

तापसनृप निज सषहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातु धानु बोला सुष पाई॥

तपस्वी राजा अपने मित्र को देखकर उससे प्रसन्नतापूर्वक मिला, दोनों प्रसन्न हुए। तपस्वी राजा ने अपने मित्र को सब बातें सुना दीं, इससे प्रसन्न हो कर वह राक्षस बोला।

अब साधेउ रिपु सुनहु नरेसा। जो तुम कीन्ह मोर उपदेसा॥

राजन्, सुनिए अब मैं शत्रु को साधलूँगा, उसे अपने वश करलूँगा, यदि आप मेरे उपदेश के अनुसार कार्य करें।

परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधिखोई॥

सोच छोड़ कर तुम सो रहो अर्थात् निश्चिन्त हो जाओ क्योंकि विधि ने बिना दवा के ही रोग मिटा दिया।

कुलसमेत रिपुमूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई॥

कुल के साथ शत्रु का नाश करके मैं आज से चौथे दिन आकर मिलूँगा।

तापसनृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी॥

तपस्वी राजा को बहुत तरह से धीरज बँधाकर; वह कपटी और महाक्रोधी राक्षस चला।

भानुप्रतापहि बाजिसमेता। पहुँचायेसि छन माँझ निकेता॥
नृपहि नारिपहिं सयन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई॥

राजा भानुप्रताप को घोड़े के साथ एक ही क्षण में उस राक्षस ने उनके घर पहुँचा दिया। रानी के पास राजा को सुला दिया और घुड़साल में घोड़े को अच्छी तरह बाँध दिया।

दो०-राजा के उपरोहितहि, हरि लेइ गयउ बहोरि।
लेइ राखेसि गिरि खोह महँ, माया करि मतिभोरि॥१७२॥

पुनः राजा के पुरोहित को वहाँ से हर कर वह ले गया और माया के द्वारा उन्हें मतिहीन बना कर पर्वत की गुफा में रख दिया।

आपु बिरचि उपरोहितरूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥

वह राक्षस स्वयं पुरोहित का रूप बना कर उन पुरोहित जी की खाट पर जाकर सो रहा।

जागेउ नृप अनभये बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥
मुनिमहिमा मन महँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥

विहान होने के पहले ही राजा जाग गये, अपनेको अपने घर में देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने इस घटना को मुनि की महिमा समझी और वे धीरे से उठे जिसमें रानी जानने न पावें। गवँहि का अर्थ है धीरे से।

कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुरनर नारि न जानेउ केही॥

राजा घोड़े पर चढ़ कर वन में गये, उनको वन में जाते हुए नगर के किसी भी स्त्री पुरुष ने न जान पाया।

गये जामजुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥

दोपहर बीतने पर राजा लौट आये, नगर में घर घर उत्सव होने लगा और बधावे बजने लगे।

उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा॥

राजा ने जब अपने पुरोहित को देखा, तब वे बड़े विस्मित हुए और उन्हें वे सब काम स्मरण हुए।

जुगसम नृपहिं गये दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मतिलीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

राजा ने किसी प्रकार युग के समान तीन दिन बिताये, उनकी बुद्धि कपटी मुनि के चरणों में लग गयी थी। मौका देखकर पुरोहित भी आ गया और सब बातें कह कर राजा को समझाया अर्थात् अपना परिचय कराया।

दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रमबस रहा न चेत।
बरे तुरत सतसहस बर, विप्र कुटुंब समेत॥ १७३॥

राजा अपने गुरु को पहचान कर प्रसन्न हुए, उनकी बुद्धि मारी गयी थी, इसलिए उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहा, तुरन्त ही उन्होंने सौ हजार ब्राह्मणों को परिवार सहित निमन्त्रित किया।

उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जस स्रुति गाई॥

पुरोहित ने षड्रस तथा चार प्रकार का भोजन बनाया जैसा कि श्रुतियों में भोजन की विधि है। वे चार प्रकार के भोजन ये है—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य।

मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गन सकइ न कोई॥

उसने माया से रसोई बनायी, उसने अनेक व्यञ्जन बनाये जो गिने नहीं जा सकते थे।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्रमासु खल साँधा॥
भोजन कहँ सब बिप्र बुलाये। पग पखारि सादर बैठाये॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकास बानी तेहि काला॥

अनेक पशुओं का मांस भी उस दुष्ट ने बनाये और उसमें ब्राह्मण का मांस भी उस दुष्ट ने रख दिया। राजा ने सब ब्राह्मणों को भोजन के लिए बुलाया और उनके पैर धो कर आदर पूर्वक उन्हें बैठाया। राजा जब ब्राह्मणों को भोजन परसने लगे उस समय आकाशवाणी हुई।

बिप्रबृंद उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुरमासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावीबस न आव मुखबानी॥

हे ब्राह्मणों, तुम लोग उठ उठ कर अपने अपने घर जाओ, इस अन्न के खाने में बड़ी हानि है, अतएव यह अन्न मत खाओ। इस रसोई में ब्राह्मण का मांस बनाया गया है। इस आकाशवाणी पर विश्वास करके ब्राह्मण लोग उठ गये, राजा बड़े व्याकुल हुए, मोह के कारण उनकी बुद्धि पहले ही मारी गयी थी, भावी बुरी थी इसलिए वे कुछ बोल न सके।

दो०—बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥ १७४॥

तब क्रोध कर ब्राह्मण बोले, उन लोगों ने कुछ भी विचार नहीं किया, कहा—मूर्ख, जाओ अपने परिवार के साथ निशाचर हो जाओ।

छत्रबंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिये सहित समुदाई॥
ईश्वर राषा धर्म हमारा। जइहसि तैं समेत परिवारा॥

नीच क्षत्रिय, तुमने ब्राह्मणों को बुलाया और सबको नष्ट करना चाहा। पर ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की, अब तुम भी अपने परिवार के साथ जाओ राक्षस हो जाओ। नीच क्षत्रिय को क्षत्रबन्धु कहते हैं।

संवत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥

वर्ष के भीतर ही तुम्हारा नाश होगा, तुम्हारे कुल में जल देनेवाला भी कोई नहीं रह जायगा।

नृप सुनि साप विकल अतित्रासा। भइ बहोरिवरगिरा अकासा॥

ब्राह्मणों का शाप सुनकर राजा बहुत डरे और व्याकुल हुए, उसी समय आकाश से दूसरी वाणी हुई।

विप्रहु साप विचार न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित विप्र सब सुनि नभबानी। भूप गयउ जहँ भोजन पानी॥
तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥

पुनः आकाश वाणी ने कहा, ब्राह्मणो ने बिना विचारे ही शाप दिया है, क्योंकि इसमें राजा का कुछ अपराध नहीं है। चकित होकर ब्राह्मणों ने आदि से अन्त तक आकाश-वाणी सुनी, पुनः राजा वहां गये जहां भोजन बना था, वहां न तो भोजन था और न बनानेवाला वह ब्राह्मण ही था, राजा वहां से लौट आये और उनके मन में बड़ा दुःख हुआ।

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई॥

राजा ने सभी बातें—जो जो हुई थी वह ब्राह्मणों को सुनायी, डर कर तथा व्याकुल होकर वे भूमि पर गिर पड़े।

दो०—भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूपन तोर।
किये अन्यथा होइ नहिं, विप्र स्राप अति घोर॥ १७५॥

ब्राह्मणो ने कहा, राजन् भावी नहीं मिटती। यद्यपि इस विषय में

आपका दोष नहीं है। ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है, वह अन्यथा नहीं हो सकता। ब्राह्मणों ने जो कुछ कहा, उसका विपरीत नहीं हो सकता।

अस कहि सब महिदेव सिधाये। समाचार पुरलोगन पाये॥
सोचहिं दूपन दैवहि देहीं। विचरत हंस काग किय जेहीं॥

ऐसा कह कर ब्राह्मण लौट गये, अपने अपने घर गये, नगरवासियों ने भी इनकी खबर पायी। वे सब लोग दुःख करने लगे और भाग्य का दोष देने लगे, क्योंकि भाग्य ने ही हंस को काक बना दिया था।

उपरोहित हि भवन पहुंचाई। असुर तापसहि षबरि जनाई॥
तेहि पल जहँ तहँ पत्र पठाये। सजि सजि सेन भूप सब धाये॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। विविध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी॥

उस असुर ने पुरोहित को उनके घर पहुंचा कर सब बातें तपस्वी से जाकर कहीं। राजा के यहां जाकर उसने जो कुछ किया था वह सब उसने जाकर तापस को बतलाया। उस दुष्ट तपस्वी ने इधर उधर अपने परिचितों के पास पत्र भेजे और वे सब राजा सेना लेकर चढ़ दौड़े। उन लोगों ने नगारे बजाकर नगर घेर लिया, दोनों ओर से प्रतिदिन लड़ाई होने लगी, सभी वीर अपनी वीरता दिखाकर रण में खेत रहे, राजा भी भाई के साथ भूमि में गिर पड़े।

सत्यकेतुकुल कोउ नहि बांचा। विप्र स्राप किमि होइ असांचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जस पाई॥

सत्यकेतु के कुल में कोई भी नहीं बचा, ब्राह्मण शाप क्या कभी झूठा हो सकता है। जिन राजाओं ने चढ़ाई की थी, उन लोगों ने शत्रु को जीत कर नगर को पुनः बसाया और जय का यश पाकर वे सब अपने अपने नगर गये।

दो०-भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता वाम।
धूरि मेरु सम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम ॥१७६॥

याज्ञवल्क्य ने कहा, भरद्वाज मुने, विधाता जब जिसके प्रतिकूल होते हैं उसके लिए सुवर्ण का मेरु भी धूल के समान हो जाता है, पिता भी यम के समान हो जाता है और रस्सी सर्प के समान हो जाती है।

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भये निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम वीर वरिवंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन वलधामा॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भयउ बिमात्र वंधु लघु तासू॥
नाम विभीषन जेहि जगजाना। विष्णु भक्तविज्ञान निधाना॥

समय बीतते वह राजा अपने समाज के साथ निशाचर हो गये, उनके दस मस्तक और बीस भुजाएं हुईं, उनका नाम रावण हुआ, वे बड़े वीर हुए। राजा के छोटे भाई जिनका नाम अरिमर्दन था, वे कुम्भकर्ण नाम के राक्षस हुए और बड़े बलवान हुए। राजा का जो दीवान था जिसका नाम धर्मरुचि था वह रावण का सौतेला छोटा भाई हुआ। वह विभीषण नाम से संसार में प्रसिद्ध हुआ, वह विष्णुभक्त तथा ज्ञानी था।

रहे जो सुत सेवक नृप केरे। भये निसाचर घोर घनेरे॥
कामरूप खल जिनिस अनेका। कुटिल भयंकर विगतविवेका॥

राजा के पुत्र सेवक आदि जो थे वे सब भयानक निशाचर हुए और उनकी संख्या अनेक थी। वे अपनी इच्छा के अनुसार रूप धर सकते थे वे कुटिल भयंकर और विवेकहीन थे।

कृपारहित हिंसक सब पापी। वरनि न जाइ विश्वपरितापी॥

वे क्रूर हिंसक पापी थे, वे समस्त संसार को पीड़ा देनेवाले थे, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०-उपजे जदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्रापवस, भए सकल अघरूप॥ १७७॥

यद्यपि वे पुलस्त्य के पवित्र निर्मल और उत्तम कुल में उत्पन्न हुए थे तथापि ब्राह्मणशाप के कारण वे सब, पापों के रूप ही हुए।

(रावण आदि की तपस्या और सिद्धि)

कीन्ह विविध तप तीनिउ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गयउ निकट तप देषि विधाता। मांगहु वर प्रसन्न मैं ताता॥
करि विनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनुहु जगदीसा॥
हम काहु के मरहिं न मारे। बानर मनुज जात दुइ बारे॥

तीनों भाइयों ने भिन्न भिन्न और बड़ी कठिन तपस्या की, उन लोगों ने कितनी कठिन तपस्या की उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी तपस्या देखकर ब्रह्मा उनके पास गये और उन्होंने कहा, मैं प्रसन्न हूं, वर मांगो, दसशीस रावण ने विनय करके और ब्रह्मा के चरण पकड़ कर कहा, हे जगत के स्वामी सुनिए, वानर और मनुष्य इन दोनों जातियों को छोड़कर और किसी दूसरे के मारने से हम न मरें।

एवमस्तु तुम्ह बड़तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा॥

ब्रह्मा ने एवमस्तु कहा, उन्होंने कहा, तुम ने बड़ी तपस्या की है, इसलिए मैं ब्रह्मा तुम से मिलकर यह वर देता हूं।

पुनि प्रभु कुंभकरन पहि गयऊं। तेहि बिलोकि मन बिसमयभयऊ॥

पुनः प्रभु ब्रह्मा वहां से कुम्भकर्ण के पास गये उसको देखकर ब्रह्मा को बड़ा विस्मय हुआ।

जो एहि वल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मांगेसि नींद मास षट केरी॥

यदि यह खल प्रतिदिन आहार करेगा तो यह समस्त संसार उजड़ जायगा, इस समस्त संसार को यह खा जायगा। अतएव ब्रह्मा ने भगवती

शारदा को कुम्भकर्ण की बुद्धि फेरने के लिए प्रेरित किया, इससे शारदा के द्वारा बुद्धि नाश होने के कारण उसने छ महीने की नींद वर में मांगी।

दो०-गये विभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र वर मांगु।
तेहि मांगेउ भगवंत पद, कमल अमल अनुरागु॥१७८॥

वहां से वे विभीषण के पास गये और उन्होंने कहा, बेटा वर मांगो, उसने भगवान् के चरण कमलों में निर्मल अनुराग वर में मांगा।

तिन्हहिं देइ वर ब्रह्म सिधाये। हरषित ते अपने गृह आये॥
मयतनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारिललामा॥

उन्हें वर देकर ब्रह्मा लौटकर अपने घर चले गये, वे भी प्रसन्न होकर अपने घर गये। मय नामक दानव की कन्या मन्दोदरी थी, वह बड़ी सुन्दरी थी और स्त्रियों में श्रेष्ठ थी।

सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी। होइहि जातुधानपति-रानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥

मय ने वह कन्या लाकर रावण को दी, वह राक्षस राज की रानी हुई। अच्छी स्त्री पाकर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। पुनः रावण ने अपने दोनों भाइयों का व्याह किया।

गिरित्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अतिभारी॥
सोइ मय दानव बहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥
भोगावति जस अहिकुल वासा। अमरावति जस सक्र निवासा॥
तिन्हते अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका॥

समुद्र के बीच में त्रिकूट नाम का एक पर्वत है, वह ब्रह्मा का बनाया है बड़ा भारी है और दुर्गम है। मय दानव ने उस पर्वत को पुनः सजाया और सोने के अनेक भवन वहां बनाये। सर्पों की राजधानी जैसे भोगवती है जहां सर्पों का वास है, जैसे इन्द्र का निवासस्थान अमरावती है, उससे

अधिक रमणीय और अच्छी राजधानी बनायी, जिसका संसार प्रसिद्ध नाम लंका है।

दो०-पाई सिन्धु गंभीर अति, चारिहु दिसि फिरि आव।
कनक कोटि मनिग्रचित, दृढ़ बरनि न जाइ बनाव॥

गहरा समुद्र उसकी खाई था जो उसको चारों ओर से घेरे हुए था। उसके चारो ओर सुवर्ण का कोट बना हुआ था, जिसमें मणि जड़े हुए थे, जो बड़ा मजबूत था उसकी बनावट का वर्णन नहीं हो सकता।

हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस सोइ॥ १७९॥

जिस कल्प में जिसको भगवान् राक्षसराज बनाते हैं वही शूर प्रतापी और अतुल बलशाली सेना के साथ वहीं रहता है।

रहे तहां निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर संहारे॥
अब तहं रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥
दसमुष कतहुँ खबर असि पाई। सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई॥

वहां बड़े बड़े राक्षस वीर रहते थे। जिन्होंने युद्ध में देवताओं का नाश किया है। अब इन्द्र के भेजे करोड़ रक्षक रहते हैं जो यक्षपति के अनुचर हैं। रावण ने कहीं से यह खबर पायी, उस किले की बात उसने जानी, तब सेना सजाकर उसने गढ़ घेर लिया।

देषि निकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लेइ गयउ पराई॥
फिरि सब नगर दसानन देषा। गयउ सोच सुख भयउ विसेषा॥
सुंदर सहज अगम अनुगामी। कीन्हि तहां रावन रजधानी॥

बड़े वीर और बड़ी सेना देखकर यक्ष जीव लेकर भाग गये। दशानन ने घूम कर नगर को देखा, उसका सब दुःख दूर हुआ, वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उस स्थान को सुन्दर तथा अगम देखकर रावण ने वहां अपनी राजधानी बनायी।

जेहि जस जोग बांटि गृह दीन्हे। सुषी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुवेर पर धावा। पुष्पकजान जीति लेइ आवा॥

जो जिसके योग्य था उसको रावण ने वैसा घर दिया, इस प्रकार उसने सब राक्षसों को सुखी बनाया। एक बार उसने कुवेर पर आक्रमण किया और वहां से जीतकर वह पुष्पक विमान ले आया।

दो०-कौतुकहिं कैलास पुनि, लीन्हेसि लाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल, चला बहुत सुष पाइ॥१८०॥

पुनः खेलही खेल में जाकर उसने कैलास पर्वत को उठा लिया। मानो अपने बाहुओं के बल को तौल कर और बहुत सुखी होकर वह चला गया।

सुष संपति सब सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढत जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥

सुख, सम्पत्ति, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि, प्रतिष्टा, ये सब उसके प्रतिदिन नये नये बढ़ने लगे, जिस प्रकार लाभ होने से लोभ की वृद्धि होती है।

अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहँ नहिं प्रतिभट जगजाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। विस्व वेगि सब चौपट होई॥
समर धीर नहिं जाइ बषाना। तेहि सम अमित वीर बलवाना॥

उसका भाई कुम्भकर्ण बड़ा बली था। जिसका सामना करनेवाला कोई भी वीर संसार में नहीं था। वह मदिरा पीकर छः महीने तक सोता था और वह जब जागता था तो तीनो लोक भयभीत हो जाता था। यदि वह प्रतिदिन भोजन करता तो समस्त संसार शीघ्र ही चौपट हो जाता। वह रण में अचल था, जिसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, उसके समान अपरिमित बलवान वीर दूसरा नहीं था।

बारिदनाद जेठ सुत तासू। भटमहँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुष कोई। सुरपुर नितहि परावन होई॥

कुम्भकर्ण के बड़े भाई अर्थात् रावण के पुत्र का नाम मेघनाद था। जो संसार के वीरों में पहला समझा जाता था। कोई भी वीर उसका सामना नहीं कर सकता था, उसके भय से देवलोक में प्रतिदिन भगदड़ मचती थी।

दो०–कुमुष अकंपन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥१८१॥

कुमुख अकंपन कुलिशरद धूम्रकेतु अतिकाय आदि ऐसे अनेक वीर उसके यहां थे जिनमें एक एक समस्त संसार को जीत सकता था।

कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया॥

वे कामरूप थे, इच्छा से रूप बना सकते थे। अनेक प्रकार की माया जानते थे और स्वप्न में भी उनके धर्म न था और दया नहीं थी। छन्द के अनुरोध से "दया" दाया बनायी गयी है।

(रावणकृतपीड़ा)

दसमुष बैठ सभा एक बारा। देषि अमित आपन परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनइ को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मदसानी॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबिध बरूथा॥

रावण एक बार सभा में बैठा था, अपने बहुत बड़े परिवार को देख कर, पुत्रों का समूह नौकर चाकर और भी अनेक राक्षसों को देख तथा अपनी सेना देखकर अभिमानी रावण क्रोध के साथ बोला, उसका वचन मद से सना था। उसने कहा समस्त राक्षसों के दल सुनो, अनेक सेना हमारी शत्रु है।

ते सन्मुष नहि करहिं लराई। देषि सबल रिपु जाहिं पराई॥

वे सामने से लड़ाई नहीं करते, बलवान् शत्रु को देखकर भाग जाते हैं।

तिन्ह कर मरन एक विधि होई। कहउँ बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मष होम सराधा। इन कै जाइ करहु तुम बाधा॥

उनकी मृत्यु एक प्रकार से होगी, सो तुम को समझाकर मैं कहता हूं। ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन, श्राद्ध इन सबों में तुम लोग बाधा दो, इन सब का होना बन्द कराओ।

दो०—छुधाछीन बलहीन सुर, सहजहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ, भलीभाँति अपनाइ॥१८२॥

जब देवता भूख से व्याकुल होंगे निर्बल होंगे तब अनायास ही वे हम लोगों के सामने आ जायंगे या पकड़े जायंगे. तब मैं उन्हें या तो दण्ड दूंगा, या अपना कर छोड़ दूंगा। अर्थात् जो मेरी अधीनता स्वीकार करेंगे उन्हें छोड़ दूँगा।

मेघनाद कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिष बल बयरु बढ़ावा॥

पुनः रावण ने मेघनाद को बुलाया और उपदेश देकर देवताओं के प्रति उसने उसका द्वेष बढ़ाया।

जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना॥
तिन्हहिं जीति रन आनेहु बांधी। उठि सुत पितु अनुसासन कांधी॥

जो देवता युद्ध में धीर हैं बलवान हैं जिन्हें युद्ध करने का अभिमान है उनको रण में जीत कर बांध कर ले आओ। पिता की आज्ञा को कांधे चढ़ा कर पुत्र उठा।

एहि विधि सबहीं आज्ञा दीन्हीं। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही॥

इसी प्रकार की उसने अपने सब अनुचरों को आज्ञा दी, और वह स्वयं भी हाथ में गदा लेकर चला।

चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्रवत सुररवनी॥
रावन आवत सुनेउ सन्देहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥

रावण जब चलता है तब पृथिवी डोलती है और जब वह गर्जन करता

है, तब देवस्त्रियों का गर्भ गिर जाता है। देवताओं ने जब सुना कि रावण क्रोध करके आ रहा है तब भाग कर मेरु पर्वत की कन्दरा में उन लोगों ने शरण ली।

दिक्पालन्ह के लोक सोहाये। सूने सकल दसानन पाये॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि प्रचारी॥
रनमदमत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥

इन्द्र वरुण आदि दिक्पालों के समस्त लोकों को रावण ने सूना पाया। रावण के जाने के पहले ही दिक्पाल अपने अपने लोकों को छोड़ कर भाग गये थे। बार बार सिंहनाद करके वह देवताओं को गाली देने लगा और देवताओं के इस डरपोंकपन का प्रचार करने लगा। रणमद-मत्त रावण जब दिक्पालों के लोकों से लौटा तब उसने अपना प्रतिद्वन्दी चारों ओर ढूंढा, पर कोई मिला नहीं।

रवि ससि पवन वरुन धनधारी। अगिनकालजगसब अधिकारी॥
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥

सूर्य चन्द्रमा वायु वरुण कुबेर अग्नि काल यम तथा अन्य अधिकारी देवता किन्नर सिद्ध मनुष्य देवता इन सबका जबरदस्ती उसने सामना किया।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लग तनुधारी। दशमुखवसवर्त्ती नरनारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन विनीता॥

ब्रह्मा की सृष्टि में जितने शरीरधारी हैं वे सब रावण के अधीन हो गये। भयभीत होकर सभी रावण की आज्ञा मानते हैं, सभी प्रतिदिन विनय पूर्वक उसके चरणों को सिर नवाते हैं।

दो०-भुजबल विश्व वस्य करि, राषेसि कोउ न स्वतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र॥

रावण ने अपनी भुजाओं के बल से समस्त संसार को अपने अधीन कर लिया, कोई भी स्वतन्त्र न रहा। सभी रावण के माण्डलिक राजा हो

गये, चक्रवर्ती की अधीनता में किसी मण्डल विशेष का शासन करने वाले राजा माण्डलिक कहा जाता है और रावण अपने मन्त्र से अर्थात् अपने नियमों से—विधानों से राज्य करने लगा।

देव जच्छ गंधर्व नर, किन्नर नागकुमारि।
जीति वरी निज बाहुबल, बहु सुन्दर बरनारि ॥ १८३ ॥

देवता यक्ष गन्धर्व मनुष्य किन्नर तथा नागों की सुन्दर और उत्तम कन्याओं को बाहुबल से जीत कर उनसे उसने ब्याह किया।

इंद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ ॥

इन्द्रजित से रावण जो कुछ कहता था; उसको करने की वह जो आज्ञा देता था, वह सब मानो आज्ञा पाने के पहले ही वह कर देता था।

प्रथमहिं जिन कहँ आयसु दीन्हा। तिन्हकर चरित सुनहु को कीन्हा॥

रावण ने जिनको पहले आज्ञा दी थी, उन लोगों ने क्या किया सो सुनिए।

देषत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देवपरितापी ॥

वह पापी निशाचरों का झुंड भयानक आकार का था और वह देवताओं को सतानेवाला था।

करहिं उपद्रव असुरनिकाया। नाना रूप धरहिं करि माया ॥
जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेदप्रतिकूला ॥

वह राक्षसों का समूह चारों ओर उपद्रव करने लगा, इन लोगों ने माया के द्वारा अनेक रूप धर उपद्रव करना प्रारम्भ किया। जिससे धर्म का नाश हो वही सब वेदविरोधी कार्य वे करने लगे।

जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आगि लगावहिं॥
शुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जज्ञ जप दाना। सपनेहुँ सुनिय न वेद पुराना ॥

वे जिन गांवों में गौ और ब्राह्मणों को देखते थे, वहां वहां वे आग लगा

देते थे। उनके अत्याचारों से सभी जगह उत्तम काम बन्द हो गये, देवता गुरु और ब्राह्मण का सम्मान करना बन्द हो गया। भगवान की भक्ति यज्ञ जप दान तथा वेद पुराण आदि का श्रवण रावण राज्य में भूल कर भी कोई नहीं करता था।

छं०-जप जोग विरागा तप मखभागा स्रवन सुनइ दससीसा॥
आपुनि उठि धावइ रहइ न पावइ धरि सब घालय षीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धरम सुनिय नहिं काना॥
तेहि बहुविधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना॥

दसशीस जप योग वैराग्य तप यज्ञ आदि की बातें कानों से सुनते ही भागता था। स्वयं उठकर वहां दौड़ा जाता था, किसीको भी नहीं रहने देता था, क्रोध से सभी को मार डालता था. उस समय रावण के राज्य में इस प्रकारका लोगों का आचार भ्रष्ट हो गया, कानों से भी धर्म की बात सुनायी नहीं पड़ती थी। जो वेद पुराण कहता था उसको रावण अनेक प्रकार से डराता था और उसे देश से निकाल देता था,

सो०-बरनिन जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापहिं कवनि मिति॥

निशाचरो ने जो घोर अत्याचार किये जो अन्याय किये उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। हिंसापर उनका बड़ा प्रेम था उनके पापों का कोई परिमाण नहीं था, बेठिकाने वे पाप करते थे। मिति का परिमाण अर्थ है।

बाढ़े पल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुनसन करवावहिं सेवा॥
जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देषि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥

उस समय दुष्ट चोर जुआड़ी परधन और परस्त्री के लंपट बढ़ गये थे। माता पिता देवता आदि को कोई नहीं मानता था और

साधुओं से लोग सेवा करवाते थे। शिवजी ने कहा, भवानी, जिनके ऐसे आचरण हैं, उनको परिवार के साथ राक्षस जानो। इस प्रकार धर्म की अधिक हानि देखकर पृथिवी बहुत व्याकुल हुई और डर गयीं।

गिरिसरिसिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥
सकल धरम देखइ विपरीता। कहि न सकइ रावनभयभीता॥

पृथिवी ने मन में कहा—पर्वत, नदियाँ और समुद्रों का भार मुझे वैसा गुरु नहीं है, जैसा एक परद्रोही मुझे भारी मालूम होता है। इस समय सब धर्म में उलट पलट हो गया है, यह मैं देखती हूँ पर रावण के भय के मारे मैं कुछ कह नहीं सकती।

(पृथिवी का विलाप)

धेनुरूपधरि हृदय विचारी। गई तहां जहं सुरमुनिझारी॥

इन बातों का विचार कर पृथिवी गौ का रूप धर कर देवता और मुनियों के समुदाय में गयी। जहाँ अनेक देवता और मुनि थे; वहाँ गयी।

निज संताप सुनायसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

पृथिवी ने रो कर अपने दुःख की बात सबसे कह सुनायी पर उन लोगों से कुछ करते धरते न बना, वे सबके सब चुपही रहे।

छं०—सुरमुनिगंधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरंचि के लोका॥
सँग गो तनुधारी भूमि बिचारी परम विकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई॥
जाकर तैं दासी सो अविनासी हमरउ तोर सहाई॥

देवता, मुनि और गन्धर्व आदि सभी मिलकर ब्रह्मलोक को गये। भय और शोक से व्याकुल पृथिवी भी गौ का रूप धरकर उनके साथ गयी। उनको देखकर ब्रह्मा ने सब जान लिया, उनके आने का कारण ब्रह्मा को मालूम हो गया। ब्रह्मा ने कहा—मेरा कोई वश नहीं है, मेरे किये कुछ भी न होगा, तुम जिसकी दासी हो वेही अविनाशी हमारे और तुम्हारे दोनों के सहायक हैं।

सो०–धरनि धरहि मन धीर, कह विरंचि हरिपद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहि दारुन विपति॥

भगवान के चरण का स्मरण कर ब्रह्मा ने कहा, पृथिवी, तुम धैर्य धारण करो, भगवान् अपने भक्तों के दुःखों को जानते हैं और वेही कठिन से कठिन विपत्तियों को दूर करते हैं।

बैठे सुर सब करहिं विचारा। कहं पाइय प्रभु करिय पुकारा॥
पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि महँ बस सोई॥

सब देवता बैठकर इस बात का विचार करने लगे कि प्रभु कहाँ मिलेंगे जो हमलोग उनको अपना दुःख सुनावें। किसी किसी ने वैकुण्ठ चलने की सम्मति दी और किसी किसीने कहा कि भगवान क्षीरसमुद्र में रहते हैं। अतएव वहीं चलना चाहिए।

जाके हृदय भगति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहि रीती॥

जिसके हृदय में जैसी भक्ति तथा जैसा प्रेम होता है, भगवान् वहाँ और उसी भाव से सदा प्रकट होते हैं।

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥

शिवजी ने कहा, गिरिजा मैं भी उस समाज में था, अवसर पाकर मैंने एक बात कही।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना॥

भगवान् व्यापक हैं, वे सब जगह समान रूप से रहते हैं, वे प्रेम से प्रकट होते हैं यह मैं जानता हूँ।

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अगजगमयसबरहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

सब देशों, सब समयों, दिशाओं तथा विदिशाओं में प्रभु रहते हैं, वे कहाँ नहीं हैं सो बतलाइए, प्रभु स्थावर जङ्गम सब में व्यापक हैं, पर वे इन सबसे

पृथक हैं, वे सांसारिक विषयों से विरक्त हैं, वे प्रेम से प्रकट होते हैं, जिस प्रकार अग्नि प्रकट होती है।

मोर बचन सबके मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बषाना॥

मेरी बात सबको अच्छी लगी, ब्रह्मा ने साधु साधु कह कर मेरी प्रशंसा की।

दो०-सुनि विरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोर कर, सावधान मतिधीर॥ १८४॥

मेरी बात सुनकर ब्रह्मा के मन में बड़ा आनन्द हुआ, शरीर में रोमांच हो आया, आंखों से जल बहने लगा, बुद्धिमान ब्रह्मा सावधान होकर भगवान् की स्तुति करने लगे।

(देव विनय)

छं०-जय जय सुरनायक जनसुषदायक प्रनतपाल भगवंता।
गोद्विजहितकारी जय असुरारी सिंधुसुताप्रियकंता॥

हे देवताओं के स्वामी, आपकी जय हो, आप भक्तों के सुख देनेवाले हैं, शरण में आनेवालों के रक्षक आप भगवान् हैं, आप गौ और ब्राह्मणों की रक्षा करनेवाले हैं, आप राक्षसों के शत्रु हैं, आप लक्ष्मी के प्रिय स्वामी हैं, आपकी जय हो।

पालनसुरधरनी अद्भुतकरनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करहु अनुग्रह सोई॥

आप देवता और पृथिवी के पालन करनेवाले हैं, आपके कार्य विलक्षण हैं, कोई भी आपके रहस्यों को नहीं जानता, आप स्वाभाविक कृपालु हैं, दीनों पर दया करनेवाले हैं, आप मुझपर अनुग्रह करें।

जय जय अविनासी सब घटवासी व्यापक परमानंदा॥
अविगतगोतीतं चरितपुनीतं मायारहित मुकुंदा॥

आप अविनाशी हैं, आप सब हृदयों में रहनेवाले हैं, व्यापक हैं, पर-

मानन्द स्वरूप हैं। वाणी और इन्द्रियों से आप अतीत हैं, आपके चरित पवित्र हैं, आप माया से रहित मुकुन्द हैं, आप की जय हो।

जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृंदा॥
निसिवासर ध्यावहिं गुनगनगावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

विरागी, अनुरागी तथा मोह हीन मुनिगण दिन रात जिसका ध्यान करते हैं, जिसके गुणों को गाते हैं, वे सच्चिदानन्द आप ही हैं, आपकी जय हो।

जेहि सृष्टि उपाई विविध बनाई संग सहाय न दूजा॥
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥

आपने सृष्टि बनाने के तीन उपाय (सत्व रज और तम) बनाये, पर इस काम में आपका कोई सहायक न था और कोई साथी भी न था। आप पाप और दुःखों के शत्रु हैं, आप हम लोगों की चिन्ता कीजिए, हम आपकी भक्ति, पूजा आदि कुछ भी नहीं जानते।

जो भवभयभंजन मुनिमनरंजन ंडन विपतिबरूथा॥
मनवचक्रमबानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरयूथा॥

आप सांसारिक भय को दूर करनेवाले, मुनियों के मन के रंजन करनेवाले तथा विपत्तिसमूह को नाश करनेवाले हैं, वाचालता और बुद्धिमत्ता को छोड़ कर सब देवता मन वचन क्रम से आपकी शरण में आये हैं।

सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जाकहुँ कोइ न जाना॥

सरस्वती वेद, शेष तथा सब ऋषि जिसका कुछ तथ्य नहीं जानते।

जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना॥

वेद आपको दीनों के प्रिय बताते हैं, हे भगवान्, आप हम पर दया करें।

सब वारिधिमंदर सब विधिसुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा॥
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥

संसाररूपी समुद्र के लिए आप मन्दराचल के समान हैं, आप सब

प्रकार से सुन्दर हैं, आप गुणों की खान हैं, सुख के पुंज हैं। मुनि सिद्ध तथा सब देवता इस समय बड़े भयातुर हैं, वे भय से व्याकुल हैं, हे नाथ, आपके चरणों को नमस्कार करते हैं।

दो०—जानि सभय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ, हरति सोक संदेह ॥ १८५ ॥

देवता और भूमि को भयभीत जानकर तथा उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर गंभीर आकाशवाणी हुई, जो शोक और सन्देह का नाश करनेवाली थी।

(वरदान)

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नरवेसा॥

आकाशवाणी इस प्रकार थी, पृथिवी सिद्ध तथा देवेश आप लोग डरिए न, आप लोगों के लिए हम मनुष्य शरीर धारण करेंगे।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउं दिनकरवंस उदारा॥

महान सूर्यवंश में मैं अपने अंशों के साथ मनुष्य का अवतार लूंगा।

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्हकहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

पहले ही कश्यप और आदिति ने बहुत उग्र तपस्या की है और उनको मैंने वर दिया है। कश्यप और अदिति दशरथ और कौसल्या के रूप में अयोध्या में हैं, वे मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। उनके घर जाकर हम चारों भाई अवतार लेंगे।

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

नारद की सब बातों को मैं सत्य करूँगा और आद्या शक्ति के साथ अवतार लूंगा।

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना॥

पृथिवी के सब भारों को मैं उतारूंगा, देववृन्द, आप सब लोग निर्भय हो जाँय। इस आकाशवाणी के सुनने से देवता लौटे, उनका हृदय जुड़ा गया अर्थात् अपने दुःखों के दूर होने की आशा से वे प्रसन्न हुए।

तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा॥

तब ब्रह्मा ने पृथिवी को समझाया, पृथिवी का भय जाता रहा, उसके मन में भरोसा हुआ।

दो०—निज लोकहिं विरंचि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानरतनु धरि धरनि महँ, हरिपद सेवहु जाइ॥१८६॥

"आप लोग पृथिवी में जाकर, वानररूप धर कर भगवान के चरणों की सेवा करें" देवताओं को ऐसी शिक्षा देकर ब्रह्मा अपने लोक में चले गये।

गये देव सब निजनिज धामा। भूमि सहित मन कहं बिस्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरषे देव बिलंब न कीन्हा॥

सब देवता अपने अपने लोक में गये, पृथिवी भी अपने लोक में गयी। उन सब के मन में शान्ति थी, आकाशवाणी से उनकी घबराहट मिट गयी थी। ब्रह्मा ने जो कुछ आज्ञा दी थी, उसका पालन देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक किया, उसके पालन में उन लोगों ने विलंब न किया।

बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन्हपाहीं॥

बनचर का रूप धरकर देवतागण पृथिवी में उत्पन्न हुए, वे अतुलित बलवान और प्रतापी थे।

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरिमारग चितवहिं रणधीरा॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥

उन वीरों के अस्त्र पत्थर, वृक्ष और नख थे, वे सब भगवान के आने का मार्ग परखने लगे। अपनी अपनी सुन्दर सेना बनाकर वे सब पर्वतों तथा वनों में इधर उधर फैल कर रहने लगे।

यह सब रुचिर चरित मैं भाषा। अब सो सुनहु जो बीचहि राषा॥

यह सब सुन्दर चरित मैंने बतलाया, अब वह सुनो जो बीच में रह गया है। जिसका वर्णन मैंने नहीं किया है।

(राजा दशरथ का परिचय)

अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। वेदविदित तेहि दसरथ नाऊ॥
धर्मधुरंधर गुननिधि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँगपानी॥

अयोध्यापुरी में रघुकुल श्रेष्ठ राजा थे, वे वेद प्रसिद्ध थे और उनका नाम दशरथ था। वे धर्म धुरन्धर थे, गुणी थे तथा ज्ञानी थे, उनके हृदय में भगवान की भक्ति थी, उनकी बुद्धि भगवान में लगी रहती थी।

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल विनीत॥ १८७॥

कौसल्या आदि उनकी स्त्रियां थी, वे राजा की प्रिया थी, उनके सब आचरण पवित्र थे, वे पति की आज्ञानुवर्तिनी थीं, भगवान् के चरणों में उनकी प्रीति थी; वे विनययुक्त थीं।

(दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ)

एक बार भूपतिमनमाहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥

एक बार राजा के मनमें बड़ा दुःख हुआ कि मेरे कोई पुत्र नहीं है।

गुरु गृह गयेउ तुरत महिपाला। चरनलागि करिविनयविसाला॥

राजा शीघ्र ही गुरु के घर अर्थात् वसिष्ठजी के घर गये, उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और अधिक विनय करके बोले।

निजदुखसुखसबगुरुहिसुनायउ। कहि वसिष्टबहुविधिसमुझायउ॥

अपना सब दुःख, सुख राजा ने गुरु को सुनाया, राजा की बातें सुनकर वसिष्ठजी ने उनको अनेक प्रकार से समझाया।

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदितभगत भयहारी॥
सृङ्गी रिषिहि वसिष्ट बोलावा। पुत्रकाम सुभ जज्ञ करावा॥

वसिष्ठजी ने कहा, आप धैर्य धारण करें, आपके चार पुत्र होंगे; जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध तथा भक्तों के भय दूर करनेवाले होंगे। वसिष्ठजी ने शृङ्गी ऋषि को बुलाया और पुत्र की कामना से यज्ञ कराया।

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरूकरलीन्हे॥

मुनि ने भक्ति के साथ अग्नि में आहुति दी, तब हाथ में चरु लिये वहां से अग्नि प्रगट हुए।

जो वसिष्ट कछु हृदय विचारा। सकल काज भौ सिद्ध तुम्हारा॥

उन्होंने कहा, वसिष्ठ आपने हृदय में जो कुछ विचारा है, वह सब काम सिद्ध हुआ।

यह हवि बांटि देहु नृप जाई। जथाजोग जेहि भाग बनाई॥

पुनः उन्होंने राजा से कहा इस हवि का भाग बनाकर यथायोग्य अपनी रानियों को बांट दीजिए।

दो०–तब अदृश्य पावक भये, सकल सभहि समुझाइ।
परमानन्दमगन नृप, हरष न हृदय समाइ॥ १८८॥

इस प्रकार सब सभा को समझा कर अग्नि अदृश्य हो गये, इससे राजा बहुत प्रसन्न हुए, राजा को इतना हर्ष हुआ कि वह हृदय में नहीं समाया।

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहां चलि आई॥
अरध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कह नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेइ हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

तब राजा ने अपनी प्रिय रानियों को बुलाया, कौशल्या आदि वहाँ चली आयीं। उस हवि का आधा भाग राजा ने कौशल्या को दिया और आधे में दो भाग किया। राजा ने उसमें का एक भाग केकयी को दिया और जो बाकी था उसका पुनः दो भाग हुआ। कौशल्या ने कैकई का हाथ धर कर प्रसन्नतापूर्वक वह सुमित्रा को देदिया।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हर्षित सुष भारी॥

इस प्रकार सब रानियाँ गर्भवती हुईं और वे सब बहुत प्रसन्न हुईं।

जा दिन ते हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुष संपति छाये॥

जिस दिन से भगवान् गर्भ में आये उसी दिन से सब लोक में सुख सम्पति की वृद्धि होने लगी।

मंदिर महं सब राजहिं रानी। सोभासील तेज की षानी॥

वे शोभाशील और तेज की खान रानियाँ घर में शोभित होने लगीं।

सुषजुत कछुक काल चलिगयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ॥

इस प्रकार कुछ समय सुख से बीत गया, तब प्रभु के प्रगट होने का अवसर आया।

(रामजन्म)

दो०-जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, राम जनम सुषमूल॥ १८९॥

योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए, स्थावर और जंगम सब प्रसन्न हुए; क्योंकि राम का जन्म सुख का मूल है।

नवमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥

नौमी तिथि, पवित्र चैत्र का महीना, शुक्ल पक्ष, अभिजित ये भगवान को प्रिय हुये।

मध्य दिवस अति सीतल घामा। पावन काल लोक बिस्रामा॥

मध्यान्ह के समय जब न गर्मी थी और न सर्दी, वह पवित्र समय था, सब लोग विश्राम कर रहे थे।

सीतल मंद सुरभि वह वाऊ। हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ॥
वनकुसुमित गिरिगन मनिआरा। स्रवहिं सकलसरितामृतधारा॥

वायु शीतल, मंद और सुगन्धित बहती थी, देवता प्रसन्न थे, सज्जनों का मन उत्साहित हो रहा था। वन कुसुमित हो गये, पर्वत मणियों की

मान हुए, सब नदियों में अमृत की धारा बहने लगीं।

सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना॥

ब्रह्मा ने जब जाना कि वह अवसर आगया, भगवान् के प्रगट होने का समय आगया, तब वे सब देवताओं के साथ विमान सजाकर चले।

गगन बिमल संकुल सुरजूथा। गावहिं गुन गंधर्व बरूथा॥

निर्मल आकाश देवताओं के समूह से भर गया और गन्धर्वों का समूह गुणगान करने लगा।

बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुंदुभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुबिधिलावहिं निजनिजसेवा॥

देवगण अँजलियों में पुष्प भर भर कर बरसाने लगे और आकाश में खूब दुन्दुभि बजने लगे। नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और अपने को अनेक प्रकार की सेवाओं में लगाने लगे।

दो०—सुर समूह बिनती करि, पहुँचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक बिस्राम॥ १९०॥

देव समूह विनती करके अपने अपने स्थान पर गया, जगत् निवास भगवान् प्रगट हुए, जहाँ सब लोक विश्राम करता है।

(स्तुति)

छं०—भये प्रगट कृपाला परम दयाला कौसल्याहितकारी॥
हरषित महतारी मुनिमनहारी अदभुतरूप निहारी॥

कौशल्या के हितकारी परम दयालु तथा कृपालु भगवान् प्रकट हुए। मुनियों के मनहरण करनेवाला अद्भुत रूप देखकर माता प्रसन्न हुई।

लोचन अभिरामं तनुघनस्यामं निज आयुध भुज चारी॥
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

उनकी आँखें सुन्दर थीं, शरीर मेघ के समान श्याम था, चार भुजाएं थीं और उनमें उनके निज के अस्त्र थे, बनमाला का भूषण था, आँखें विशाल

थीं, खरारी—राक्षसों के शत्रु और शोभा के सिन्धु हैं।

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करउँ अनंता॥
मायागुनज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनंता॥

माता ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे अनन्त, मैं तुम्हारी स्तुति किस प्रकार करूं, क्योकि वेद और पुराण कहते हैं कि आप माया के गुणों अर्थात् सत्व रज और तम से तथा ज्ञानसे भी अतीत हैं और आप अमान हैं अर्थात् आपका कोई परिमाण नहीं है।

करुनासुषसागर सबगुन आगर जेहि गावहि स्रुति संता॥
जो मम हित लागी जनअनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

आप दया और सुख के समुद हैं, आप सब गुणों के आगर हैं, वेद और सज्जन आपका गुण गाते हैं। हे श्रीकान्त, हमारे कल्याण के लिए तथा भक्तों पर प्रेम के कारण आप प्रगट हुए हैं।

ब्रह्माण्डनिकाया निर्मितमाया रोम रोम प्रति वेद कहै॥

माया के द्वारा जो यह ब्रह्माण्डसमूह उत्पन्न हुआ है, वह सब आपके प्रत्येक रोम में वर्तमान हैं, यह बात वेद कहते हैं।

ममउर सो बासी यह उपहासी सुनत धीरमति थिर न रहै॥

वेही भगवान् मेरे गर्भ में रहे यह बात हंसी की है, इस बात को सुनने से धीरों की भी बुद्धि स्थिर नहीं रहती।

उपजा जब ज्ञाना प्रभुमुसुकाना चरित बहुतविधि कीन्ह चहै॥
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै॥

प्रभु ने जब देखा कि माता को ज्ञान हुआ, तब वे मुसकाये, भगवान् अनेक चरित करना चाहते हैं, इसलिए पूर्व जन्म की सुन्दर कथा कह कर उन्होंने माता को समझाया, जिससे वे प्रभु में पुत्र प्रेम करें।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा॥
कीजै सिसुलीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥

माता की वह बुद्धि जाती रही, वे बोली, बेटा, यह रूप छोड़ो, हे प्रिय-स्वभाव, आप बाललीला करें क्योंकि बाललीला का सुख अनुपम है।

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ॥
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

बुद्धिमान् भगवान माता की बात सुनकर रोने लगे, देवताओं के स्वामी बालक बन गये। जो इस चरित को गाते हैं, वे भगवान के लोक को पाते हैं और संसाररूपी कूप में नहीं पड़ते।

(जन्म और बाललीला)

दो०-विप्र धेनु सुर सत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥ १९१ ॥

ब्राह्मण, गौ, देवता तथा सज्जनों के हित के लिए भगवान ने मनुष्य रूप धारण किया। भगवान माया के गुण सत्व, रज, तम से तथा वाणी से परे हैं। अतएव अपनी इच्छा से ही उन्होंने अपना शरीर बनाया।

सुनि सिसुरुदन परमप्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥

बालक का रोना तथा प्रियवाणी सुनकर सब रानियां शीघ्रतापूर्वक वहाँ चली आयीं।

हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥

प्रसन्न होकर जहाँ तहाँ इस सम्वाद को सुनाने के लिए दासियाँ दौड़ीं, सब पुरवासी इस संवाद को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना ॥

पुत्र के जन्म होने का समाचार अपने कानों से सुनकर दसरथ ने ब्रह्मानन्द के समान सुख माना।

परम प्रेम मन, पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥

दशरथ के चित्त में पुत्र के प्रति परम प्रेम उत्पन्न हुआ शरीर रोमाँच-

चित हो गया, वे विह्वल हो गये, अपनी बुद्धि को स्थिर करके उठने लगे।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥

जिसके नाम सुनने से ही शुभ होता है, वेही प्रभु मेरे घरमें उत्पन्न हुए हैं यह दसरथ ने कहा।

परमानन्द पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु बाजा॥
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आये द्विजन्ह सहित नृप द्वारा॥

राजा परमानन्दित होकर बोले, बाजावालों को बुलाकर बाजा बजवाओ। गुरु वसिष्ठ के यहाँ भी बुलावा गया और वे ब्राह्मणों के साथ राजा के घर आये।

अनुपम बालक देषिन्हि जाई। रूपरासि गुन कहि न सिराई॥

उन लोगों ने जाकर उस अनुपम बालक को देखा, उसकी रूपराशि तथा गुणों को वर्णन करके समाप्त नहीं किया जा सकता।

दो०-तब नांदीमुष श्राद्ध करि, जात करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह॥ १९२॥

तब राजा ने नान्दीमुख नाम का श्राद्ध करके सब जात कर्म किया। पुत्रोत्पत्ति के समय किये जाने वाले कर्म जातकर्म कहे जाते हैं। सोना, गौ, वस्त्र, मणि आदि राजा ने ब्राह्मणों को दिये।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भांति बनावा॥
सुमनवृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानन्द मगन सब लोई॥
वृंद वृंद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किये उठि धाई॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

समस्त नगर में ध्वजा-पताका तथा तोरण दिखाई पड़ने लगे, उस समय नगर की शोभा कैसी बनी थी, यह कहा नहीं जा सकता। आकाश से पुष्प की वर्षा हुई, सब लोग ब्रह्मानन्द का सुख अनुभव करने लगे। स्वभाविक शृंगार किये अर्थात् जो जैसे थी वैसेही उठकर झुंड के झुंड

मिलकर स्त्रियाँ चलीं। सुवर्ण के भरे घड़े तथा मंगल थाल लेकर गाती हुई स्त्रियाँ राजमहल में गयीं।

करि आरति नेछावरि करही। बारबार सिसु चरनन्हि परहीं॥

बालक की आरति करके उन लोगों ने निछावर किया और बार बार बालक को प्रणाम किया।

मागध सूत बंदी गुनगायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥

गुण वर्णन करनेवाले मागध, सूत तथा बन्दी लोग रघुनाथ जी के पवित्रगुण गाने लगे।

सरवस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राषा नहिं ताहू॥

राजा ने अपना सब कुछ लोगों को दान दिया। जिन लोगों ने दान में जो पाया, वह उन लोगों ने भी अपने पास नहीं रखा।

मृदमद चन्दन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा॥

नगर की सब गलियों के बीच में कस्तूरी, चन्दन और केशर का कीचड़ हो गया।

दो०-गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुषमाकन्द।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द॥ १९३॥

सौन्दर्यधाम भगवान प्रगट हुए, इसलिए घर घर शुभ बधावे बजने लगे, नगर के स्त्री पुरुष सभी जो जहाँ थे सब प्रसन्न हुए।

(भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न का जन्म)

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत भईं ओऊ॥

केकय की कन्या कैकयी और सुमित्रा इन दोनों ने भी सुन्दर सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये।

वोह सुषसंपतिसमयसमाजा। कहिनसकइ सारदअहिराजा॥

उस समय सब लोगों को जो असीम सुख हुआ, उसका वर्णन सरस्वती और शेषनाग भी नहीं कर सकते।

अवधपुरी सोहइ एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥

अयोध्यापुरी इस प्रकार शोभित हुई मानो रात प्रभु से मिलने के लिए आयी हो। रात हुई दिन बीत गया।

देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी॥

पर सूर्य थे, इसलिए रात एकाएक न आ सकी, मानों सूर्य को देख कर वह सकुचा गयी, लज्जित हुई, अतएव वह सन्ध्या के रूप में देखी गयी, अर्थात् रात्रि ने सूर्य से लज्जित होकर सन्ध्या का रूप धारण किया।

अगरधूप बहु जनु अँधियारी। उड़हि अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मंदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जनु षगमुषर समय जनुसानी॥

अगर धूपबत्तियों से मानों अधेरा छा गया और अबीर के उड़ने से लाली छा गयी, घरों में जो मणि लगाये गये हैं वे तारों के समान मालूम होते हैं और राजा के भवन पर जो बड़ा कलस लगा है वह चन्द्रमा के समान मालूम होता है। राजा के भवन में जो कोमल स्वर में वेद ध्वनि हो रही है वही मानों पक्षियों की कलकल ध्वनि है।

कौतुक देषि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥

इन सब रामजन्म में होनेवाले कौतुकों को देख कर सूर्य नारायण भूल गये, अपना कर्त्तव्य उन्हें भूल गया, अतएव एक महीना बीत गया और उन्हें मालूम नहीं हुआ।

दो०-मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कवन विधि होइ॥ १९४॥

उस समय एक महीने का एक दिन हुआ, पर यह बात किसीको मालूम नहीं है, इसका रहस्य किसीको मालूम नहीं हुआ। अपने रथ के साथ सूर्य थक गये थे, उनसे चला ही नहीं जाता था, फिर रात किस प्रकार हो।

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥

दिनमणि सूर्य, भगवान का गुण गान करते हुए चले, पर इसका रहस्य किसीको मालूम नहीं हुआ। सूर्य क्यों ठहरे, कब तक ठहरे आदि बातों का पता किसीको नहीं लगा।

देषि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निजभागा॥

देवता मुनि और नाग महोत्सव देखकर अपने अपने घर चले, वे इस महोत्सव के देखने से अपने बड़े भाग्य का वर्णन करते जाते थे। उन लोगों को यह महोत्सव देखने को मिला, इससे उन लोगों ने अपने को भाग्यवान समझा।

अउरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अतिदृढ़मति तोरी॥

शिव ने पार्वती से कहा, गिरिजा मैं अपनी एक और चोरी कहता हूँ सुनो, भगवान में तुम्हारी बुद्धि दृढ़ है, इसलिए मैं कहता हूँ।

काक भुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानन्द प्रेम सुष फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥

काकभुंशुडि और मैं दोनों मनुष्य रूप में थे, इसलिए हम लोगों को कोई पहिचान न सका। हम लोग परमानन्दमय प्रेम में मग्न होकर बड़े सुख से विभोर होकर गलियों में घूमते रहे।

यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

पर यह उत्तम चरित वही जान सकता है, जिस पर रामजी की कृपा होती है।

तेहि अवसर जो जेहिविधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मनभावा॥

उस समय पुत्र जन्म के अवसर पर जो जिस प्रकार आया, जो, जो मनोरथ लेकर आया, राजा दशरथ ने उसको वही मनचाहा दिया।

गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाविधि चीरा॥

हाथी, रथ, घोड़ा, गौ, हीरा तथा अनेक प्रकारके वस्त्र राजा ने लोगों को दिये।

दो०—मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल तनय चिर जीवहु, तुलसिदास के ईस ॥ १९५ ॥

सभी का मन सन्तुष्ट हुआ, सभी इधर उधर जो जहाँ था वही आशीर्वाद देता था। लोग कहते थे कि राजा के सब लड़के चिरजीवी हों। तुलसीदास कहते हैं कि वे राज पुत्र मेरे स्वामी हैं।

कछुक दिवस बीते एहि भांती। जात न जानिय दिन अरु राती॥
नामकरन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ज्ञानी॥

इसी प्रकार आनन्द से कुछ दिन बीत गये। रात और दिन का बीतना किसीको मालूम न हुआ, दसवें दिन राजा ने अपने गुरु ज्ञानी मुनि वसिष्ठ को बुला भेजा, क्योंकि नामकरण करने का वही उपयुक्त समय है।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राषा॥

राजा ने मुनि की पूजा करके ऐसा कहा, मुनि जी, जो आपने सोच-रक्खा हो वह नाम धरिए।

इन्हके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमतिअनुरूपा॥

मुनि ने कहा, राजन् इनके अनेक नाम हैं और वे सभी सुन्दर हैं, पर मैं अपनी बुद्धि के अनुरूप इनका नाम बतलाऊँगा।

जो आनन्द सिंधु सुषरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुषधाम राम अस नामा। अषिललोक दायक बिस्रामा॥

जो आनन्द के समुद्र हैं और सुख की राशि हैं, जिस आनन्द समुद्र के एक कणसे तीनों लोक सींचा जाता है और तृप्त होता है, जो सब लोकों को विश्राम देनेवाले हैं, उन सुखधाम का राम ऐसा नाम है।

बिस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपुनासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

जो संसार का भरण पोषण करता है उसका नाम भरत होगा।

जिसके स्मरण करने से शत्रुओं का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन। (शत्रुघ्न), होगा, जो वेदों में भी प्रसिद्ध है।

दो०-लच्छनधाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राषा, लछिमन नाम उदार॥ १९६॥

जो उत्तम लक्षणों के धाम हैं, जो रामजी के प्रिय हैं, जो समस्त संसार के आधार हैं, गुरु वसिष्ठ ने उनका नाम लक्ष्मण रखा।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी। वेदतत्व नृप तव सुत चारी॥

गुरु ने खूब सोच विचार कर चारों राजपुत्रों का नाम रखा और राजा से कहा राजन् तुम्हारे चारों लड़के वेदतत्व हैं अर्थात् अवर्णनीय हैं।

मुनिधन जनसर्वस सिवप्राना। बालकेलि रस तेहि सुषमाना॥

राजन्, आपके ये लड़के जो वालखीला में ही सुख का अनुभव करते हैं, वे मुनियों के धन, भक्तों के सर्वस्व तथा शिवजी के प्राण स्वरूप हैं।

बारहि ते निजहित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥

वाल्यअवस्था से ही अपना हितकारक तथा स्वामी जानकर लक्ष्मण ने रामजी के चरणों में अनुराग किया।

भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बढ़ाई॥

भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने स्वामी और सेवक के समान आपस में प्रीति बढ़ाई।

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरषहिं छबि जननी तृन तोरी॥

सुन्दर और श्याम दोनों जोड़ियों की शोभा माता देखती हैं और तृण तोड़ती है। नजर न लगे इसलिए तृण तोड़ने की बात लिखी है।

(वाललीला)

चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुष सागर रामा॥
हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥
कबहूँ उछंग कबहुँ वर पालना। मातु दुलारहिं कहि प्रियललना॥

चारों भाई शील, रूप, और गुण के धाम हैं, तथापि इन चारों में भी रामचन्द्र सब से अधिक सुख के समुद्र हैं। इन बालकों के हृदय में अनुग्रह-रूपी चन्द्रमा का प्रकाश है और वह मनोहर हँसीरूपी किरणों से प्रकाशित होता है। कभी गोदी में, कभी सुन्दर पलने में माता-प्यारे ललना-कह कर इनका दुलार करती हैं।

दो०-व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेमभगतिबस, कौसल्या के गोद॥ १९७॥

जो ब्रह्म व्यापक हैं निरंजन निर्गुण और हर्षरहित हैं, वे ही आज प्रेम और भक्ति के वश होकर कौशल्या के गोद में हैं।

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नीलकंज बारिद गंभीरा॥

उनके श्याम शरीर की शोभा करोड़ों कामदेव की शोभा के समान है, उनकी श्यामता नीलकमल तथा मेघ के समान है।

अरुन चरन पंकज नष जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेष कुलिस ध्वज अंकुस सोहइ। नूपुरधुनि सुनि मुनि मनमोहइ॥

उनके चरण लालकमल के समान हैं और चरण के नखों की शोभा ऐसी मालूम होती है मानों कमल दल पर मोती टंके हैं। उनके चरण में कुलिश, ध्वजा और अंकुश की रेखा है और वे शोभा बढ़ा रही हैं, नूपुर (पैर का बजनेवाला एक गहना) की ध्वनि सुनकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता है। संसारविरागी मुनियों का मन जो मोहित कर सकता है, अवश्य ही उसकी मनोहरता अद्भुत होगी।

कटि किंकिनी उदर त्रय रेषा। नाभि गंभीर जान जिन देषा॥

कमर में करधनी, पेट में तीन रेखा और गहरी नाभि; इनकी शोभा वही जान सकता है, जिसने साक्षात् दर्शन किया है।

भुज बिसाल भूषनजुत भूरी। हिय हरिनष अति सोभारूरी॥

उनकी भुजाएँ विशाल हैं, उन बिशाल भुजाओं में खूब गहने पड़े हैं, हृदय पर वघनखा है (एक गहना) जिसकी शोभा बड़ी सुन्दर है।

उर मनिहार पदिक की सोभा। विप्रचरन देषत मनलोभा॥

वक्षःस्थल पर मणियों का हार है जिसमें चौकोर मणि जड़े हुए हैं और वहीं विप्रचरण के चिन्ह को देखकर मन लोभित हो जाता है। विप्र चरण का भगवान के वक्षःस्थल पर चिन्ह है यह बात प्रसिद्ध है।

कंबुकंठ अति चिवुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥

शंख के समान सुराहीदार गला और चिबुक अधिक शोभित होते हैं, मुखपर कामदेव के समान अनुपम शोभा छा रही है।

दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनइ पारे॥

अभी दो दो दाँत उत्पन्न हुए हैं, दो ऊपर और दो नीचे, ओष्ठ लाल है, नासिका और तिलक की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है।

सुंदर स्त्रवन सुचारु कपोला। अतिप्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

सुन्दर कान हैं, मनोहर कपोल—गाल हैं, और तुतलाकर उनका बोलना बड़ाही मधुर मालूम होता है। चिकने और घुंघराले सुन्दर बाल हैं, जिन्हें माता ने अनेक प्रकार से सवाँर कर बनाया है।

पीत झिगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरति मोहि भाई॥

शरीर में पीत झंगुलिया पहनायी है (बालकों के पहनने के एक वस्त्र को झंगुलिया कहते हैं) घुटनों और हाथ के सहारे उनका चलना मुझे बड़ा ही अच्छा लगता है। यह शिवजी कहते हैं।

रूप सकहिं नहिं कहि स्त्रुतिसेषा। सो जानहि सपनहुं जिन्ह देषा॥

उनके रूप का वर्णन श्रुतियाँ भी कहकर समाप्त नहीं कर सकतीं, पर स्वप्न में भी जिन लोगों ने इस मूर्ति का दर्शन किया है, वेही जान सकते हैं।

दो०–सुषसंदोह मोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत॥ १९८॥

सुख के सन्दोह—धाम भगवान् मोह के परे हैं, ज्ञान वाणी और इन्द्रियों के परे हैं तथापि कौशल्या और दशरथ के प्रेमवश होकर वेही पवित्र बाल लीला करते हैं।

एहि विधि राम जगत पितुमाता। कोसलपुरबासिन्ह सुषदाता॥
जिन्ह रघुनाथचरन रति मानी। तिन्हकी यह गति प्रगटभवानी॥

जगत् के पितामातास्वरूप अर्थात् जगत् के उत्पादक और रक्षक श्रीराम इस प्रकार बाललीला आदि के द्वारा पुरवासियों के सुखदाता हुए। जो लोग भगवान् के चरणों में प्रेम रखते हैं, वेही इस लीला का रहस्य जानते हैं। वेही इस बात को जानते हैं कि भगवान् स्वयं रामरूप से बाललीला कर रहे हैं। शिवजी ने यह पार्वती से कहा। अथवा भगवान् के चरणों में जो प्रेम रखते हैं उनकी यही गति होती है अर्थात् भगवान् उनको इसी प्रकार सुख देते हैं।

रघुपतिविमुष जतनकर कोरी। कवन सकइ भवबंधन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राषे। सो माया प्रभु सो भय माषे॥

जो लोग भगवान से विमुख हैं, वे चाहे हजार यत्न करें, पर वे सांसारिक बन्धन को दूर नहीं कर सकते। माया के बन्धन से दूर होने के लिए मायापति की सेवा आवश्यक है। जो स्थावर, जंगम विश्व को अपने अधीन करके रखती है, वह माया भी प्रभु के अधीन हैं, यह बात कही जाती है।

भृकुटि विलास नचावइ ताही। असप्रभु छाड़ि भजिय कहु काही॥
मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥
एहिविधिसिसुविनोदप्रभुकीन्हा। सकलनगरबासिन्हसुषदीन्हा॥
लेइ उछंग कबहुंक हलरावइ। कबहु पालने घालि झुलावइ॥

जिसकी आँख के इशारों से माया नाचती है, उस प्रभु को छोड़कर दूसरे प्रभु का भजन कोई क्यों करेगा। चतुराई छोड़कर मन, वचन, कर्म से उस प्रभु का भजन करो, भगवान अवश्य कृपा करेंगे। प्रभु ने इस प्रकार

वाललीला की और उसके द्वारा नगरवासियों को सुख दिया। माता कभी गोद में लेकर उन्हें लोकती हैं और कभी पलने पर रखकर झुलाती हैं।

दो०-प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान।

सुत सनेह बस माता, वाल चरित कर गान॥ १६६॥

कौशल्या प्रेम में मग्न हैं, इस कारण दिन कब बीतता है, रात कब बीतती है, इसका उन्हें कुछ पताही नहीं लगता, माताओं को पुत्र प्रेम के वश होने के कारण भगवान् के चरितों को भी वे वालचरित ही जानती हैं।

एक बार जननी अन्हवाये। करि सिंगार पलना पौढ़ाये॥
निजकुल इष्ट देव भगवाना। पूजाहेतु कीन्ह असनाना॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गइ जहँ पाक बनावा॥
वहुरि मातु तहवां चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥

एक बार माता ने स्नान कराया और शृंगार करके पलने पर पौढ़ा—सुला दिया। पुनः माता ने अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के लिए स्नान किया। उन्होंने पूजा का नैवेद्य चढ़ाया और आप स्वयं वहाँ गयीं जहाँ पकवान था, माता वहाँ से पुनः लौटकर पूजा के स्थान पर चली आयीं, यहाँ आकर उन्होंने अपने पुत्र को भोजन करते देखा।

गइ जननी सिसु पहँ भयभीता। देषा वाल तहाँ पुनि सूता॥
वहुरि आइ देषा सुत सोई। हृदय कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ वालक देषा। मति भ्रम मोर कि आन विसेषा॥

माता भयभीत होकर पुनः बालक के पास गयी, वहाँ माता ने बालक को सोते देखा। वहाँ से पुनः पूजा के स्थान पर आयी, वहाँ उन्होंने उसी बालक को भोजन करते देखा, यह दृश्य देखकर उनका हृदय काँपने लगा, मन चञ्चल हो गया। माता ने कहा—यहाँ और वहाँ दोनों जगह दो बालकों को देखती हूँ, क्या मुझे मतिभ्रम हो गया है, या कोई दूसरा कारण है?

देषि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

भगवान ने जब माता को व्याकुल देखा, तब मधुर मुसकान से हँसने लगे।

दो०—देषरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अषंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ २०० ॥

तब भगवान ने माता को अपना अद्भुत और अखंड अर्थात् विराट्‌रूप का दर्शन कराया, माता ने उनके प्रत्येक रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड देखा।

अगनित रवि शशि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन॥
काल करम गुन ज्ञान सुभाऊ। सो देषा जो सुना न काऊ॥

उस रूप में माता ने अनेक सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा देखे, तथा अनेक पर्वत, नदी, समुद्र, पृथिवी और वन देखे। माता ने उस रूप में कालकर्म तीनों गुण, ज्ञान और स्वभाव अर्थात् संचित कर्म के स्वरूप देखे, माता ने वहाँ वे सब चीजें देखीं जो किसीने सुनी भी न थीं।

देषी माया सब विधि गाढ़ी। अति सुभीत जोरे कर ठाढी॥

माता ने देखा कि जो माया सब प्रकार से प्रबल है, वह भी डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी है।

देषा जीव नचावइ जाही। देषी भगति जो छोरइ ताही॥

माया के द्वारा जीवों को परवश होकर उसके ईशारे पर नाचते देखा, और उस भक्ति को भी देखा जो उस माया के जाल को तोड़ देती है।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूंदि चरनन्हि सिर नावा॥

माता का शरीर पुलकित हो गय, मुख से बोली न आयी, वे आँखे बन्द कर उनके चरणों पर गिर पड़ीं।

विसमयवंति देषि महतारी। भये बहुरि सिसु रूप षरारी॥
अस्तुति, करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥
हरि जननी बहु विधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

प्रभु ने जब देखा कि माता विस्मित हो गयी हैं तब उन्होंने पुनः बालक

रूप धारण किया। वे स्तुति करने लगीं, उनके मनका यह भय नहीं गया कि मैं जगत् के पिता को अपना पुत्र समझती हूँ। भगवान् ने माता को अनेक प्रकार से समझाया और कहा, यह बात कहीं कहना मत।

दो०–बार बार कौसल्या, विनय करइ करि जोरि।
अब जनि कबहूँ व्यापइ, प्रभु मोहि माया तोरि ॥ २०१ ॥

बार बार कौशल्या हाथ जोड़कर विनय करने लगी और कहने लगीं अब आपकी माया मुझे कभी न हो, अर्थात् आपकी माया से मेरा ज्ञान कभी लुप्त न हो।

(संस्कार)

बाल चरित हरि बहु विधि कीन्हा। अति आनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भये परिजन सुखदाई॥

इस प्रकार भगवान ने अनेक प्रकार की बाललीला की और उनसे उन्होंने भक्तों को विशेष आनन्द दिया। कुछ दिन और बीतने पर नौकर चाकर आदि परिजनों को सुख देनेवाले चारो भाई बड़े हुए।

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥

गुरु ने आकर चूड़ाकरण संस्कार किया और ब्राह्मणों ने काफी दक्षिणा पायी।

परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा॥
मन क्रम वचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर विचर प्रभु सोई॥

चारो कुमार परम मनोहर, उदार चरित करते, फिरने लगे। जो मन वचन और कर्म के अगोचर हैं, वे ही प्रभु दशरथ के आगन में विचरते हैं।

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बालसमाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहि पराई॥

राजा जब भोजन करते हैं तब बालकों को बुलाते हैं, पर वे, साथी

बालकों का साथ छोड़कर नहीं आते। जब कौशल्या बुलाने जाती हैं तब प्रभु ठुनुक ठुमुक कर भाग जाते हैं।

निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥

वेदों ने जिसको नेति कह कर वर्णन किया, शिवने जिसका ठीक ठीक पता न पाया, उसीको माता ने दौड़कर ज़बरदस्ती पकड़ लिया।

धूसर धूर भरे तन आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

धूसर वर्ण होकर (मटमैलारंग) धूल भरे वे आये, राजा ने हँसकर उन्हें गोद बैठा लिया।

दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भागि चले किलकात मुख, दधि ओदन लपटाइ॥२०२॥

वे भोजन करने लगे, पर चित्त चञ्चल था, अतएव मौका मिलते ही किल किल करते भाग चले, मुँह में दही और भात लपटाया ही रहा।

बाल चरित अति सरल सुहाये। सारद सेष संभु स्रुति गाये॥

यह सरल बाल चरित बड़ाही सुन्दर मालूम होता है, जिसका वर्णन शारदा, शेष-नाग, शिव और श्रुतियों ने गाया है।

जिन्ह कर मन इन्हसन नहिं राता। ते जन बंचित किये बिधाता॥

जिनका मन इन बाललीलाओं से प्रसन्न नहीं होता, उनको विधाता ने ठग दिया है।

भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

जब चारो भाइ कुमार हुए अर्थात् उनकी अवस्था दसवर्ष के ऊपर हुई तब गुरु, पिता और माता ने उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया।

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब पाई॥

रामचन्द्र गुरु के घर पढ़ने के लिए गये, थोड़ेही समय उन्होंने सब विद्या पढ़ली।

जाकी सहज स्वास स्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुकभारी॥

चारो वेद जिनके निःश्वास रूप हैं, वे भगवान् पढ़ते हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है। जो सब विद्याओं का उत्पादक है, उसका पढ़ना आश्चर्य की बात है इसमें सन्देह नहीं।

विद्या विनयनिपुन गुनसीला। षेलहि षेल सकल नृपलीला॥

गुणशील रामचन्द्र जब विद्या विनय में निपुण हो गये, तब वे राजाओं के खेल शिकार आदि खेलने लगे।

करतल बान धनुष अति सोहा। देषत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह विहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

उनके हाथ में धनुष और बाण बड़ा भला मालूम होता था, उस रूप को देखकर स्थावर जंगम यह विश्व मोहित हो जाता था। जिन गलियों में वे चारो भाई घूमते थे, वहाँ के सब स्त्री-पुरुष थकित हो जाते थे अर्थात् चित्रवत् लिखे से रह जाते थे।

दो०-कोसलपुरवासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ ते प्रिय लागत, सब कहँ राम कृपाल॥ २०३॥

कृपालु रामचन्द्र कोशलपुर के रहनेवाले पुरुष स्त्री और बालकों को प्राणों से भी प्रिय लगते हैं।

बंधु सषा संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित षेलहि जाई॥
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहिं देषावहिं आनी॥

रामचन्द्र भाई और मित्रों को साथ लेकर प्रति दिन शिकार खेलने के लिए बन जाते हैं। मन में जानकर वे पवित्र मृगों को ही मारते थे और प्रतिदिन अपने मारे मृगों को लाकर राजा को दिखाते थे। स्मृतियों में जिनके माँस खाने का निषेध नहीं, वे पवित्र पशु हैं।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनुतजि सुरलोक सिधारे॥
अनुज सषा संग भोजन करहीं। मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं॥

जो मृग अर्थात् पशु राम के बाणों से मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर

सुरलोक चले जाते थे। रामचन्द्र अपने छोटे भाईयों तथा मित्रों के साथ भोजन करते थे और पिता तथा माता की आज्ञा के अनुसार चलते थे।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुरलोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥

नगरवासी जिस तरह से सुखी होते हैं, कृपानिधि रामचन्द्रजी वही संयोग—वही उपाय करते हैं।

बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥

रामजी मन लगा कर वेद और पुराणों की कथा सुनते हैं तथा स्वयं वही कथाएँ अपने भाइयों को समझा कर कहते हैं।

प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु माँगि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

रामजी प्रातःकाल उठते हैं और माता पिता तथा गुरु को प्रणाम करते हैं। दशरथ से आज्ञा लेकर नगर सम्बन्धी कार्यों को करते हैं, रामजी के इन कार्यों को देखकर राजा मन ही मन प्रसन्न होते हैं।

दो०—ब्यापक अकल अनीह, अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप॥ २०५॥

जो व्यापक, अखण्ड, वाञ्छारहित, जन्मरहित, गुणरहित हैं तथा जिनके न नाम है और न रूप है, वे भक्तों के लिए अनेक अद्भुत चरित्र करते हैं।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥

यह सब चरित मैं कहाँ तक गाऊँ, बाललीला बहुत अधिक है, उन सब का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ, अब आगे की कथा मैं कहता हूँ मन लगाकर सुनो।

(विश्वामित्र का आगमन और रामलक्ष्मण की याचना)

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आस्रम जानी॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥

देषत जज्ञ निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुष पावहिं॥
गाधि तनय मन चिंता व्यापी। हरि विनु मरिहि न निसिचरपापी॥

महामुनि विश्वामित्र बड़े ज्ञानी थे से अच्छा आश्रम देखकर एक वनमें रहते थे। उसी आश्रम में मुनि जप यज्ञ योग आदि करते थे, पर सुबाहु और मारीच नामक राक्षसों से बहुत डरते थे। वे राक्षस जब यज्ञ देखते थे तभी दौड़ते थे और उपद्रव करने लगते थे जिससे मुनि दुःख पाते थे। गाधितनय अर्थात् विश्वामित्र के मनमें चिंता हुई और उन्होंने निश्चय किया कि भगवान के विना ये पापी राक्षस मरेंगे नहीं।

तव मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

तव मुनि श्रेष्ठ ने अपने मनमें विचार किया कि भगवान ने पृथिवी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया है।

एहू मिस देषउँ पद जाई। करि विनती आनेउ दोउ भाई॥

इस काज से भी जाकर चरणों का दर्शन करूं और प्रार्थना करके दोनों भाइयों को ले आऊँ।

ज्ञान विराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देषव भरि नयना॥

ज्ञान वैराग्य आदि सब गुणों के जो स्थान हैं, उन प्रभु को जाकर मैं भर आँखों देखूंगा। विश्वामित्रजी ने इस प्रकार अपने मनहीमन मनोरथ किया।

दो०–वहु विधि करत मनोरथहिं, जात लागि नहिं वार।
करि मज्जन सरजू जल, गये भूप दरवार॥ २०५॥

इस प्रकार अनेक तरह के मनोरथ करने के कारण विश्वामित्र को अयोध्या जाते विलम्ब नहीं हुआ। वे सरयूजी के जल में स्नान करके राजा के दरबार में गये।

मुनि आगमन सुना जव राजा। मिलन गयउ लेइ विप्र समाजा॥

राजा ने जब मुनि के आने की खबर सुनी, तब वे ब्राह्मणों को लेकर उनसे मिलने गये।

करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा॥
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा॥

राजा ने दण्डवत करके राजा का सम्मान किया और अपने आसन पर लाकर उन्हें बैठाया। राजा ने मुनि के चरण धोये और उनकी पूजा की, और आज मेरे समान कोई धन्य नहीं है। मुनि को अनेक प्रकार के भोजन कराये इस आदर सत्कार से मुनि ने अपने मनमें बहुत सुख पाया।

पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥

पुनः राजा ने अपने चारो पुत्रों को मुनि के चरणों में गिराया, रामजी को देखने से मुनि अपने शरीर की सुध बुध भूल गये।

भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

रामचन्द्र के मुख की शोभा देखकर मुनि मगन हो गये, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर चकोर मगन हो जाता है, वह अपनी सुध बुध भूल जाता है।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि असि कृपा न कीन्हेहु काऊ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

तब मन में प्रसन्न होकर राजा ने कहा, मुनि, आपके समान किसीने भी कृपा नहीं की, महाराज किसलिए आपका आगमन हुआ है कहिए, मैं आपकी आज्ञा के पालन करने में विलम्ब न करूँगा।

असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥

मुनि ने कहा, राजन, राक्षस मुझे सताते हैं, अतएव नृप, मैं आपसे यही माँगता हूँ कि—

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा

छोटे भाई अर्थात् लक्ष्मण के साथ रामचन्द्रजी को आप दें, जिससे राक्षसों का वध हो और मैं कृतार्थ होऊं।

दो०-देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम कौ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥२०६॥

हे भूप, प्रसन्न होकर आप अपने पुत्रों को मुझे दें, मोहजनित अज्ञान को छोड़ दीजिए, प्रभु, आपको धर्म होगा और आपका सुयश बढ़ेगा और इनका अर्थात् इन कुमारों का भी कल्याण होगा,

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी॥

मुनि के इस अप्रिय वचन को सुनकर राजा का हृदय कांप गया और इनका मुंह उतर गया।

चौथेपन पायउं सुत चारी। विप्र वचन नहिं कहेहु विचारी॥

राजा ने कहा चौथेपन अर्थात् वृद्ध अवस्था में मैंने चार पुत्र पाये, विप्र आपने विचार कर वचन न कहे, अर्थात् दोनों पुत्रों को मांगना आपका कार्य विचारपूर्ण नहीं है। अथवा राजा कहते हैं कि मैंने मुनि को विचार कर वचन न कहे। राजा ने पहले मुनिकी आज्ञा की पालन की प्रतिज्ञा की है।

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सरवस देउँ आजु सह रोसा॥

राजा ने कहा, भूमि मांगिए, गो धन खजाना अथवा मेरा सर्वस्व मांगिए, मैं देता हूं। यह मैं सहरोष कहता हूं अर्थात् सत्य प्रतिज्ञा कर के कहता हूं अथवा सहरोस का अर्थ है क्रोध को सह कर, विना क्रोध किये।

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एकमाहीं॥

शरीर और प्राण से बढ़ कर मनुष्यों को और कोई प्रिय वस्तु नहीं है, पर मुनि महराज, यदि आप यह भी माँगे तो मैं पलक माँजते देता हूँ।

सब सुत प्रिय प्रानन की नाई। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥

सभी लड़के मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय हैं, पर महराज, राम को देते मुझ से नहीं बनेगा।

कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुंदर सुत परम किसोरा ॥

महाराज, कहाँ भयानक और कठोर राक्षस, तथा कहाँ कोमल और किशोर अवस्था का मेरा पुत्र !

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी । हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी ॥

राजा का वचन सुन कर जो प्रेम रस में सना हुआ था ज्ञानी मुनिने अपने मन में बड़ा सुख माना ।

तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा । नृप संदेह नास कहँ पावा ॥

तब वसिष्ठ ने बहुत समझाया, रामजी के स्वरूप का यथार्थ वर्णन किया, जिससे राजा का सन्देह नष्ट हुआ । रामजी सुकुमार हैं, बालक हैं, इस कारण वे राक्षसों का सामना नहीं कर सकते इस प्रकार के सन्देह दूर हुए ।

अति आदर दोउ तनय बोलाये । हृदय लाइ बहु भाँति सिखाये ॥

राजा ने बड़े आदर से दोनों लड़कों को बुलाया और छाती से लगाकर उन्होंने अनेक प्रकार की उन्हें शिक्षा दी ।

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

राजा ने कहा, हे नाथ, ये दोनों लड़के मेरे प्राण हैं, अब इनके आपही पिता हैं दूसरा नहीं । अर्थात् पिता के समान आप इनकी देख रेख कीजिएगा ।

(रामलक्ष्मण का मुनि के साथ गमन मुनिमखरक्षा)

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस ।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥२०७ ॥

सो०—पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनिभयहरन ।
कृपासिंधु मति धीर, अखिल बिस्व कारन करन ॥

राजा ने अनेक आशीर्वाद देकर अपने पुत्र ऋषि को सौंप दिये, तब रामजी माता के यहाँ गये और माता को प्रणाम कर के चले । दोनों वीर,

जो पुरुषों में सिंह, श्रेष्ठ हैं, मुनि के भय दूर करनेवाले हैं, कृपा के समुद्र हैं, धीर बुद्धि हैं और समस्त संसार के कारण के भी कारण हैं, वे चले।

अरुननयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥

उनकी दोनों आँखे लाल हैं, दोनों बाहु विशाल हैं और शरीर नील कमल तथा तमाल वृक्ष के समान श्याम है।

कटि पटपीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि लगि पिता तजेउ भगवाना॥

कमर में पीत वस्त्र और सुन्दर तरकस कसे हैं तथा दोनों हाथों में सुन्दर धनुष बाण है। दोनों भाई राम और लछमण श्याम और गौर वर्ण के हैं। इनको पाकर विश्वामित्र ने बड़ी भारी निधि पायी है। निधि खजाने को कहते हैं। महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, तथा खर्व ये नौ निधि प्रसिद्ध हैं। विश्वामित्र ने अपने मन में कहा, प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं अर्थात ब्राह्मणों में इनकी भक्ति है, क्योंकि इन भगवान ने मेरे लिए अपने पिता का त्याग किया है।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥

मुनि चले जाते हैं, उन्होंने रामजी को ताड़का दिखायी, सुनकर अर्थात मुनि राजपुत्रों को मुझे दिखाते हैं, इन राज पुत्रों के द्वारा मेरा अनिष्ट कराना चाहते हैं, यह जानकर ताड़का राक्षसी क्रोध कर उनकी ओर दौड़ी, उसने उन पर आक्रमण किया।

एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

भगवान ने एकही बाण में उसके प्राण हर लिये, और उसे दया का पात्र जानकर अपना पद दिया।

तबरिषि निजनाथहि जियचीन्हो। विद्यानिधि कहँ विद्यादीन्ही॥

तब ऋषि ने अपने नाथ को पहँचाना, ताड़का के मारने से उन्होंने

अपने मन में निश्चय किया कि यही मेरे स्वामी भगवान हैं। ऋषि ने विद्या प्रभुको सिखा दिया। रामचन्द्र स्वयं विद्यासमुद्र हैं, पर उनको मुनि ने विद्या सिखायी।

जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा॥

मुनि की सिखायी उस विद्या के प्रभाव से भूख और प्यास की पीड़ा छूट गयी, शरीर में अतुलबल तथा तेज प्रकाशित हुआ।

दो०—आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन, दीन्ह भगत हित जानि॥ २०८॥

मुनि ने सब आयुध अस्त्र शस्त्र आदि उनको दे दिये, और वे प्रभुको अपने आश्रम ले आये और भक्तों के हितकारी भगवान को जाने हुए कन्द मूल फल आदि भोजन के लिए दिये। जानि का अन्वय कन्द मूल फल आदि के साथ ठीक होता है। भक्तहितकारी जानकर भोजन दिया; यह अन्वय ठीक नहीं, क्योंकि भोजन देने के लिए भक्तहितकारी होना कोई खास अर्थ नहीं रखता।

प्रात कहा मुनिसन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥

रघुराई श्रीरामचन्द्र ने प्रातः काल मुनिसे कहा कि आप निर्भय होकर राक्षसों के विघ्नों का डर छोड़कर यज्ञ करें। रामजी की यह भरोसे की बात सुनकर मुनि यज्ञ करने लगे, और स्वयं रामचन्द्रजी उनके यज्ञ की रक्षा करने लगे।

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

सुनकर अर्थात मुनि यज्ञ कर रहे हैं यह बात सुन कर मुनियोंसे द्रोह करनेवाला क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। रामजी ने बिना फल-नोक के बाण से उसे मारा, फल, बाण के अग्र भाग को कहते

है, उसीका अपभ्रंस है फिर। उससे वह राक्षस सौ योजन की दूरी पर समुद्र के पार चला गया। सौ योजन का ४०० सौ कोस होता है।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु संहारा॥

पुन अग्नि वाण से रामजी ने सुबाहु नामक राक्षस को जो मारीच का साथी था, मारा और रामजी के छोटे भाई लछमण ने राक्षसों की सेना का नाश किया।

मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनिझारी॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि विप्रन्ह पर दाया॥

द्विजों को अर्थात् वैदिक कर्म करनेवालों को निर्भय करने वाले भगवान ने असुरों का नाश किया, इससे प्रसन्न होकर देवता और मुनि उनकी स्तुति करने लगे। कुछ दिनों तक रामचन्द्र ब्राह्मणों पर दया कर के वहीं रहे।

भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

यद्यपि रामचन्द्रजी सभी जानते हैं तथापि ब्राह्मणों ने भक्ति हेतु अनेक पुरानी कथाएं उनको सुनायी।

(जनकपुर के लिए प्रस्थान)

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥

तब विश्वामित्र मुनि ने आदरपूर्वक रामचन्द्रजी को समझा कर कहा कि प्रभु, हम लोग चलकर एक चरित देखें।

धनुष जज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥

रघुकुल के स्वामी भगवान रामचन्द्र धनुषयज्ञ की बात सुनकर प्रसन्नता पूर्वक मुनिश्रेष्ठ के साथ चले।

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही विसेषी॥

उन लोगों ने मार्ग में एक आश्रम देखा, पर पशु पक्षी जीव जंतु

आदि वहाँ कुछ भी नहीं थे। वहाँ एक शिला (पत्थर की चट्टान) देखकर प्रभु ने मुनि से उसके संबंध में पूछा, मुनि ने सभी कथा विस्तारपूर्वक कही*।

(अहल्या का उद्धार)

दो०-गौतम नारी श्रापबस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥२०९॥

मुनि ने कहा, हे वीर, गौतम की स्त्री अहल्या ने शापवश पत्थर का शरीर धारण किया है, हे रघुवीर, वह आपके चरण कमल की रज चाहती है, आप उस पर कृपा करें।

छं०-परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुख दायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥

प्राणियों के शोक हर करनेवाले पवित्र चरणों के स्पर्श होते ही उस शिला में से, एक तपस्विनी सी प्रकट हुई। भक्तों को सुख देने वाले रामचन्द्र को देखकर वह हाथ जोड़ कर सामने खड़ी हो गई।

* अहल्या के शिला होने की कथा इस प्रकार विश्वामित्र ने कही। अहल्या एक बड़ी सुन्दरी कन्या थी, उसके चाहनेवालों की कमी नहीं थी। पर वह गौतम ऋषि के साथ ब्याही गयी। यह बात उसके चाहनेवालों को खटकी, पर वे कर क्या सकते थे और सब लोगों ने तो सन्तोष कर लिया, पर इन्द्र सन्तोष करनेवाले नहीं हैं। उनका क्षोभ चलता रहा। एक दिन प्रातः काल मुनि स्नान करने गये हुए थे, उस समय इन्द्र ने मुनिभेष धर कर उनकी कुटी में प्रवेश किया और अपना मनोरथ पूरा किया। इन्द्र वहाँ से जा रहे थे, उसी समय मुनि अपनी कुटी पर आये, इन्द्र को उस वेष में देखते ही मुनि सब बातें समझ गये। उन्होंने इन्द्र को भी शाप दिया और अहल्या को भी। मुनि के शाप से इन्द्र के शरीर में हजार भग हो गये और अहल्या पत्थर हो गयी, उसकी मानवी चेतना का नाश हो गया।

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुष नहिं आवइ बचन कही ॥
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार वही ॥
धीरजु मन कीना प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ॥

अतिशय प्रेम के कारण वह अधीर हो गयी, उसका शरीर पुलकित हो गया, मुँह से वचन नहीं निकल सका, उसने अपने को बड़ भागी समझा। वह भगवान् के चरणों पर पड़ गयी, उसकी आँखों से जल-धारा बहने लगी, उसने अपने को सम्भाला, तब वह भगवान् को पहचान सकी और भगवान की कृपा से उसे भक्ति मिली।

अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ज्ञानगम्य जय रघुराई ॥
मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुष दाई ॥
राजीव विलोचन भव-भय-मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥

उसने बड़ी पवित्र वाणी से स्तुति प्रारम्भ की। उसने कहा, रघुराई, आपकी जय हो, आप ज्ञान के द्वारा जाने जा सकते हैं। मैं अपवित्र स्त्री हूँ, आप जगत् को पवित्र करने वाले हैं, रावण के विनासक हैं और अपने भक्तों को सुख देनेवाले हैं। हे कमल लोचन, हे संसार के दुःख दूर करने वाले, मैं आपकी शरण आयी हूँ, आप मेरी रक्षा करें।

मुनिस्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा-परम अनुग्रह मैं माना ॥
देषे भर लोचन हरि भवमोचन इहै लाभ संकर जाना ॥

उस स्त्री ने कहा, मुनि गौतम ने जो मुझे शाप दिया, वह बड़ा अच्छा किया, उसे मैं उनकी दया समझती हूँ, जिससे संसार बन्धन दूर करने वाले भगवान् को मैं भर आँखों देख रही हूँ। शिवजी भी भगवान् के दर्शन को बड़ा लाभ समझते हैं।

विनती प्रभु मोरी मैं मतिभोरी नाथ न मागौं वर आना ॥
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥

प्रभु, मेरी यही प्रार्थना है, मैं अल्प बुद्धि की हूँ, मैं आप से और कोई

वर नहीं चाहती, आपके चरण कमलों के पराग-रस का अनुराग के साथ मेरा मनरूपी भ्रमर पान करे, बस यही मेरा वर है।

जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ॥
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥

जिन चरणों से परम पवित्र देवनदी गंगा उत्पन्न हुई और जिन्हें शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण किया, जिन चरण कमलों को ब्रह्मा पूजते हैं, वेही चरण कमल, कृपालु हरि ने मेरे मस्तक पर रक्खे।

एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरिचरन परी ॥
जो अति मन भावा सो बर पावा गइ पतिलोक अनंद भरी ॥

इस प्रकार बारबार भगवान् के चरणों पर पड़ कर, गौतम की स्त्री अहल्या चली गयी, जो उसके मन को अत्यन्त प्रिय है, वही वर उसने पाया और आनन्दित होकर वह पतिलोक को गयी।

दो०—अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ ताहि भजु, छाँड़ि कपट जंजाल ॥ २१० ॥

भगवान् ऐसे दीनों के मित्र हैं और बिना किसी कारण से दयालु हैं, तुलसीदास कहते हैं कि उस भगवान् को हे शठ, कपट-जंजाल छोड़कर भजो।

चले राम लछिमन मुनि संगा। गये जहाँ जगपावनि गंगा ॥

राम और लक्ष्मण मुनि के साथ आगे चले, जगत् को पवित्र करने वाली गंगाजी जहाँ थीं, वहाँ वे आकर पहुँच गये।

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। बिबिध दान महिदेवन्ह पाये ॥

राजा गाधीके पुत्र विश्वामित्र ने वह सब कथा सुनायी, जिस प्रकार गंगा*

* सूर्य वंशी राजा सगर बड़े प्रतापी थे, वे अपनी राजधानी अयोध्यामें रह कर धर्मपूर्वक प्रजापालन करते थे। इस प्रकार उनकी अवस्था बहुत बड़ी हो गयी, पर उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। इससे वे बड़े दुःखी रहने लगे। एक दिन

उन्होंने मन्त्रियों से अपने दुःख की बात कही। मन्त्रियों की सलाह से वे अपनी दोनों रानियों के साथ बन में गये और वहाँ जाकर तपस्या करने लगे। राजा की तपस्या से प्रसन्न होकर भृगु ऋषिने उन्हें वर दिया कि आपको एक रानी से एक और एक से साठ हज़ार पुत्र होंगे। इस वर से प्रसन्न होकर राजा अपने घर आये और राज्य का पालन करने लगे। कुछ दिन बीतने पर राजा की बड़ी रानी के एक पुत्र हुआ। जिसका नाम असमंजस रखा गया और छोटी रानी से साठ हजार पुत्र हुए। वे सब क्रमशः बढ़े। असमंजस बड़ा उद्धत स्वभाव का था, लोगों को पीड़ा देने में उसे बड़ा आनन्द आता था। जब वह बड़ा हुआ तब नगरवासियों के लड़कों को पकड़ पकड़ कर जलमें फेंक देता और जब वे डूबते तब वह खूब हँसता। उसके इस अत्याचार से प्रजा लोग हाहाकार करने लगे। राजा को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने असमंजस को राज्य से निकाल दिया। असमंजस का एक पुत्र अंशुमान था; जो बड़ा धर्मिष्ठ और सदाचारी था। इस प्रकार पुत्र पौत्र युक्त होकर, राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करना प्रारम्भ किया। यज्ञ के लिए घोड़ा छोड़ा गया। इन्द्र को भय हुआ कि इस यज्ञ के पूरा होतेही सगर हमारा पद न छीनले, इस लिए उन्होंने छिपकर घोड़ा चुरा लिया और उसे श्वेतद्वीप में जहाँ कपिल मुनि तपस्या करते थे बाँध दिया।

अश्वरक्षक लौट आये और उन लोगों ने घोड़ा खो जाने की खबर कही। तब राजा सगर ने अपने साठहज़ार पुत्रों को घोड़ा ढूढ़ने तथा उसके चोर का पता लगाने की आज्ञा दी। उन लोगों ने समूची पृथवी खोद डाली, पर पता कहीं न मिला, तब उन लोगों ने पृथवी खोदकर पाताल की यात्रा की। वहाँ जाकर उन लोगों ने कपिलमुनि को तपस्या करते देखा तथा उनके पास घोड़ा बँधा हुआ पाया। उन लोगों ने मुनि को ही चोर समझा और वे उन्हें बुरा भला कहने लगे। तब मुनि को क्रोध हुआ और शाप देकर उन्होंने सगर पुत्रों को भस्म कर डाला। बहुत दिन बीत गये, ये भी लौटकर नहीं गये, तब राजा सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को घोड़ा ढूढने के लिए भेजा। अंशुमान ढूढते ढूढते कपिलमुनि के पास पहुँचा, वहाँ अपने पितृबन्धुओंकी भस्म राशि देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ, वह उन लोगों को तिलाञ्जुलि देने के लिए

इस पृथिवी में आयी थी। तब प्रभु ने ऋषियों के साथ स्नान किया और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये।

जल ढूँढने लगा। उसी समय गरुड़ वहाँ आये और उन्होंने, देवनदी गङ्गा के जल से उनको तिलाञ्जलि देने की सम्मति दी। गरुड़ के कहने से अंशुमान घोड़ा लेकर लौट आया। सगर का यज्ञ पूर्ण हुआ, उन्होंने अपनी आयु भर राज्य किया। सगर के पश्चात् अंशुमान राजा हुआ। इसने बड़ी कठोर तपस्या की जिससे गङ्गा आवें और इनके पितरों को तिलाञ्जलि दी जाय, पर कुछ भी फल न हुआ। अंशुमान अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर वनमें तपस्या करने चले गये। दिलीप ने भी अपने पूर्व पुरुषों के उद्धार के लिए तपस्या की। बहुत दिनों तक तपस्या करने पर आकाश वाणी हुई कि यह काम तुमसे न होगा किन्तु तुम्हारे पुत्र भगीरथ के द्वारा कार्य सिद्ध होजायगा। राजा दिलीप अपनी राजधानी में लौट आये। बहुत दिनों तक राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र भगीरथ को राज्य देकर वन में तपस्या करने चले गये। राजा भगीरथ ने राज्यभार मन्त्रियों को सौंपकर बहुत दिनों तक तपस्या की। ब्रह्मा ने आकर इनसे वर मांगने के लिये कहा। इन्होंने गङ्गा का पृथिवी में आना तथा पुत्र वर में मांगा। ब्रह्मा वर देकर तथा यह कह कर कि गङ्गा के वेग को रोकने के लिये शिवजी को प्रसन्न करो—चले गये। भगीरथ ने शिव को तपस्या से प्रसन्न किया और शिव इस कार्य के लिए राजी हो गये। गङ्गा का आकाश से उतरने का समय आया। उस समय गङ्गा ने अपने मन में निश्चय किया कि मैं अपने वेग से शिव को बहा ले जाऊंगी, यह बात शिव को मालूम हो गयी। गङ्गा की धारा शिव के मस्तक पर गिरने लगी, शिव ने उसे अपनी जटा में ही छिपा रखी, गङ्गा की धारा उसी जटा में वर्षों घूमती रही। भगीरथ को इस अपने प्रयत्न को व्यर्थ जाते देखकर बड़ा दुःख हुआ, इन्होंने शिव की स्तुति की, तब शिव ने अपनी जटा पटकी, जिससे गङ्गा की धारा निकली, और वह भगीरथ के रथ के पीछे पीछे सागर-सङ्गम तक गयी, गङ्गा के जल पड़ने से सगर पुत्रों का उद्धार हुआ।

(जनक पुर)

हरषि चले मुनिवृंद सहाया। बेगि विदेह नगर नियराया॥
पुर रम्यता राम जब देषी। हरषे अनुज समेत, बिसेषी॥

वहाँ से रामजी अपने सहायक मुनियों के साथ आगे चले और शीघ्र ही उन्होंने विदेह के नगर को अर्थात् राजा जनक की राजधानी नियरा लिया। नियराना पास पहुंचना। रामजी ने जब उस नगर की सुन्दरता देखी, तब वे अपने छोटे भाई के साथ बड़े प्रसन्न हुए।

वापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधा-सम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु-मत्त-रसभृंगा। कूजत कल-बहु-बरन विहंगा॥
बरन बरन विकसे बन जाता। त्रिविध समीर सदा-सुषदाता॥

वहाँ वापी, कुएँ नदियाँ तालाब आदि थे, जिनका जल अमृत के समान था और उनकी मणिमय सीढ़ियाँ बनी थी, रसके मद से मतवाले भौंरे सुन्दर गुंजार कर रहे थे और अनेक प्रकार के पक्षी मधुर तथा गंभीर ध्वनि कर रहे थे, रंगविरंगे कमल विकसे थे, सुखदायी त्रिविध शीतल मन्द सुगन्ध समीर–वायु बह रही थी।

दो०–सुमन बाटिका बाग बन, विपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुंपास॥ २११॥

नगर के पास चारों ओर पुष्प वाटिका है, बाग है और बन है, पक्षियों के रहने के बड़े बड़े घर है, बाग में फूल फूल रहे हैं, बागों में फल फल रहे हैं और बन में अच्छे अच्छे पत्ते लग रहे हैं, ये नगरके चारों ओर शोभित हो रहे हैं।

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ-मन तहाँ लोभाई॥

राजा जनक के नगर की अर्थात् जनकपुर की शोभा का वर्णन करते नहीं बनता, नगर के जिस ओर मन जाता है; वह वहीं लुभा जाता है।

चारु बजार विचित्र अंबारी। मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारी॥

सुन्दर बाजार और मणिमय तथा विचित्र अम्बारियां हैं, मानो ब्रह्माने इन सब को स्वयं अपने हाथ से बनाया है।

धनिक बनिक बर धनद सयाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना॥

जहाँ के धनी, बनिये, व्यापारी कुबेर के समान हैं, वे अनेक प्रकार की वस्तु लेकर बैठे हैं। वहाँ के बनिये कुबेर के समान धनवान हैं और वे व्यापार करने के लिए तरह तरह की चीज़ें लिये बाजार में बैठे हैं।

चौहट सुंदर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥

उस नगर के चौक तथा सुन्दर गली शोभित होती हैं जहाँ सदा सुगन्धित जल से छिड़काव होता है।

मंगल मय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रति नाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरम सील ज्ञानी गुनवंता॥

जनकपुर के सभी लोगों के घर मंगलमय हैं, वे माङ्गलिक वस्तुओं से सजे हुए हैं, मानों कामदेव चित्रकार ने स्वयं अपने हाथों से उन घरों में चित्र बनाये हों, उस नगर के स्त्री पुरुष सभी सुन्दर हैं, पवित्र हैं तथा सज्जन हैं, वे धर्मशील ज्ञानी और गुणवान हैं।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। विथकहिं विबुध विलोकि विलासू॥

जहाँ जनक का निवास स्थान है वह अनुपम है, वह सब से सुन्दर है, वहाँ के विलासों को देख कर देवता भी विथक जाते हैं, आश्चर्य से चकित हो जाते हैं।

होत चकित चित कोट विलोको। सकल भुवन सोभा जनु रोको॥

उस नगर के परकोटा को देखकर चित्त चकित होता है, मानों उसने सब भुवनों की शोभा रोक रखी है, अर्थात् सब शोभा को भीतर करके वह उसके चारों ओर फैला है।

दो०-धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर सदन, सोभा किमि कहि जाति॥२१२॥

सफेद घर हैं, अनेक प्रकार से सुन्दर बने हुए तथा मजबूत मणि और सुवर्ण जड़ित किवाड़ हैं, वही सुन्दर सीता का निवासस्थान है, उनकी शोभा कैसे कही जाय, उनकी शोभा अवर्णनीय है। पुरट संस्कृत शब्द है, यह सुवर्ण वाचक है।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा॥

वहाँ के द्वार सुन्दर बने हुए हैं और उनमें वज्र के समान मजबूत किवाड़ लगे हुए हैं। उन राजद्वारों पर सामन्त, राजा, नट, मागध और भाटों की भीड़ लगी रहती है।

बनी बिसाल बाजि गजसाला। हय गय रथ संकुल सब काला॥

हाथिशाल और घुड़शाल बहुत बड़े बड़े बने हुए थे, घोड़े, हाथी और रथ से वे सदा भरे रहते थे।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे॥

राजा जनक के अनेक वीर, दीवान और सेनापति हैं, इन सब का भी घर राजा के घर के ही समान है।

पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥

नगर के बाहर, तालाब और नदियों के तीर जहाँ तहाँ अनेक राजा उतरे हुए हैं, वहाँ उन लोगों ने डेरा डाला है।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना॥

एक सुन्दर आमका बाग देखकर जो सब प्रकार से सुन्दर था और जहाँ सब प्रकार की सुविधा थी—मुनि ने कहा, यह स्थान मेरे मन लायक है, हे सुजान रघुवीर, यहीं ठहरो।

भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनि बृंद समेता॥

कृपानिकेत रामचन्द्रजी ने कहा, नाथ, बहुत अच्छा, और मुनियों के साथ वे सब वहीं ठहरे।

(जनक का सत्कार)

विश्वामित्र महामुनि आये। समाचार मिथिलापति पाये॥

महामुनि विश्वामित्र आये हैं, यह खबर मिथिला के राजा जनक को लगी।

दो०-संग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर बर गुरु ज्ञाति।
चले मिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ एहि भाँति॥२१२॥

राजा जनक पवित्र सचिवों और अनेक वीरों, ब्राह्मणों तथा गुरु के और कुल के लोगों को साथ लेकर और प्रसन्न होकर मुनिराज विश्वामित्र से मिलने चले।

कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥

मुनि के चरणों पर मस्तक रखकर उन्होंने प्रणाम किया और मुनि ने भी प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया।

विप्र बृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥
कुसल प्रश्न कहि बारहिं बारा। विश्वामित्र नृपहिं बैठारा॥

ब्राह्मणों ने भी आदर के साथ विश्वामित्र को प्रणाम किये, राजा ने विश्वामित्र के आने से अपने भाग्य को बड़ा समझा और वे आनन्दित हुए। विश्वामित्र ने बारबार कुशल प्रश्न कह कर अर्थात् राजा का कुशल पूछ कर और अपना कह कर-उन को बैठाया।

तेहि अवसर आये दोउ भाई। गये रहे देखन फुलवाई॥
स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद विस्व चितचोरा॥

उसी समय दोनों भाई राम और लक्ष्मण आये, जो फुलवारी देखने गये हुए थे। वे दोनों भाई श्याम और गौर हैं, वे कोमल हैं, किशोर अवस्था के हैं, वे अपने सौन्दर्य से नेत्रों को सुख देनेवाले हैं तथा संसार के चित को चुराने वाले हैं अर्थात् संसार का चित उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

उठे सकल जब रघुपति आये। विस्वामित्र निकट बैठाये॥

जब रामचन्द्रजी वहाँ आये तब सब उठ कर खड़े हो गये, उठकर उनका लोगों ने स्वागत किया, विश्वामित्र ने रामचन्द्र को अपने पास बैठाया।

भये सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥

दोनों भाइयों को देखकर वे सब सुखी हुए, उनकी आँखों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ बिदहु बिदेहु बिसेषी॥

उन दोनों भाइयों की मधुर और मनोहर मूर्ति देखकर विदेह और भी अधिक विदेह हो गये। राजा जनक का विदेह भी नाम हैं। क्योंकि वे ज्ञानी हैं, उन्हें वास ज्ञान नहीं है, वे सदा ब्रह्मलीन रहते हैं, इस समय भगवान् का साक्षात् दर्शन पाकर वे और भी ब्रह्मज्ञान शून्य हो गये और ब्रह्मसाक्षात्कार सुख का अनुभव करने लगे।

दो०–प्रेममगन मन जानि नृप, करि बिवेक धरि धीर॥
बोले मुनि पद नाइ सिर, गद गद गिरा गंभीर॥ २१४॥

राजा जनक ने जब अपने मन को प्रेममगन जाना अथवा प्रेम मग्न मन के द्वारा जाना अर्थात् भगवान् को पहँचाना तब उन्होंने विवेक के द्वारा धैर्य धारण किया और वे मुनि के चरणों में सिर नवाकर तथा हर्ष से गद्‌गद् होकर गंभीर वाणी बोले,

कहहुनाथसुंदरदोउबालक। मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक॥

हे नाथ, कहिए, ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुल के शिरोमणि हैं या राजकुल के पालक हैं? ये मुनि पुत्र हैं या राजपुत्र?

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा॥

अथवा वेद ने जिसका नेति नेति के द्वारा वर्णन किया है, क्या वही ब्रह्म तो नहीं दो रूप धारण करके आया है?

सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंदचकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

मेरा मन स्वभावतः विरक्त है, सांसारिक विषयों में मेरा अनुराग नहीं है, पर वह भी जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर वाह्यज्ञान शून्य हो जाता है, सुध बुध खो देता है, वैसे ही मेरा मन भी हो रहा है। प्रभु, इसी कारण सद्भाव से मैं पूछता हूँ। हे नाथ, कहिए, आप कुछ छिपाइए मत।

इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥

इनको देखकर मन में विशेष अनुराग उत्पन्न होता है, मन ब्रह्मसुख का विवश होकर त्याग करता है, अर्थात् ब्रह्मसुख का त्याग कर, मन इन बालकों को देखना चाहता है।

कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥

हँसकर विश्वामित्र मुनि ने कहा, महाराज, आपने बहुत ही ठीक कहा, आपकी बात झूठ नहीं है।

ये प्रिय सबहि जहां लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी॥

जितने प्राणी हैं उन सबको ये प्रिय हैं। विश्वामित्र की इस वाणी को सुनकर रामचन्द्र मनही मन मुसकाते थे।

रघुकुलमनि दशरथ के जाये। मम हित लागि नरेस पठाये॥

विश्वामित्र ने कहा, रघुकुल श्रेष्ठ दशरथ के ये पुत्र हैं, मेरे उपकार के लिए राजा ने इन्हें यहाँ भेजा है।

दो०—राम लषन दोउ बंधुवर, रूप-सील-बल-धाम।
मष राषेउ सब साषि जगु, जिते असुर संग्राम॥२१५॥

ये दोनों भाई हैं, एक का नाम है राम, दूसरे का लचमण। ये रूप, शील और बल के धाम हैं, इन्होंने मेरे यज्ञ की रक्षा की और रण में असुरों को इन्होंने जीता है, इस बात का साक्षी सारा संसार है।

मुनि तव चरन देषि कह राऊ। कहि न सकउँ निज पुन्यप्रभाऊ॥

तब राजा ने कहा, मुनि महाराज, मुझे आपके चरणों के दर्शन हुए,

यह मेरे पुण्य का प्रभाव है; मेरा पुण्य प्रभाव कितना बड़ा है; यह मैं कह नहीं सकता, जिससे आपका भी दर्शन हुआ।

सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनंददाता॥
इन्ह कै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ मनभावसुहावनि॥

श्याम और गौर ये दोनों भाई आनन्द को भी आनन्द देनेवाले हैं, इन भाइयों की आपस की पवित्र प्रीति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह सुहावनी है और मन को अच्छी लगती है।

सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्मजीव इव सहज सनेहू॥

विदेह राजा जनक ने प्रसन्न होकर कहा, नाथ, सुनिए, ब्रह्म और जीव के समान इनका प्रेम स्वाभाविक है।

पुनि पुनि प्रभुहिं चितव नरनाहू। पुलकगात उर अधिक उछाहू॥

नरनाथ राजा जनक बार बार प्रभु की ओर देखते हैं, उनका शरीर पुलकित हो गया और मन में अधिक उत्साह हुआ है।

मुनिहि प्रशंसि नाइ पद सीसू। चलइ लिवाइ नगर अवनीसू॥

अवनीश, राजा जनक, मुनि की प्रशंसा करके; उनके चरणों पर सिर नवाकर; उन्हें अपने नगर में लिवा ले गये।

सुंदर सदन सुखद सब काला। तहां बास लेइ दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। आप गयउ गृह बिदा कराई॥

जो घर सुन्दर था और सब ऋतुओं के लिए सुखदायी था, राजा ने वहाँ ले जाकर मुनि को वासस्थान दिया। राजा ने मुनि की पूजा की और सब प्रकार से उनकी सेवा की, पुनः वहाँ से विदा लेकर वे अपने घर गये।

दो०—रिषय संग रघुबंसमणि, करि भोजन बिश्राम।
बैठे प्रभु भ्रातासहित, दिवस रहा भरि जाम॥ २१६॥

रघुवंशमणि रामचन्द्रजी ऋषि और भाई के साथ भोजन तथा विश्राम करके बैठे, उस समय एक पहर दिन बाकी था।

(नगर दर्शन)

लषन हृदय लालसा विसेषी। जाइ जनकपुर आइय देषी॥

लक्ष्मण के हृदय में बड़ी लालसा थी कि जाकर जनकपुर देख आवें।

प्रभुभय बहुरि मुनिहिं सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसकाहीं॥

पर रामजी का भय और मुनि का भी सङ्कोच था; अतएव वे प्रकट कुछ नहीं कह सकते थे, वे केवल मन ही मन मुसकाते थे।

राम अनुज-मनकी गति जानी। भगतवछलता हिय हुलसानी॥

राम ने छोटे भाई के मन की बात जान ली, और उनके हृदय में भक्त-वत्सलता प्रबल हो गयी। लक्ष्मण की इच्छा पूर्ण करने के लिए वे उद्यत हुए।

परम विनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुरु अनुसासन पाई॥

गुरुजी की आज्ञा पाकर, अत्यन्त विनय तथा सङ्कोच के साथ मुसकुराते हुए वे बोले।

नाथ लषन पुर देषन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौ राउर आयसु मैं पावउँ। नगर देषाइ तुरत लेइ आवउँ॥

नाथ, लक्ष्मण, नगर देखना चाहते हैं, पर आपके सङ्कोच और डर से प्रकट कुछ नहीं कहते। यदि मैं आपकी आज्ञा पाऊँ तो इनको नगर दिखा-कर शीघ्र लौटा लाऊँ।

सुनि मुनीस कह वचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राषहु नीती॥
धरमसेतुपालक तुम्ह ताता। प्रेम विवस सेवकसुषदाता॥

रामजी की बात सुनकर मुनीश्वर ने प्रेमपूर्वक वचन कहा, राम, तुम नीति की रक्षा क्यों न करोगे। तात, तुम धर्म की मर्यादा के पालन करनेवाले हो और प्रेम के अधीन होकर सेवकों को सुख देनेवाले हो।

दो०—जाइ देषि आवहु नगर, सुषनिधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुंदर बदन देषाइ॥ २१७॥

हे सुखनिधान, तुम दोनों भाई जाकर नगर देख आओ, अपना सुन्दर मुख दिखाकर सब नगरवासियों की आँखों को सफल करो।

मुनिपदकमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोकलोचनसुखदाता॥

लोगों की आँखों को सुख देनेवाले दोनों भाई; मुनिके चरण कमलों को प्रणाम कर, नगर देखने के लिए चले।

बालकवृंद देखि अतिसोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥

रामचन्द्र की अपूर्व शोभा देख कर बालकों की आँखें और उनका मन-मानो लुब्ध हो गया और वे उनके साथ हो गये।

पीतबसनपरिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥

वे पीत वस्त्र का काछा पहने हैं, कमर में तरकस बँधा है और हाथ में सुन्दर धनुष तथा बाण शोभते हैं।

तन अनुहरत सुचंदन षोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥

चन्दन की खोर अर्थात् तिलक शरीर के अनुसार है, अर्थात् शरीर जैसा सुन्दर है, वैसा ही तिलक भी है और यह जोड़ी श्याम और गौर है।

केहरिकंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग-मनिमाला॥

सिंह के समान उनका कंधा है, भुजा विशाल है और वक्षः स्थलपर सुन्दर गजमुक्ताओं की माला है।

सुभग सोनसरसीरुहलोचन। बदन मयंक तापत्रयमोचन॥

सुन्दर लाल कमल के समान उनके नेत्र हैं और उनका मुख चन्द्रमा के समान है तथा तीनों तापों को दूर करनेवाला है। देहिक, दैविक और भौतिक ये तीन ताप हैं, अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये तीन ताप हैं। संस्कृत 'शोण' का अपभ्रंस रूप है, सोन। शोण का अर्थ है, लाल रंग।

कानन्हि कनक फूल छवि देहीं। चितवत चितहिं चोरि जनु लेहीं॥

उनके कानों में सुवर्ण के फूल शोभा दे रहे हैं और वे जिसकी ओर देखते हैं उसीका चित ही चुरा लेते हैं।

चितवनि चारु भृकुटि बर बांकी। तिलक रेष सोभा जनु चाकी॥

उनके देखने का ढंग बड़ाही मनोहर है, उनकी भौंहें सुन्दर और तिरछी हैं।

दो०-रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नष सिष सुंदर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस॥ २१८॥

सुन्दर मस्तक पर मनोहर चौकोनी टोपी है, सिर के बाल काले और घुँघुराले हैं। दोनों भाई नखसे सिख तक सुन्दर हैं, उनके सर्वाङ्ग सुन्दर हैं।

देषन नगर भूपसुत आये। समाचार पुरबासिन पाये॥
धाये धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥
निरषि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥

राजपुत्र नगर देखने आये हैं—यह समाचार पुरवासियों को मिला। वे सब घर का काम-काज छोड़ कर दौड़े, मानो दरिद्र लोग खजाना लूटने के लिये दौड़ आये हों। सहज सुन्दर दोनों भाइयों को देखकर, लोगों ने नेत्रों के फल पाये और वे सुखी हुए।

जुबती भवन झरोषन्हि लागीं। निरखहिं रामरूप अनुरागीं॥
कहहिं परस्पर वचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती॥

स्त्रियाँ अपनी अपनी खिडकियों पर चढ़कर, प्रेमपूर्वक रामचन्द्र के रूप को देखती हैं और वे प्रेमपूर्वक आपस में कहती हैं, सखि, इन्होंने तो करोड़ो कामदेव की शोभा को जीत लिया है।

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनियत नाहीं॥

देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों में कहीं भी ऐसी शोभा नहीं सुनी जाती है।

विष्णु चारिभुज विधि मुखचारी। विकट भेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देव अस कोउ न आहीं। यह छवि सषि पटतरिये जाहीं॥

विष्णु की चार भुजाएँ हैं और ब्रह्मा के चार मुख हैं, शिवजी का डरावना वेष है और उनके पाँच मुख हैं। और कोई ऐसा देवता नहीं है, सखि, जिससे इनकी शोभा की तुलना की जाय।

दो०–वयकिसोर सुखमा सदन, स्याम गौर सुषधाम।
अंग अंग पर वारियहि, कोटि कोटि सत काम॥ २१६॥

इनकी किशोर अवस्था है, ये परमशोभा के घर हैं, ये श्याम और गौर वर्ण के हैं, ये सुख के धाम हैं, इनके एक एक अंगपर करोड़ो करोड़ों कामदेव न्योछावर किये जा सकते हैं।

कहहु सषी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदुवानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥
ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बालमरालन्ह के कल जोटा॥
मुनिकौशिकमष के रषवारे। जिन्ह रनअजिर निसाचर मारे॥

सखी, कहो, ऐसा कौन शरीरधारी है, कौन ऐसा मनुष्य है, जो ऐसा सुन्दर रूप देख कर मोहित न हो जाय। उनमें की कोई एक सखी यह कोमल वचन बोली-बुद्धिमतियां, जो मैंने सुना है सो सुनो, अर्थात् रामचन्द्र के विषय में जो मुझे मालूम हुआ है, सो तुम लोग भी सुनो। ये दोनों बाल-हँसों का सुन्दर जोड़ा; राजा दशरथ के पुत्र हैं। अर्थात् ये दोनों बालक हंस के समान हैं और वे राजा दशरथ के पुत्र हैं, विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की इन लोगों ने रक्षा की है और इन लोगों ने रणभूमि में अजय राक्षसों को मारा है।

श्यामगात कलकंजविलोचन। जो मारीच सुभुजमदमोचन॥
कौसल्यासुत सो सुषषानी। नाम राम धनुसायकपानी॥
गौर किसोर वेषवर काछे। करसरचाप राम के पाछे॥
लछमन राम नाम लघुभ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

इनमें जो श्यामशरीर वाले हैं, जिनकी आँखें सुन्दर कमल के समान हैं और वीर मारीच के अभिमान को दूर करनेवाले हैं, वे ही कौशल्या के

पुत्र, सुखधाम श्रीरामचन्द्र हैं, जिनके हाथों में धनुष बाण है और जो गौरवर्ण के कुमार हैं, जिन्होंने सुन्दर वेष धारण किया है, जिनके हाथों में धनुष बाण है और रामचन्द्रके पीछे पीछे चल रहे हैं,वे राम के छोटे भाई हैं और उनका नाम लक्ष्मण है। हे सखी, सुनो, उनकी माता का नाम सुमित्रा है।

दो०-विप्र काज करि बंधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि।
आये देषन चापमष, सुनि हरषीं सब नारि ॥२२०॥

ब्राह्मण का काम करके अर्थात् विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करके और मुनिपत्नी अहिल्या का उद्धार करके, दोनों भाई धनुषयज्ञ देखने आये हैं। इस बात को सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं।

देषि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥
जौं सषि इन्हहिं देष नरनाहू। पन परिहरि हठि करइ बिबाहू ॥

रामचन्द्र की सुन्दरता को देखकर उनमें की किसी एक स्त्री ने कहा, जानकी के योग्य यही वर है। यदि नरनाथ जनकजी इनको देख लें तो अपनी प्रतिज्ञा—धनुष तोड़नेवाले के साथ सीता ब्याही जायगी—को छोड़ देंगे और बरजोरी इनके साथ सीता को ब्याह देंगे।

कोऊ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने ॥

किसी एकने कहा कि राजा ने इन्हें पहचान लिया है अर्थात् देखा है तथा मुनि का और इनका आदर पूर्वक सम्मान भी किया है।

सषि परंतु पन राउ न तजई। बिधिबस हठि अबिबेकहि भजई ॥

पर सखी, राजा अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ते, वे भाग्यवश अर्थात् दुर्भाग्यवश अविवेक से ही काम ले रहे हैं।

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिय उचितफलदाता॥
तौ जानकिहिं मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहां संदेहू ॥

किसीने कहा कि यदि विधाता अच्छा होगा, यदि वह सुविचारी

होगा और जैसा कि सुना जाता है कि वह सब को उचित फल देता है तो जानकी को यही बर मिलेगा। सखि, इसमें सन्देह नहीं।

जो विधिवस अस बनै संजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू॥

यदि विधिवश ऐसा संयोग बन जाय, जानकी और राम का ब्याह हो जाय तो सभी लोग कृतकृत्य हो जायंगे, सभी प्रसन्न होंगे।

सषि हमरे आरति अति तातें। कबहुंक ए आवहिं एहि नाते॥

सखी, मुझे एक और पीड़ा है, इसीसे कह रही हूं, इस संयोग के घटने पर ये कभी कभी इस नाते भी यहाँ आवेंगे।

दो०-नाहि त हम कहुं सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि।
यह संघट तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि॥ २२१॥

सुनो सखी, नहीं तो इनका दर्शन तो हम लोगों के लिए दुर्लभ ही है, यह संघट, यह बनाव तब होगा, जब पूर्व जन्म का बहुत अधिक पुण्य होगा।

बोली अपर कहेहु सषि नीका। एहि बिवाह अतिहित सबहीका॥
कोउ कह संकरचाप कठोरा। ए स्यामल मृदुगात किसोरा॥
सब असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदुबानी॥

दूसरी बोलीं, सखी तुमने अच्छा कहा, यह विवाह सभी के लिए अच्छा है। किसी दूसरी ने कहा कि—शिवजी का धनुष बड़ा कठिन है, और ये श्यामवर्ण के कुमार कोमल शरीर के हैं। हे चतुर सखी, सभी असमंजस हैं। यह सुनकर दूसरी ने कोमल वाणी से कहा।

सषि इन्हकह कोउ कोउ अस कहहीं। बड़प्रभाउ देषत लघु अहहीं॥

सखी, कोई कोई इनके लिए कहते हैं कि ये देखने में यद्यपि छोटे हैं; पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है।

परसि जासु पदपंकजधूरी। तरी अहिल्या कृतअघभूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिय न भोरे॥

जिनके चरणकमलों की धूल से वह अहिल्या तर गयी, जिसने बहुत बड़ा पाप किया था, वे क्या शिवजी के धनुष को बिना तोड़े रह सकते हैं? तुम लोग इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना।

जेहि बिरंचि रचि सीय संवारी। तेहि स्यामल वरु रचेउ विचारी॥
तासु वचन सुनि सब हरषानी। ऐसइ होउ कहहिं मृदुबानी॥

जिस ब्रह्मा ने सीता को बनाया और उन्हें सौन्दर्य दिया, उसी ब्रह्मा ने विचार कर इस सुन्दर वर को भी बनाया है। उसकी बात सुनकर सब प्रसन्न हुईं, उन लोगों ने कोमल वचन से कहा कि ऐसा ही हो।

दो०-हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुषिसुलोचनवृन्द।
जाहिँ जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानन्द॥ २२२॥

सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों का समुदाय, मन ही मन प्रसन्न हुआ, वह पुष्पों की वृष्टि करने लगा। इस प्रकार जहाँ जहाँ वे दोनों भाई जाते हैं, वहाँ वहाँ इसी प्रकार का परम आनन्द होता है।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमषहित भूमि बनाई॥
अतिविस्तारि चारु गच ढारी। विमल वेदिका रुचिर सवाँरी॥
चहुं दिसि कंचनमंच विसाला। रचे जहां वैठहि महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहुं पासा। अपर मंच मण्डली निवासा॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। वैठहिं नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्हके निकट विशाल सुहाये। धवल धाम बहु वरन बनाये॥
जहँ वैठे देषहिं सब नारी। जथाजोग निजकुल अनुहारी॥

नगर के पूर्व ओर दोनों भाई गये, जहाँ धनुष यज्ञके लिए भूमि तयार की गयी थी। वह लम्बी चौड़ी जमीन थी, सुन्दर गच बनी हुई थी और वह ढलुई थी। जिसमें सुन्दर वेदी सवाँर कर बनाई गयी थी, उस भूमि के चारो ओर बड़े बड़े सोने के मंच बने हुए थे जो राजाओं के वैठने के लिए थे। इन मँचोंके पीछे की ओर समीप ही मण्डलाकार और भी मंच बने

हुए थे, वे मंच कुछ ऊंचे थे और सब प्रकार से सुन्दर सुहावने बने थे। जिनपर नगर के लोग जाकर बैठ सकें। उनके समीप ही सुन्दर सुहावने सफ़ेद अनेक रंगो से रंजित मण्डप बनाये गये थे जिनपर अपने अपने कुल की योग्यता के अनुसार बैठकर सब स्त्रियाँ धनुष यज्ञ देखें।

पुर बालक कहि कहि मृदु वचना। सादर प्रभुहि देषावहिं रचना॥

नगर के बालक कोमल वचन कह कह कर, आदर पूर्वक रामजी को यज्ञमण्डप की सुन्दर रचना दिखाने लगे।

दो०–सब सिसु एहि मिसु प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहि अति हरष हिय, देषि देषि दोउ भ्रात॥२२३॥

इसी नगर दिखाने के बहाने सब लड़के दोनों, भाइयों के सुन्दर शरीर छूते हैं, दोनों भाइयों को देख देख कर उनका शरीर पुलकित होता है और उनका मन प्रसन्न होता है।

सिसु सब राम प्रेम बस जाने। प्रीतिसमेत निकेत बषाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

जब बालकों ने रामजी को प्रेमवश जाना, जब उन्हें मालूम हुआ कि रामजी हम पर प्रेम करते हैं, तब उन लोगों ने प्रेम के साथ अपने अपने घर बतलाये, सब बालक अपनी अपनी इच्छा के अनुसार दोनों भाइयों को बुलाते हैं और वे दोनों भाई भी प्रेम के साथ उनके वहाँ जाते हैं।

रामु देषावहि अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर वचना॥

रामचन्द्रजी मृदु-मधुर और मनोहर वचन कह कर अपने छोटे भाई को वहाँ की रचना दिखाते हैं।

लवनिमेषमहँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मषसाला॥

माया जिसकी आज्ञा पाकर एक निमेष से भी कम समय में इस समस्त संसार की रचना कर सकती है, वे ही दीनदयाल भगवान भक्ति के कारण धनुष यज्ञ की बनावट को चकित होकर देखते हैं।

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

नगर का कौतुक देखकर, वे गुरु के पास चले, लौटने में बिलंब हुआ, यह जानकर उनका मन भयभीत था।

जासु त्रास डर को डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥

जिनके भय से स्वयं भय भी भयभीत रहता है, वे आज स्वयं डर रहे हैं, इस प्रकार वे भजन का प्रभाव दिखा रहे हैं, अपनी भक्ति का महत्व बतला रहे हैं।

कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई॥

मृदु-मधुर और सुन्दर बातें कह कह कर उन्होंने बालकों को जबरदस्ती बिदा किया, वे लौटते नहीं थे, साथ चलने के लिए आग्रह करते थे; इधर रामजी गुरु के भय से भयभीत थे; इस कारण उन्होंने बालकों को जबर-दस्ती बिदा किया।

दो०-सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरुपदपंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ॥ २२४॥

भय और प्रेम के कारण विनीत दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) संकोच के साथ गुरु के चरणों पर सिर नवाकर और आज्ञा पाकर बैठे।

निसिप्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्यावंदन कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरण चांपन दोउ भाई॥

निशा के प्रवेश के समय अर्थात् सन्ध्या के समय मुनि ने आज्ञा दी और सब लोगों ने सन्ध्या वन्दन किया। तदनन्तर इतिहास और पुरानी कथा कहते कहते सुन्दर रात्रि के दो पहर बीत गये। तब मुनिश्रेष्ठ विश्वा-मित्र ने जाकर शयन किया और दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे।

जिन्हके चरणसरोरुह लागी। करत विविध जप योग विरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरुपदकमल पलोटत प्रीते॥

जिनके चरण कमलों के लिए संसार से विरक्त होकर लोग अनेक जप-योग आदि करते हैं, वे ही दोनों भाई मानो प्रेम से जीत लिये गये हैं और प्रसन्नतापूर्वक गुरु के चरण कमलों को दवाते हैं।

बार बार मुनि अज्ञा दीन्हा। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हा॥
चांपत चरण लषन उर लाये। सभय सप्रेम परम सचुपाये॥

मुनि ने जब कई बार सोने के लिए कहा, तब जाकर रामचन्द्रजी ने शयन किया, रामजी के चरणों के दवाने के समय लछमण ने उनके चरणों को हृदय से लगाया तथा भय और प्रेम के कारण वे बहुत सकुचाये।

पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढे धरि उरपदजलजाता॥

रामजी ने वारवार कहा कि, भाई सो जाओ। तव वे रामजी के चरण कमलों को हृदय से लगा कर सो गये।

दो०—उठे लषन निसि विगत सुनि, अरुनसिखाधुनि कान।
गुरु ते पहिलेहि जगतपति, जागे राम सुजान॥ २२५॥

रात वीत गयी, अरुणशिखा ध्वनि अर्थात् मुर्गे का शब्द सुनायी पड़ा, तब लछमण उठे, और गुरु विश्वामित्र के उठने के पहले ही जगत्पति सुजान रामजी जागे।

सकल सौच करि जाइ नहाये। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाये॥

तव उन सवोंने शौच आदि करके स्नान किया और नित्य नियम करने के पश्चात जाकर उन लोगों ने मुनि को सिर नवाया।

(फुलवाड़ी)

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप-वाग वर देषेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥

फूल लेने का समय हुआ यह देख कर तथा गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने के लिए चले। जाकर उन लोगों ने राजा का सुन्दर वाग देखा, जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर सदा रहती है।

लागे विटप मनोहर नाना। बरन बरन बरबेलि बिताना॥

जहाँ अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्ष लगे हैं, और रंगबिरंगी लताओं के मण्डप बने हैं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाये। निज संपति सुररूख लजाये॥

नये पत्ते, फल और फूल शोभित हो रहे हैं, जिन्हें देखकर देववृक्ष कल्पतरु भी अपनी सम्पत्ति के लिए लज्जित हो रहा है अर्थात् इस बाग के वृक्षो की शोभा कल्पवृक्ष की शोभा से भी अधिक है।

चातक कोकिल कोर चकोरा। कूजत विहग नटत कलमोरा॥
मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥

चातक, कोकिल, तोता और चकोर आदि पक्षी कूज रहे हैं और मयूर सुन्दर नाच कर रहे हैं। मोर का नाचना और कोयल का बोलना एक समय कवि वर्णन नहीं करते, ऐसा करना समय की दृष्टि से अप्रसिद्ध है। पर गुसाई जी ने शायद इसलिए ऐसा किया है कि जिससे वसन्त वर्षा आदि ऋतुओं का उस बाग में एक समय होना जाना जाय, उस बाग के बीच में सुन्दर तालाव बना था जिसकी सीढ़ियाँ मणि की थीं।

विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा॥

उस बाग के सुन्दर जल में अनेक रंग के कमल खिले हुए हैं, जल पक्षी बोल रहे हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं।

दो०—बागु तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहि सुष देत॥ २२६॥

बाग और तालाव को देखकर भाई के साथ प्रभु रामजी प्रसन्न हुए। इससे इस बाग को परमरमणीय समझना चाहिए; क्योंकि यह राम को सुख देता है। राम उसको कहते हैं जिसमें योगी लोग सुख पाते हैं, जो उस राम को सुख दे वह तो अवश्य ही रमणीय है।

चहुँदिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदितमन॥

रामचन्द्रजी चारो ओर देखकर तथा मालियों से पूछकर प्रसन्न मन से तुलसीदल आदि तथा फूल लेने लगे।

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

उसी समय, जिस समय रामजी फूल ले रहे थे, वहाँ सीता आयीं, पार्वतीजी की पूजा करने के लिए माता ने उन्हें भेजा था।

संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥

सीताजी के साथ जो सखियां सौभाग्यवती और चतुर हैं, वे मनोहर वाणी से गीत गा रही हैं।

सर समीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देषि मन मोहा॥
मंज्जन करि सर सषिन्ह समेता। गई मुदितमन गौरि निकेता॥

तालाब के पास पार्वती जी का मन्दिर शोभता था, उसकी शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, उसे देखकर देखनेवालों का मन मोहित हो जाता है। सखियों के साथ सीताजी ने उस तालाब में स्नान किया और वे प्रसन्न मन से गौरी के मन्दिर में गयीं।

पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर मांगा॥

सीता ने बड़े प्रेम से पार्वतीजी की पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर उन्होंने पार्वती से माँगा।

एक सषी सिय संग विहाई। गई रही देषन फुलवाई॥
तेइ दोउ बंधु विलोके जाई। प्रेमविवस सीतापहँ आई॥

सीताजी की एक सखी उनका साथ छोड़कर फुलवारी देखने के लिए गयी थी, उसने जाकर उन दोनों भाइयों को देखा और प्रेमविवश होकर तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर वह सीता के पास आयी। यहाँ प्रेम का अर्थ हर्ष करना ठीक होता है। आगे के दोहे में यह बात साफ हो गयी है, क्योंकि सखियों ने उससे हर्ष का कारण पूछा है।

दो०—तासु दसा देषी सषिन्ह, पुलक गात जल नयन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन ॥२२७॥

उसका शरीर पुलकित हो गया था, आँखें जल से भर आयी थीं, उसकी यह दशा सखियों ने देखी, उन लोगों ने कोमल वचनों से पूछा कि अपने हर्ष का कारण कहो। किस कारण तुम इतनी प्रसन्न हो।

देषन बाग कुअर दुइ आये। वय किसोर सब भांति सुहाये ॥

उसने सखियों के पूछने पर कहा, दो राजकुमार बाग देखने आये हैं, वे किशोर अवस्था के हैं अर्थात् उनकी उमर १४ से १८ के भीतर है, और वे सब प्रकार से सुन्दर हैं।

श्याम गौर किमि कहौं बषानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

वे श्याम हैं या गौर हैं, इस बात को मैं कैसे वर्णन करके कहूँ, क्योंकि बाणी को आँख नहीं और आँखों को वाणी नहीं। आँखो ने देखा, पर वे बोल नहीं सकतीं, जीभ बोल सकती है पर उसे आँख नहीं, उसने देखा नहीं। अर्थात् वे अवर्णनीय हैं, उनकी शोभा केवल देखने और अनुभव करने को है, कहने की नहीं।

सुनि हरषीं सब सषीं सयानी। सियहिय अति उतकंठा जानी ॥

इस बात से सीता के हृदय में उन राजकुमारों को देखने के लिए बड़ी उत्कण्ठा हुई, चतुर सखियों ने भी यह बात जान ली और वे इससे प्रसन्न हुई।

एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आये काली ॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीने स्ववस नगर-नर-नारी ॥

एक सखी ने कहा, सखी, ये वे ही राजकुमार हैं; जो कल मुनि के साथ आये हैं, ऐसा मैंने सुना है, जिन्होंने अपने रूप की मोहनी डालकर, नगर के समस्त स्त्री पुरुषों को अपने वश कर लिया है।

बरनत छबि जहं तहं सब लोगू। अवसि देषिअहि देषन जोगू ॥

जिनकी शोभा का—सौन्दर्य का वर्णन जहाँ तहाँ सब लोग कर रहे हैं, उन्हें अवश्य देखना चाहिए; क्योंकि वे देखने ही के योग्य हैं।

तासु वचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥

उस सखी की [illegible] सीता [illegible] को बड़ी अच्छी लगीं, उन राजकुमारों को देखने के लिए उनकी [illegible] व्याकुल हो गयीं।

चली अग्र करि प्रियसषि सोई। प्रीति पुरातन लषइ न कोई॥

उसी प्रिय सखी को जो देखकर आयी थी आगे कर चलीं, रामजी से सीता जी का पुराना प्रेम है; यह किसीने नहीं जाना। राम विष्णु के अवतार हैं और लक्ष्मी का अवतार सीताजी हैं। लक्ष्मीरूप की प्रीति से यहाँ मतलब है।

दो०—सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकत सकल दिसि, जनु सिसुमृगी सभीत॥२२८॥

नारदजी के वचन को स्मरण कर सीता जी के मन में पवित्र प्रेम उत्पन्न हुआ। नारदजी ने सीता जी को वर दिया था कि बाग में तुमको रामजी मिलेंगे और वे तुम्हारे पति होंगे। सीताजी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं, जैसे डरी हुई मृगी देखती है। चकित होकर चारों तरफ सीताजी रामजी को ढूंढती थीं।

कंकनकिंकिन नूपुरधुनिसुनि। कहत लषन सन राम हृदयगुनि॥

कंकण, किंकिणी, करधनी, नूपुर (पायजेब) की ध्वनि सुनकर और मन में विचार कर रामजी लक्ष्मण से कहने लगे।

मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विस्वविजय कहँ कीन्ही॥

मानो कामदेव ने दुन्दुभी बजायी है और मन से उसने समस्त संसार को जीत लिया। यह नूपुर आदि का शब्द कामदेव के नगारे के समान है, जो संसार को जीतने के लिए समर्थ है।

अस कहिफिरचितयेतेहि ओरा। सियमुषससि भये नयनचकोरा॥

ऐसा कह कर रामजी ने पुनः उस ओर देखा, जिससे सीताजी के मुख-रूपी चन्द्रमा के लिए उनकी आँखे चकोर हो गयीं। रामजी ने सीता जी को देखा, देखते ही उनकी आँखे वहीं अटक गयीं, हट न सकीं।

भये विलोचन चारु अचंचल। मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल॥

रामजी की सुन्दर आखें स्थिर हो गयीं, मानो सकुचाकर निमि राजा ने पलकों को छोड़ दिया। राजा निमि सीताजी के पूर्वपुरुष थे। मनुष्य मात्र की पलकों पर निमि राजा का वास है, पर रामजी की आँख जब उन्हीकी वंशज एक कन्या को प्रेम से देखने लगी तो निमि लज्जित होकर मानो चले गये, अतएव रामजी का पलक गिरना बन्द हो गया, टकटकी लग गयी।

देषि सीय सोभा सुष पावा। हृदय सराहत बचन न आवा॥

सीताजी की शोभा देख कर रामजी ने सुख पाया, वे इस शोभा की हृदय में प्रशंसा करने लगे, पर उनके मुख से बचन नहीं आया।

जनु विरंचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रगट देषाई॥
सुंदरता कहँ सुंदर करई। छविगृह दीपसिषा जनु बरई॥

मानो ब्रह्मा ने अपनी समस्त निपुणता, सृष्टि रचने की अपनी समूची दक्षता—उसको बनाकर क्या संसार को प्रकट रूप में दिखायी है? इसकी शोभा; सुन्दरता को भी सुन्दर बनाती है। शोभारूप घर में यह दीप-शिखाके समान प्रकाशित हो रही है।

सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरउं विदेहकुमारी॥

कवियों ने सब उपमा जूठी कर दी हैं, जितनी उपमाएँ हो सकती हैं; उन सब का उपयोग कवियों ने भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिए कर दी हैं, फिर विदेह कुमारी सीता की तुलना किससे करूं? क्योंकि सीता की शोभा उन सब से निराली है। अर्थात् अनुपम है, सीताकी शोभा की उपमा नहीं है।

दो०-सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा विचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुहारि ॥२२९॥

प्रभु रामचन्द्रजी ने सीता की शोभा का वर्णन किया, पुनः उन्होंने अपनी दशा का विचार किया, सीता के देखने से उनकी जैसी दशा हो गयी थी; उसका विचार किया, पुनः समय के अनुसार वे अनुज लक्ष्मण से पवित्र मन से बोले।

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई॥

भाई, यह वही जनकतनया है, राजा जनक की कन्या है, जिसके लिए अर्थात् जिसके विवाह के लिए धनुष यज्ञ हो रहा है।

पूजन गौरि सखी लेइ आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई॥

यह गौरी की पूजा करने के लिए सखियों को लेकर आयी हैं और फुलवारी प्रकाशित करती हुई घूम रही हैं।

जासु विलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥

जिसकी अलौकिक दिव्य अर्थात् इस लोक में न होनेवाली शोभा देख कर, स्वभावतः पवित्र मेरा मन भी क्षुभित हो रहा है। चंचल हो रहा है। मेरा मन इसकी ओर आकृष्ट हो रहा है।

सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥

इसका कारण तो विधाता जानें, इसको देखकर मेरा मन क्यों चंचल हो रहा है, इसका कारण तो विधाता बतला सकते हैं, पर भाई, सुनो, मेरे अच्छे अंग फरक रहे हैं. अर्थात् जिन अंगों का फरकना शुभ समझा जाता है वे अंग फरक रहे हैं।

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरै न काऊ॥
मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥

रघुवंशियों का यह सहज स्वभाव है, यह उनकी प्रकृति है, वे बुरे मार्ग में पैर नहीं रखते। वे कभी बुरे काम नहीं करते। मुझे अपने मन का पूरा

पूरा विश्वास है, इससे बुराई न होगी, इसका मुझे भरोसा है; क्योंकि स्वप्न में भी इसने परस्त्रियों की ओर नहीं देखा। फिर भी मेरा मन इसपर मोहित हो रहा है, इससे मालूम होता है कि यही मेरी भावी पत्नी है, अंगों का फरकना भी इस विश्वास के अनुकूल ही है।

जिनके लहहिं न रिपुरन पीठी। नहिं लावत परतिय सन डीठी॥
मंगन लहैं न जिन कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

जिनकी पीठ शत्रुओं ने रण में नहीं पायी है अर्थात् जिन्होंने शत्रुओं को पीठ नहीं दिखायी, जिन्होंने परस्त्रियों पर दृष्टि नहीं लगायी और माँगने-वाले याचकों ने जिनसे नाहीं नहीं पायी अर्थात् जिन्होंने किसी याचक को नाहीं नहीं कहा, वे श्रेष्ठ मनुष्य इस संसार में कम ही हैं।

दो०—करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुष सरोज मकरंद छबि, करइ मधुप इव पान॥२३०॥

रामचन्द्र लक्ष्मण से बातें कर रहे हैं और उनका मन जो सीताजी के रूप पर लुब्ध हुआ है, वह सीताजी के मुखकमल की शोभा रूपी पुष्प रस का भ्रमर के समान पान करता है। देखना नहीं, किन्तु पान करता है, अर्थात् तन्मय होकर देखता है।

चितवत चकित चहूं दिसि सीता। कहं गये नृप किसोर मनचीता॥

सीता चकित होकर चारो ओर देखती है, राजकुमार कहाँ गये, जिन्होंने मेरा मन जीत लिया है।

जहं बिलोकि मृगसावकनयनी। जनु तहं बरिसकमलसितस्रेनी॥

मृग शिशु की आँखों की समान आँखवाली सीता जिधर देखती है उधर ही मानों श्वेत कमलों की वृष्टि होती है। सीताजी की आँखों का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा मालूम होता है।

लता ओट तब सषिन लषाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये॥
देषि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

जव सखियों ने सीता को व्याकुल देखा, तव उन्होंने सुन्दर राज-कुमारों को लता की ओट में वतलाया। सीताजी को उन लोगों ने वतलाया कि वह देखो, लता की ओट में वे हैं। रामजी का रूप देखकर सीताजी के नेत्र ललच गये, वे और भी उत्कंठित हुए और प्रसन्न हुये, मानो उन्होंने अपना खजाना, अपना सर्वस्व पहचान लिया है।

थके नयन रघुपति छबि देषे। पलकन्हिहू परिहरी निमेषे॥

रघुपति रामजी की छवि देखकर सीताजी की आँखें थक गयीं, मानों थककर वे वहीं अटक गयीं और पलकों ने भी निमेष त्याग दिया, आँखों के वन्द होने को निमेष कहते हैं।

अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

सीतीजी के हृदय में अधिक स्नेह उत्पन्न हुआ, वे अपने शरीर की सुध वुध भूल गयीं, जिस प्रकार चकोरी शरद ऋतु के चन्द्रमा को देखती है और वह विभोर हो जाती है।

लोचनमग रामहि उर आनी। दीन्हे पलककपाट सयानी॥

पुनः चतुर जानकी रामजी के रूप को नेत्र मार्ग से हृदय में लेगयी और उन्होंने पलक रूपी किवाड़ वन्द कर दिये। अर्थात् मन ही मन वे उनके सौन्दर्य का अनुभव करने लगीं।

जब सिय सषिन्हप्रेम वसजानी। कहि न सकहिं कछु मनसकुचानी॥

जव सखियों ने जाना कि सीता प्रेम के वश हो गयी है, यह राम पर आसक्त हो गयी है, तव वे कुछ कह न सकीं, क्योंकि वे मन ही मन सकुचा गयी थीं।

दो०—लताभवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमलविधु, जलद पटल विलगाइ॥२३१॥

उसी समय दोनों भाई लताभवन से प्रकट हुए, वाहर आये, मानो मेघमण्डल को अलग करके दो चन्द्रमा साथ ही निकले हों।

सोभासीव सुभग दोउ वीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा॥

ये दोनों शोभा की सीमा है और सुन्दर वीर हैं, इनमें एक नील कमल-के समान शरीरवाला और दूसरा पीले कमल के समान शरीरवाला है अर्थात् एक श्याम है और दूसरा गोरा।

मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छा विच विच कुसुम कलीके॥

इनके सिर पर मोर पंख बड़ा भला मालूम पड़ता है, जिसके बीच बीच में फूलों की कलियों के गुच्छा लगे हुए हैं।

भाल तिलक श्रम बिंदु सुहाये। स्रवन सुभग भूषन छवि छाये॥

माथे पर तिलक और परिश्रम के कारण आया हुआ पसीना भले मालूम होते हैं और कानों में सुन्दर भूषण शोभित हो रहा है।

विकट भृकुटि कच घूघर वारे। नव सरोजलोचन रतनारे॥

भौहें विशाल और टेढी हैं, बाल घुघराले हैं और नवीन विकसित कमल के समान उनकी लाल आँखें हैं।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास विलास लेत मन मोला॥
मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो विलोकि बहु कामलजाहीं॥
उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सीवा॥

ठुड्डी, नासिका और कपोल सुन्दर हैं, उनकी हँसी की शोभा तो मानों मन को मोल ले लेती है। कवि कहते हैं, कि रामजी के मुख की शोभा कैसी थी यह मेरे द्वारा नहीं कही जा सकती, क्योंकि उनके मुख की शोभा को देखकर तो अनेक काम लज्जित होते हैं। छाती पर मणियों की माला है, शंख के समान सुराहीदार सुन्दर गला है, उनकी भुजाएँ कामदेव रूपी हाथी के बच्चे की सूंड के समान हैं और वे असीम बलवाले हैं।

सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुअँर सखी सुठी लोना॥

जिनके बाँयें हाथ में पुष्पों सहित दोना है। इनमें साँवला कुवँर हे सखी, बड़ा ही सलोना है।

दो०-केहरि कटिपट पीत धर, सुखमासीलनिधान।
देषि भानुकुल भूषनहि, बिसरा सषिन्ह अपान ॥२३२॥

जिनकी कमर सिंह की कमर के समान है, जो पीत वस्त्र पहने हुए हैं और जो सौन्दर्य और शील के निधान हैं, उन सूर्य कुल भूषण रामचन्द्रजी को देखकर सखियाँ अपने को भूल गयीं, वे रामजी की शोभा देखने में तन्मय हो गयी।

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥

एक चतुर सखी धैर्य धरकर अपने को सम्भालकर सीता का हाथ धर कर उनसे बोली, सीताजी रामजी को देखने में तन्मय हो गयी थीं इस लिए सखी ने उनका हाथ पकड़ा जिससे वे सचेत हो जाँय।

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देषि किन लेहू॥

सीताजी आँख मूंदे हुई थीं, यह देखकर उस सखी ने कहा, पार्वती का ध्यान फिर कर लेना, इस समय इस राजकुमार को देख क्यों नहीं लेती। सखी ने यह ताने से कहा, वह जानती थी सीता मन ही मन इसी राज-कुमार को देख रही है, फिर भी उसने ताने से कहा।

सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुष दोउ रघुसिंह निहारे॥

तब सकुचाकर, लज्जित होकर सीता ने अपनी आँखें खोलीं और उन्होंने सामने ही दोनों रघुसिंहों को देखा, रघु सिंह का अर्थ है रघुश्रेष्ठ अर्थात् रघु कुल के प्रधान। सिंह शब्द जिस शब्द के आगे आवेगा उसी की प्रधानता वह लावेगा।

नष सिष देषि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा॥

नख से सिख तक रामजी की शोभा देखकर और पिता की प्रतिज्ञा का स्मरण कर सीता के मन में बहुत दुःख हुआ। राम का सौन्दर्य और कोमलता देखकर सीता ने उनसे अपने व्याह होने की कामना की, पर जब पिता की कठिन प्रतिज्ञा का उन्हें स्मरण हुआ तब वे व्याकुल हुईं, क्योंकि रामजी के समान कोमल पुरुष के द्वारा उन्होंने पिता की उस कठिन प्रतिज्ञा

का पूरा किया जाना असम्भव समझा; अतएव रामजी की ओर से वे निराश हुई और दुःखी हुईं।

परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भये गहरु सब कहहिं सभीता॥

सखियों ने जब सीताजी को परवश देखा, जब उन्होंने देखा कि ये रामचन्द्र के प्रेम में विभोर हो गयी हैं, तब वे भयभीत होकर कहने लगीं कि अब तो कठिनता हुई।

पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। असकहिमनबिहँसी एकआली॥

सीता की एक सखी ने कहा कि कल पुनः इसी समय हम लोग आवेंगी और ऐसा कह कर वह मन ही मन हँसी। तात्पर्य यह कि आज देर हो गयी, कल फिर आना और देखना।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भएउ बिलंब मातु भय मानी॥

सखी की गूढ़ वाणी सुनकर और उसका अर्थ समझकर सीता सकुचायी, विलम्ब हो गया, घर लौटने में देर हुई; इससे वे माता से डरीं भी। अर्थात् विलम्ब का कारण माता पूछेंगी तो उनको क्या बतलाया जायगा, अथवा विलम्ब का कारण बतलाते कहीं रामजी के साक्षात्कार की बातें प्रकट न हो जाँय आदि बातों को सोचकर वे डरीं।

धरि बड़ धीर राम उर आने। फिरी अपनपौ पितु बस जाने॥

सीता बड़े प्रयत्नों से धैर्य धारण करके, रामचन्द्रजी को अपने हृदय में ले आयी, पर अपने मनोरथ की सिद्धि उसने पिता के अधीन जानी। सीता का इतना ही वस था कि वह रामजी का रूप हृदय में अंकित करले; सो उसने किया, आगे की बात पिता के अधीन है।

दो०—देषनमिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरषि निरषि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥ २३३॥

मृगा, पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने सीताजी बार बार बाग में घूम रही हैं। रामजी को देखकर उनके मन में थोड़ा प्रेम नहीं बढ़ता,

अर्थात वे रामजी को ज्यों ज्यों देखती हैं; त्यों त्यों उनका प्रेम और अधिक बढ़ता है।

जानि कठिन सिव-चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामलमूरति॥

पर शिवजी का धनुष कठिन है; इस बात को जानकर उनकी आँखें डबडबा आती हैं। अतएव हृदय में श्याममूर्ति को रखकर वे चलीं। बिसूरना का अर्थ है—सिसक कर रोना। यद्यपि शिवधनुष कठोर है तथापि सीता हताश नहीं हुईं। अतएव श्याम मूर्ति को हृदय में रखकर गयीं।

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुखसनेहसोभागुनखानी॥
परम प्रेम मय मृदुमसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही॥

प्रभु रामचन्द्र ने जब: सुख, स्नेह, शोभा और गुण की खान सीता जारही हैं यह देखा; तब उन्होंने प्रेममय कोमल स्याही से अपने सुन्दर चित्तरूपी भीत पर उनका रूप लिख लिया। कोमल स्याही से लिखा, शायद कठिन स्याही से लिखने पर सीता के अनुपम कोमल सौन्दर्य को धक्का लगता। अथवा प्रेम की स्याही कोमल होती ही है।

गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥

सीताजी पुनः भवानी के मन्दिर में गयीं, उनके चरणों की वन्दना करके और हाथ जोड़ करके बोलीं, सीताजी ने पिता की कठिन प्रतिज्ञा के कारण अपने मनोरथ को पूर्ण न होते देखकर, उसीको सरल करने की तथा उसकी बाधा हटाने की प्रार्थना की।

जै जै गिरिवर राज किसोरी। जै महेश मुखचन्द्र चकोरी॥

हे हिमालय की कन्या आप की जय हो! जय हो!! हे शिव के मुख रूपी चन्द्रमा के लिए चकोरी, आपकी जय हो!

जय गजवदनषडानन माता। जगत जननि दामिनि दुतिगाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहि जाना॥
भव भव विभवपराभवकारिनि। विस्वविमोहनिस्ववसविहारिनि॥

हे गणेश और षडानन कार्तिकेय की माता, हे जगत् की माता, हे विद्युत के समान गात्रवाली, आपकी जय हो ! आपका न आदि है न मध्य है और न अन्त ही है, आपके अपरिमित प्रभाव को वेद भी नहीं जानते। संसार की उत्पत्ति, उसका पालन और संहार तुम्हीं करती हो। मायारूप से तुम संसार को मोहित करने वाली हो और अपने वश में ही तुम विहार करती हो, अर्थात तुम किसीके अधीन नहीं हो।

दो०–पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेष ॥२३४॥

हे माता, पति को देवता मानने वाली उत्तम स्त्रियों में तुम्हारी प्रथम गणना होती है, अर्थात् पतिव्रताओं में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। तुम्हारी अकथनीय महिमा को हजारों सरस्वती और शेष नाग भी नहीं कह सकते।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदाइनी पुरारिहि प्यारी॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सब ही के॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥

त्रिपुर का नाश करनेवाले शिवजी की प्रिया, हे वरदेनेवाली ! आपकी सेवा करनेवालों के लिए चारों फल अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सुलभ हैं; अनायास प्राप्त होते हैं। हे देवि, तुम्हारे चरण कमलों की पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी होते हैं। मेरा मनोरथ क्या है? मैं क्या चाहती हूँ ? यह आप अच्छी तरह जानती हैं; क्योंकि आप सदा सब प्राणियों के हृदयों में वास करती हैं। अर्थात् आप सब जानती हैं, इसीलिए मैंने कारण प्रकट नहीं किया, अपना मनोरथ नहीं बतलाया, ऐसा कह कर वैदेही पार्वती के चरणों पर पड़ीं।

विनयप्रेमबस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु उर भरेऊ॥

भवानी पार्वती जी विनय और प्रेम के वश हो गयी, इसीलिए माला गिर गयी—जो सीता को आशीर्वाद देने के लिए उन्होंने उठायी थीं, इससे मूर्ति हँसी। सीता ने आदर पूर्वक उनका प्रसाद सिर चढ़ाया, पार्वती का हृदय आनन्द से भर गया और वे बोलीं,

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद वचन सदा सुचि सांचा। सो बर मिलिहि जाहिं मनराचा॥

सीता, सुनो, मेरा आशीर्वाद सत्य होगा, तुम्हारी मन कामना—तुम्हारा मनोरथ पूजेगा। नारद का बचन सदा पवित्र और सत्य होता है। जिस वर को तुम्हारा मन चाहता है, वह वर तुम्हें अवश्य मिलेगा।

छं०—मन जाहि राच्यौ मिलिहि सो बर सहज सुंदर सांवरो।
करुनानिधान सुजान सीलसनेह जानत रावरो॥

जिस वर में तुम्हार मन रंग गया है, जिसको तुम्हारा मन चाहता है, वही स्वभाव सुन्दर, श्याम वर, तुमको अवश्य मिलेगा, वे दयालु और बुद्धिमान हैं, आपके शील और स्नेह को अच्छी तरह जानते हैं।

एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चली॥

इस प्रकार गौरी का आशीर्वाद सुनकर सीता अपनी सखियों के साथ प्रसन्न हुईं। तुलसीदास कहते हैं कि, भवानी की पुनः पूजा करके अपने मन में प्रसन्न होती हुईं पुनः वे अपने घर चलीं।

सो०—जानि गौरि अनकूल, सिय हिय हरष न जाइ कहि।
मंजुलमगलमूल, वाम अंग फरकन लगे॥

गौरी देवी प्रसन्न हैं, प्रसन्न होकर उन्होंने वर दिया है, यह जानकर सीता के हृदय में जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता, और सुन्दर भावी मंगलों की सूचना देनेवाले उनके वाम अंग फरकने लगे। पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बाँया अंग फरकना शुभ समझा जाता है।

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई॥

हृदय में सीता जी के लावण्य की प्रशंसा करते हुए दोनों भाई गुरु के समीप गये।

राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥

राम ने कौशिक मुनि से सब कहा, फुलवारी में उन्होंने सीता को जैसे देखा था, वह सब बतलाया, राम जी का स्वभाव सीधा है, उनके स्वभाव में छल छू तक नहीं गया है, अतएव उन्होंने सब बातें बतला दीं।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे। राम लषन सुनि भए सुषारे॥

फूल पाकर मुनि ने पूजा की और पुनः दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिये। मुनि ने कहा, तुम लोगों के मनोरथ सुफल हों, तुम लोगों का मनोरथ पूरा हो, मुनि का यह आशीर्वाद सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई सुखी हुए।

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
विगत दिवस गुरु आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥

भोजन करने के पश्चात् ज्ञानी मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र कुछ पुरानी कथाएँ कहने लगे। दिन के बीतने पर सन्ध्या के समय गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या वन्दन करने के लिए चले।

प्राची दिसि ससि उयेउ सुहावा। सिय मुष सरिस देषि सुषपावा॥
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं। सीय वदन सम हिमकर नाहीं॥

पूर्व दिशा में सुन्दर चन्द्रमा का उदय हुआ। चन्द्रमा सीता के मुख के समान है; यह देख रामचन्द्र को सुख हुआ। पुनः जब रामचन्द्र जी ने मन में विचार किया तो उन्हें मालूम हुआ कि चन्द्रमा सीता के मुख के समान नहीं है। इसका कारण सुनिए,

दो०–जनम सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंकु।
सिय मुष समता पाव किमि, चंद बापुरो रंकु॥ २३५॥

क्योंकि चंद्रमा का जन्म समुद्र से हुआ है जो खार है, चंद्रमा का भाई विष है, दिन में इसकी शोभा जाती रहती है और यह कलङ्की है, फिर यह बिचारा दरिद्र चन्द्रमा, सीता के मुख की शोभा कैसे पा सकता है?

घटइ बढइ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई॥

चंद्रमा घटता है और बढ़ता है, यह विरहिनियों को दुःख देता है और मौका पाकर राहु इसे ग्रसता है।

कोक सोक प्रद पंकज द्रोही। औगुन बहुत चंद्रमा तोही॥
बैदेही मुष पटतर दीन्हे। होय दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥

यह चंद्रमा; चकवा और चकइयों को शोक देता है; उनका आपस में वियोग कराता है और कमल का शत्रु है, इस प्रकार चंद्रमा में अनेक दुर्गुण हैं। उस चंद्रमा की यदि सीता के मुख से तुलना की जाय तो यह अनुचित होगा, और अनुचित करना बड़ा भारी अपराध है।

सिय मुष छबि बिधुब्याजबषानी। गुरु पहिं चले निसा बड़ि जानी॥

इस प्रकार चंद्रमा के बहाने सीता के मुख की शोभा का वर्णन करके और बहुत रात चली गयी है यह जानकर, दोनों भाई गुरु के समीप गये।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिस्रामा॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुषदाता॥

मुनि के चरण कमलों को प्रणाम कर तथा उनकी आज्ञा पाकर दोनों भाइयों ने विश्राम किया। रात के बीतने पर रामचंद्रजी जागे और भाई को देखकर ऐसा कहने लगे, भाई! देखो, अरुणोदय हो गया, यह अरुणोदय कमल, लोक समुदाय तथा चक्रवाक इनको सुख देनेवाला है।

बोले लषन जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी॥

लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर रामचन्द्र की महिमा जनानेवाली सुन्दर वाणी बोले,

दो०—अरुन उदय सकुचे कुमुद, उडुगन जोति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन ॥२३६।

अरुण के उदय से कुमुद सकुचा गये और नक्षत्रों की ज्योति मलिन हो गयी। इसी प्रकार आपके आगमन को सुनकर राजा लोग बलहीन हो गये, उनकी हिम्मत टूट गयी। सीता स्वयम्बर में जो राजा आये थे उनके लिए लक्ष्मण कह रहे हैं।

नृप सब नषत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चाप तमभारी॥

नृपगण नक्षत्र हैं, वे प्रकाश तो करते हैं, पर धनुषरूपी भारी अन्धकार को वे टार नहीं सकते।

कमल कोक मधुकर षग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥
ऐसे सब प्रभु भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुषारे॥
उयेउ भानु बिनु स्रम तम नासा। दुरे नषत जग तेज प्रकासा॥

रात बीत गयी यह जानकर कमल, चक्रवाक, भ्रमर तथा अनेक पक्षी प्रसन्न हुए। प्रभु, इसी प्रकार सब तुम्हारे भक्त भी धनुष के टूटने पर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ और बिना परिश्रम के ही अन्धकार का नाश हुआ, नक्षत्र हट गये और जगत् में तेज फैल गया।

रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपन्ह दिषाया॥

हे रामचन्द्र जी, सूर्य ने अपने उदय के बहाने आपका प्रताप सब राजाओं को दिखाया है।

तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनुविघटन परिपाटी॥

यह धनुष तोड़ने की जो परिपाटी है, जो क्रम है अर्थात् सीता उसीसे व्याही जायगी जो धनुष तोड़ेगा। यह जो जनक की प्रतिज्ञा है, यह आपकी

भुजाओं के बल की महिमा प्रकाशित करने के लिए है। यह दूसरे से तो टूटेगा नहीं; इसे तोड़ेंगे आप ! और इससे आपके बल की प्रसिद्धि होगी।

बंधु वचन सुनि प्रभु मुसकाने। है सुचि सहज पुनीत नहाने॥

लछमणजी की बात सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी हँसे और स्वभावतः पवित्र भी रामचन्द्र जी ने पवित्र हो कर स्नान किया।

नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आये। चरन सरोज सुभगसिर नाये॥

नित्य क्रिया पूजन आदि करके वे गुरु के पास आये और उन्हेंाने गुरु के चरण कमलों पर अपना सुन्दर सिर नवाया।

सतानंद तब जनक बोलाये। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाये॥

राजा जनक ने अपने पुरोहित शतानन्द को बुलाया और उन्हें शीघ्र ही कौशिक मुनि के पास भेजा।

जनक विनय तिन्ह आनि सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई॥

शतानन्द ने आकर जनक की प्रार्थना कौशिक मुनि से सुनायी, इससे वे प्रसन्न हुए और उन्हेंाने दोनों भाइयों को बुलाया।

दो०-सतानंद पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठएउ जनक बोलाइ॥२३७॥

प्रभु रामचन्द्र, शतानन्द के चरणों को प्रणाम कर गुरु के पास जाकर बैठ गये, तब मुनि ने रामजी से कहा, हे तात, चलो, जनक ने बुला भेजा है !

(सभागमन)

सीय स्वयंबर देषिय जाई। ईस काहि धौं देहि बड़ाई॥

सीता का स्वयंबर चलकर देखें। देखें, भगवान् किस को बड़ाई देता है, कौन सफल होता है, किसको सीता मिलती है।

लषन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तब जापर होई॥

तब लचमण ने कहा, नाथ, आपकी कृपा जिसपर होगी उसीको यश मिलेगा अर्थात उसीको सीता मिलेगी ।

हरषे मुनि सब सुनि बरबानी । दीन्ह असीस सबहि सुषमानी ॥

लचमण की इस उत्तम वाणी को सुनकर सभी—विश्वामित्र और उनके साथी—मुनि प्रसन्न हुए, और प्रसन्न होकर सभीने आशीर्वाद दिया ।

पुनि मुनि वृंद समेत कृपाला । देषन चले धनुषमखसाला ॥

पुनः कृपालु श्रीराम मुनियों के साथ धनुष यज्ञशाला देखने चले ।

रंग भूमि आये दोउ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन पाई ॥
चले सकल गृहकाजबिसारी । बाल जुबान जरठ नर नारी ॥
देषी जनक भीर भइ भारी । सुचि सेवक सब लिये हंकारी ॥

रंग भूमि (सभा) में दोनों भाई आये, यह खबर सब पुरवासियों को लग गयी, तब वे सभी बालक, जवान, वृद्ध, स्त्री, पुरुष घर के कामों को छोड़ छोड़कर चलें । जब राजा जनक ने देखा कि बड़ी भीड़ हो गयी, तब उन्होंने अपने विश्वासी सब नौकरों को बुला लिया ।

तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू । आसन उचित देहु सब काहू ॥

जनक ने अपने नौकरों से कहा—तुम लोग तुरत सबके पास जाओ और उन सबको उचित आसन दो, जो जिस योग्य है, उसको वहाँ बैठाओ ।

दो०—कहि मृदु वचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥२३८॥

जनक के उन सेवकों ने भी कोमल और विनय युक्त वचन कह कह कर सब स्त्री-पुरुषों को बैठाया, जो जैसा था, श्रेष्ठ, मध्यम, नीच और छोटे तथा बालक इन सब को अनुरूप आसन दिया अर्थात् जो जैसा था उसे वहाँ बैठाया ।

राज कुअंर तेहि अवसर आये । मनहुँ मनोहरता तन छाये ॥

उसी समय राजकुमार राम और लक्ष्मण आये, मानो मनोहरता उनके शरीर पर छायी है।

गुन सागर नागर बरबीरा। सुंदर स्यामलगौरसरीरा॥

वे गुण के सागर, चतुर, श्रेष्ठ, तथा सुन्दर श्याम और गौर शरीर वाले हैं।

राज समाज बिराजत रूरे। उडुगन महँ जनु जुग बिधु पूरे॥

वे राजाओं की सभा में ऐसे शोभते थे जैसे ताराओं की श्रेणि में सम्पूर्ण दो चन्द्रमा हों।

जिन्ह कै रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देषी तैसी॥

जिन की जैसी भावना थी, जिनकी जैसी प्रकृति थी, प्रभु रामचन्द्रजी को उन्होंने वैसा ही देखा। एक ही रामचन्द्रजी प्रकृतिभेद से अनेक प्रकार के समझे गये।

देषहिं भूप महारनधीरा। मनहुँ बीररस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

राजा लोग रामचन्द्रजी को बड़ा भारी योद्धा समझते थे, वे समझते थे कि मानों वीर रसने ही स्वयं शरीर धारण किया हो। जो राजा कुटिल थे, उन्होंने रामचन्द्रजी को एक बड़ी भारी भयानक मूर्ति के रूप में देखा।

रहे असुर छल छोनिप बेषा। जिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देषा॥

जो राक्षस छल से राजाओं के वेष में थे; उन सब ने भगवान् रामचन्द्र को काल के वेष में देखा। रामचन्द्र को उन लोगों ने साक्षात् काल समझा।

पुरबासिन्ह देषे दोउ भाई। नर भूषन लोचनसुषदाई॥

जनकपुर के रहनेवाले नागरिकोंने दोनों भाइयों को मनुष्यों का भूषण समझा, और नेत्रों को सुख देनेवाले समझा।

दो०-नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप॥ २३९॥

स्त्रियाँ—जिनकी जैसी रुचि थी वे अपनी रुचि के अनुसार रामचन्द्रजी को देखती हैं और मन ही मन प्रसन्न होती हैं, मानो परम सुन्दर रूप धरकर साक्षात शृंगार रस शोभता हो।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहुमुषकरपगलोचनसीसा॥

विद्वानों ने प्रभु को विराट् रूप में देखा, उन्होंने देखा कि रामचंद्र के अनेक मुख, अनेक हाथ, अनेक चरण, अनेक नेत्र और अनेक मस्तक हैं।

जनकजाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

राजा जनक की जाति वालों ने रामचंद्र को अपने सगे प्रिय स्वजन के रूप में देखा।

सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाइ बषानी॥

राजा जनक और उनकी रानी शिशु के समान—बालक के समान देखते थे और उनपर उनकी इतनी अधिक प्रीति थी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जोगिन्ह परम तत्वमयभाषा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥

योगियों को रामचंद्रजी परम तत्त्वस्वरूप भासित हुए, जो शान्त, शुद्ध और स्वाभाविक प्रकाश स्वरूप हैं।

हरि भगतन देषे दोउ भ्राता। इष्ट देव इव सब सुषदाता॥

भगवान् के भक्तों ने दोनों भाइयों को इष्ट देव के समान समझा, और सब प्रकार के सुखों को देनेवाला समझा।

रामहिं चितहिं भाव जेहि सीआ। सो सनेह सुष नहिं कथनीआ॥

रामजी को देखने से सीता के हृदय में जो स्नेह और सुख हुआ वह कहा नहीं जा सकता, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

उर अनुभवित न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहइ कविकोऊ॥

सीता जी उस स्नेह और सुख का अपने हृदय में केवल अनुभव कर

रही हैं, वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं, फिर कोई कवि उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता है।

जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसल राऊ॥

जिसका भाव जैसा था तथा जिस तरह का था उसने कोशल राजा रामचंद्रजी को वैसा ही देखा।

दो०–राजत राज समाज महँ, कोसल राज किसोर॥
सुंदर स्यामल गौर तन, विस्व विलोचन चोर॥ २४०॥

कोशल राज दशरथ के कुमार राम और लक्ष्मण राज समाज में शोभित हो रहे हैं, वे सुन्दर श्याम और गौर शरीर के हैं तथा संसार की दृष्टि को अपनी ओर खींचनेवाले हैं। यहाँ चोर शब्द का अर्थ चोर नहीं है किंतु आकर्षक या खींचनेवाला है। रामजी संसार की आँखों को अपने सौन्दर्य से अपनी ओर खींचनेवाले हैं अर्थात अतुलनीय सुन्दर हैं।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥

वे दोनों मूर्ति, दोनों शरीर, राम और लक्ष्मण स्वाभाविक सुन्दर हैं, करोड़ों कामदेवों की उपमा भी उनके लिए थोड़ी ही है। अर्थात् करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य से भी बढ़ कर उनका सौन्दर्य है।

सरतचंद्रनिंदक मुषनीके। नीरजनयन भावते जीके॥

उनका मुख शरद् ऋतु के चंद्रमा की निन्दा करने वाले हैं और कमल के समान उनके नेत्र मन को बड़े अच्छे लगते हैं।

चितवनि चारु मार मद हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी॥

उनकी चितवन, उनकी देखने की शैली कामदेव के भी मद को हरण करनेवाली है, वह हृदय को प्रिय मालूम होती है। पर उसका वर्णन नहीं हो सकता, अर्थात् उसका केवल अनुभव किया जा सकता है; वर्णन नहीं।

कलकपोल स्तुति कुंडललोला। चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला॥

सुन्दर कपोल (गाल) हैं कानों में कुण्डल हिल रहा है, ठुढी और अधर (नीचे का ओठ) सुन्दर हैं, वाणी कोमल है।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी विकट मनोहर नासा॥

कुमुदबन्धु चन्द्रमा की किरणों की निन्दा करने वाली उनकी हँसी है, भौहें टेढी हैं, नाक सुन्दर है।

भाल विसाल तिलक झलकाहीं। कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं॥

मस्तक विशाल है, उसपर तिलक शोभित हो रहा है, उनके बालों को देखकर भ्रमरों की पंक्तियाँ लज्जित होती हैं।

पीत चौतनी सिरन्ह सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई॥

उन दोनों भाइयों के मस्तक पर पीली टोपियाँ शोभ रही हैं, जिनमें बीच बीच में फूल की कलियाँ बनायी हुई हैं।

रेषा रुचिर कंबु कल ग्रीवा। जनु त्रिभुवन सोभा की सीवा॥

उनका गला शंख के समान सुन्दर हैं, जिसमें तीन रेखाएं शोभ रही हैं, वे तीन रेखाएँ मानों त्रिलोक शोभा की सीमा हैं। एक लोक भी शोभा जहाँ तक हैं वहाँ एक रेखा, फिर दूसरे लोक भी शोभा समाप्ति पर दूसरी रेखा और इसी प्रकार तीसरी रेखा।

दो०—कुंजर मनि कंठाकलित, उरहिं तुलसी की माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु विसाल॥२४१॥

गले में गजमुक्ता की माला है, वक्षःस्थल पर तुलसी की माला है, बैल के कन्धे के समान कन्धा है, सिंह के समान उनकी चाल है, वे बलवान् हैं और उनकी बाहु विशाल है।

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष वाम बर काँधे॥

वे कमर में तूणीर (वाण रखने का भाथा,) और पीला वस्त्र बाँधे हुए हैं, उनके हाथ में वाण हैं और सुन्दर बायें कन्धे पर धनुष लटकता है।

पीत जज्ञ उपवीत सुहाये। नष सिष मंजु महा छवि छाये॥

देषि लोग सब भये सुषारे। एक टक लोचन टरे न टारे॥

पीला यज्ञोपवीत सोह रहा है, वे नख से सिख तक सुन्दर, महाछवि के होने से मनोहर मालूम होते हैं।

हरषे जनक देषि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥

दोनों भाइयों राम और लछमण को देखकर जनक प्रसन्न हुए और जाकर उन्होंने मुनि विश्वामित्र के चरणकमलों को प्रणाम किया।

करि विनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देषाई॥

जनक ने प्रार्थना करके अपनी कथा सुनायी। सीता की उत्पत्ति तथा अपनी प्रतिज्ञा का कारण उन्होंने सुनाया और मुनि के साथ जाकर उन्होंने सब सभामण्डप उन्हें दिखाया।

जहँ जहँ जाहिं कुँवर वर दोउ। तहँ तहँ चकित चितव सब कोउ॥

जिधर जिधर वे दोनों सुन्दर कुमार जाते थे, उधर ही उधर चकित होकर सब लोग देखने लगते थे।

निज निज रुप रामहिं सब देषा। कोउ न जान कछु मरम विसेषा॥

सभी ने राम को अपनी अपनी भावना के अनुसार देखा, किसीने भी मर्म की कुछ विशेष बातें न जानीं, अर्थात् रामजी कौन हैं; इनका यथार्थ रूप क्या है, आदि बातों का पता किसी को भी नहीं लगा।

भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुष लहेऊ॥

मुनि ने राजा जनक से कहा कि मण्डप की रचना बड़ी सुन्दर है। यह सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और सुखी हुए।

दो०–सब मंचन्ह से मंच एक, सुन्दर विसद विसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल॥ २४२॥

सब मंचों से सुन्दर श्वेत और विशाल एक मंच था, उस पर राजा जनक ने दोनों भाइयों के साथ मुनि को ले जाकर बैठाया।

प्रभुहि देषि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भये तारे॥

प्रभु राम को देखकर सब राजा मन ही मन हार गये, सीता के मिलने की आशा उन लोगों ने छोड़ दी, जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने से ताराओं की दशा हो जाती है, वही दशा उन राजाओं की भी हुई। चन्द्रमा और तारा के अंतर के समान रामजी और उन राजाओं में अंतर था।

अस प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥

सभी के मन में यह विश्वास हो गया कि रामजी ही धनुष तोड़ेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

बिनु भंजेहु भव धनुष बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचार गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गवाँई॥

और शिवजी के इस विशाल धनुष यदि रामचन्द्रजी न भी तोड़ें तो भी सीता राम ही के गले में माला पहनावेगी, सीता राम ही को अपना वर चुनेगी, यश, प्रताप, बल और तेज को गवाँकर अब यहाँ से घर ही चलना चाहिए, यश प्रताप आदि तो जाँयगे ही, प्राण भी तो बच जाँय।

बिहंसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी॥

जो अज्ञान से अन्धे हो गये थे, और जो अभिमानी थे वे दूसरे राजाओं की इस बात को सुन कर हँसे।

तोरेहु धनुष ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुअँरि बिवाहा॥

धनुष के तोड़ने पर भी व्याह खेल नहीं, वह कठिन है, फिर धनुष बिना तोड़े राज कुमारी को कौन व्याह सकेगा ?

एक बार कालहु किन होऊ। सियहित समर जितब हम सोऊ॥

एक बार काल भी क्यों न हो, सीता के लिए रण में उसको भी जीत लेंगे।

यह सुनि अपर भूप मुसुकाने। धरम सील हरिभगत सयाने॥

यह सुनकर और राजा जो धर्मात्मा थे, भगवान् के भक्त तथा चतुर थे, वे मुसुकाये।

सो०-सीय वियाहब राम, गरब दूरिकरि नृपन्हको।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बाँकुरे॥

उन्होंने कहा, राजाओं के अभिमान को दूर कर, रामजी सीता से ब्याह करेंगे। दशरथ के इन रणबाँकुरों को भला संग्राम में कौन जीत सकेगा? इनको जीतना असंभव है।

बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकन्हिकि भूख बुताई॥

गाल बजाकर व्यर्थ न मरो अर्थात् बिना मतलब के शेखी मार कर नाहक मकर रहे हो, क्या मन के लड्डुओं से भूख जाती है।

सिष हमार सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता॥

हमारा परम पवित्र उपदेश सुनकर तुम अपने मन में सीता को जगदंबा समझो।

जगत पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी॥

रामचन्द्र को जगत् पिता समझकर, भर आँख इनकी शोभा देखलो।

सुंदर सुषद सकल गुन रासी। ए दोउ बंधु संभु उर वासी॥
सुधा समुद्र समीप विहाई। मृग जल निरषि मरहु कत धाई॥

सुन्दर, सुखद और सब गुणों की राशि ये दोनों भाई शिवजी के हृदय में वास करते हैं, अर्थात् शिवजी के भी ये आराध्य हैं। पास ही में अमृत के समुद्र को छोड़ कर मृगतृष्णा के जल की खोज में दौड़ कर क्यों मरते हो।

करहु जाइ जा कहं जो भावा। हम तौ आजु जन्म फल पावा॥
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप विलोकन लागे॥
देषहिं सुर नभ चढ़े विमाना। बरषहिं सुमन करहिं कल गाना॥

तुम लोगों की जो इच्छा हो, जिसको जो अच्छा लगे, वह वही करे, पर मैंने तो अपने जन्म का फल आज पाया। ऐसा कह कर वे अच्छे राजा प्रेमपूर्वक रामजी के अनुपम रूप को देखने लगे। देवतागण भी विमान में चढ़कर आकाश से रामचन्द्र को देख रहे हैं, पुष्प वृष्टि कर रहे हैं और मधुर गान कर रहे हैं।

(सभा में सीता का प्रवेश)

दो०-जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लेवाइ ॥ २४३ ॥

अच्छा अवसर है, सीता के बुलाने का यही उत्तम समय है, यह जानकर जनक ने सीता को बुला भेजा। सुन्दरी और चतुर सखियाँ आदरपूर्वक सीता को लेकर सभा मण्डप में चलीं।

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूपगुनखानी ॥

उस समय की सीताजी की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि वे जगदम्बा हैं और रूप तथा गुण की खान हैं।

उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥

कवि कहते हैं कि सीता के लिए सभी उपमाएँ मुझे छोटी लगती हैं, क्योंकि वे साधारण स्त्रियों के अंगों के वर्णन में काम आ चुकी हैं अर्थात् वे जूठी हो चुकी हैं।

सीय बरन तेहि उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई ॥

पुनः उन जूठी उपमाओं को सीता के वर्णन के लिए काम में लाकर कौन कुकवि कहावेगा और कौन अपयश लेगा।

जौ पटतरीय तीय महं सीया। जग अस जुवति कहां कमनीया ॥

यदि किसी स्त्री से सीता की तुलना करें तो इस संसार में ऐसी सुन्दरी स्त्री कहाँ है, जो सीता से तुलना करने योग्य हो।

गिरा मुखर तनुअरधभवानी। रति अतिदुखित अतनुपतिजानी ॥

सरस्वती भी सीता के समान नहीं हो सकती, क्योंकि वे बकवादिन हैं, और पार्वती, वे भी नहीं, क्योंकि उनका आधा अंग है, रति भी अपने पति कामदेव को शरीर हीन जानकर सदा दुःखी रहा करती है, अतएव वह भी उनसे तुलना करने योग्य नहीं है।

बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिये रमा सम किमि बैदेही ॥

लक्ष्मी से भी सीता की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि विष और मदिरा लक्ष्मी के प्रिय सहोदर हैं, भला वह लक्ष्मी सीता की बराबरी कैसे कर सकती है ?

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई। परमरूपमय कच्छप सोई॥
सोभारजु मंदरू सिंगारू। मथइ पानि पंकज निज मारू॥

यदि सौन्दर्य रूपी अमृत का समुद्र हो और वह (मथनी) कच्छपसी परम रूपवान हो, शोभा रूपी रस्सी हो, शृंगार रूपी मन्दर पर्वत हो, और कामदेव अपने कर कमलों से उस समुद्र को मथें।

दो०–येहि विधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुष मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहि सीय सम तूल॥ २४४॥

इस प्रकार समुद्र मंथन होने पर यदि सुन्दरता और सुख की मूल लक्ष्मी उत्पन्न हों तो भी सङ्कोच के साथ—डरते डरते कवि सीता के समान उनको कह सकते हैं।

चली संग लइ सषी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी॥

चतुर सखियाँ सीता को साथ लेकर चलीं, वे सखियाँ सुन्दर वाणी से गीत गाती जाती थीं।

सोह नवल तनु सुन्दर सारी। जगत जननि अतुलित छविभारी॥

सीताजी के नये युवा शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभती है, जगत जननी सीताजी की शोभा अतुलनीय थी।

भूषन सकल सुदेस सुहाये। अंग अंग रचि सषिन्ह बनाये॥

सब आभूषण अपने अपने ठीक स्थानों पर शोभा दे रहे थे। जिन्हें सखियों ने सब अंगों में रच रचकर बनाया था।

रंग भूमि जब सिय पगु धारी। देषि रूप मोहे नर नारी॥

सीता ने जब सभा मण्डप में पैर रक्खा, जब उन्होंने सभा मण्डप में प्रवेश किया, तब उनका रूप देखकर सभी वहाँ के स्त्रीपुरुष मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥

उस समय देवताओं ने प्रसन्न होकर दुंदुभी बजाई और अप्सराओं ने पुष्प वृष्टि करके गान किया।

पानिसरोज सोह जयमाला। अवचट चितये सकल भुआला॥

सीताजी के करकमलों में जयमाला शोभित हो रही है। सीताजी ने एक बार अकस्मात् सब राजाओं की ओर देखा।

सीय चकित चित रामहिं चाहा। भये मोहबस सब नरनाहा॥

पुनः उन्होंने विस्मित-चित्त होकर रामजी को देखा, जिससे वहाँ बैठे हुए दूसरे राजा मोह के अधीन हो गये मूर्च्छित से हो गये।

मुनि समीप देषे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सीता ने मुनि विश्वामित्र के समीप दोनों भाइयों को बैठे देखा, उनकी आँखें उत्सुक होकर उनके पास गयीं मानों उन्होंने कोई खजाना पा लिया हो।

दो०-गुरु जन लाज समाज बड़, देषि सीय सकुचानि।
लगी विलोकन सषिन्ह तन, रघुवीरहि उर आनि॥ २४५॥

एक तो सीता को अपने बड़ों से लाज थी, दूसरे उस बड़ी सभा को देखकर वे सकुचा गयीं थी, वे रामचन्द्र के रूप को अपने हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं।

रामरूप अरु सियछबि देषी। नर नारिन्ह परिहरी निमेषी॥
सोचहिंसकलकहतसकुचाहीं। विधि सन विनय करहिमनमाही॥

रामजी का सौन्दर्य और सीताजी की शोभा देखकर वहाँ के स्त्री पुरुष पलक बन्द करना भूल गये। वे उस समय अपने अपने मन में जो सोचते हैं उसे कहते सकुचाते हैं, सोची हुई बात के कहने का उन्हें साहस नहीं होता, अतएव मन ही मन वे ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं।

हरु विधि वेगि जनक जडताई। मति हमार असि देहु सुहाई॥

वे कहते हैं, ब्रह्मन्, जनक की जड़ता को दूर करो, जनक ने हठकर के

जो प्रतिज्ञा की है उसे छोड़ देने की उन्हें आप सुबुद्धि दें। हम लोगों के समान सुन्दर बुद्धि आप जनक को दें। जैसा हम लोग चाहते हैं वैसा ही जनक भी चाहें।

बिनु बिचारि पन तजि नरनाहू। सीयरामकर करइ बिवाहू॥

जिससे बिना सोचे विचारे राजा जनक अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दें और सीताराम का व्याह कर दें।

जग भल कहहिं भाव सब काहू। हठ कीन्हे अंतहु उर दाहू॥

ऐसा करने से जगत उनको भला कहेगा, क्योंकि यह सभी को अच्छा लगता है। सीताराम के विवाह को सभी पसन्द करते हैं। यदि कहीं राजा ने अपना हठ न छोड़ा तो इस समय तो उनको कष्ट होता ही है अंत में भी हृदय तपता ही रहेगा, परिणाम भी अच्छा न होगा।

एहि लालसा मगन सब लोगू। बर सांवरो जानकी जोगू॥

सभी लोग इसी उत्सुकता में अपने अपने मन में मग्न हैं कि यह साँवरा वर जानकी के योग्य है।

तब बंदीजन जनक बोलाये। बिरदावली कहत चलि आये॥
कह नृप जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हरष न थोरा॥

तब जनक ने वंदियों को बुलाया, वे राजा जनक की विरुदावली कहते चले आये। वर्तमान राजा तथा उनके पूर्वजों का यशोगान विरुद कहा जाता है।

राजा जनक ने कहा कि सभा के मध्य में जाकर मेरा प्रण—सीता के व्याह के लिए जो मैंने प्रतिज्ञा की है—वह सुनाओ, भाट, राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए चले, उनके हृदय में उस समय बहुत अधिक हर्ष था। कुछ लोग ऐसा भी अर्थ करते हैं कि "भाटों के हृदय में थोड़ा भी हर्ष न था पर यह अर्थ कवि सम्मत नहीं है।

(जनक प्रतिज्ञा की भाषण और धनुष उठाने का राजाओं का प्रयत्न)

दो०—बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥ २४६ ॥

तब वन्दियों ने श्रेष्ठ वचन सुनाये। उन लोगों ने कहा, सब राजागण आप लोग सुनें हम अपनी विशाल भुजा उठा उठा कर विदेहराज का प्रण—राजा जनक की प्रतिज्ञा कहते हैं।

नृपभुजबलुबिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सबकाहू॥

राजाओं का भुज बल चन्द्रमा के समान है और शिवजी का धनुष राहु के समान है यह धनुष भारी है और कठोर है, यह सब को मालूम है।

रावन बान महा भट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे॥

रावण, वाण आदि जो बड़े भारी महावीर हैं, वे भी इस शरासन को—इस धनुष को देखकर धीरे ही से लौट गये, उन लोगों ने इसे छुआ तक नहीं।

सोइ पुरारि कोदंड कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा॥
त्रिभुवनजय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठ तेही॥

उसी शिवजी के कठोर धनुष को राजसमाज में से जो कोई आज तोड़ेगा, उसे त्रीभुवन की विजय-लक्ष्मी के साथ जानकी बिनाविचारे हठ पूर्वक वरेगी, उसको अपना पति बनावेगी। इस धनुष के तोड़ने से सीता तो मिलेहीगी साथ ही त्रिभुवन की विजय-लक्ष्मी भी मिलेगी, क्योंकि त्रिभुवन के किसी भी वीर ने इसे अभी तक नहीं तोडा।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माषे॥

राजा जनक का प्रण सुनकर सभी राजाओं के मन में उत्कण्ठा हुई, सभी के मन में धनुप तोड़ने तथा सीता को पाने की चाह हुई और जो अपने को वीर समझते थे उनके मन में क्रोध हुआ।

परिकर बांधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिरु नाई॥

वे शीघ्रतापूर्वक कमर कस कर अपने अपने इष्टदेवों को प्रणाम कर चले, धनुष तोड़ने के लिए उठे।

तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहीं। उठइ न कोटि भांतिबलकरहं॥

ये जोश में भरकर निशाना ठीक कर तथा देखकर शिव के धनुष को धरते हैं, उसे उठाना चाहते हैं, वे करोड़ों तरह से बल लगाते हैं तथापि वह धनुष नहीं उठता।

जिन्ह के कुछ विचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

जिन राजाओं के मन में कुछ विचार था, कुछ समझदारी थी, वे राजा धनुष के समीप भी नहीं गये।

दो०-तमकि धरहिं धनु मूढ नृप, उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ॥२५७॥

मूर्ख राजा जोश में भर कर धनुष को उठाना चाहते हैं, जब वह नहीं उठता तब वे लजाकर चले आते हैं, मानों वीरों का बाहुबल पा पा कर वह धनुष और अधिक भारी हो गया है।

भूपसहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥

जब वे राजा अलग अलग न उठा सके, तब वे एक ही बार अर्थात साथ ही दस हजार राजा उस धनुष को उठाने लगे, पर उठाने की तो बात क्या वह अपने स्थान से भी न टरा। क्रोध में आकर राजाओं ने अपनी लज्जा दूर करने के लिए शायद यह उपाय किया हो।

डगइ न संभुसरासन कैसे। कामीवचन सती मन जैसे॥
सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनुविराग संन्यासी॥
कीरति विजय वीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥

शिव का धनुष उन राजाओं से उसी प्रकार नहीं डिगता था, नहीं हटता था, जिस प्रकार कामी के वचन से सती स्त्रियों का मन विचलित नहीं होता। सभी—वे दस हजार राजा उपहास के योग्य हुए। वे निन्दा

के योग्य हुए, जिस प्रकार वैराग्य के विना सन्यासी होनेवाला निन्दा का पात्र होता है उसी प्रकार ये राजा भी। वे राजा धनुष के हाथों कीर्ति-विजय और वीरता जवरदस्ती हार कर चले गये।

श्रीहत भये हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥

इस प्रकार राजा लोग मन में हार कर—हताश होकर श्रीहत हुए। उनकी शोभा जाती रही, और वे जाकर अपने अपने समाज में बैठ गये।

(जनक का पश्चाताप)

नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनु साने॥

राजाओं की यह दशा देखकर जनक बहुत व्याकुल हुए, वे बोले—मानो उनका वचन क्रोध में सना हुआ था।

दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल बीर आये रनधीरा॥

जनक ने कहा, द्वीप द्वीप के अनेक राजा जो हमने प्रण ठाना है उसे सुनकर आये, देवता और दानव भी मनुष्यों का शरीर धारण कर आये, इस प्रकार अनेक वीर और अनेक योद्धा आये।

दो०-कुअँरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय॥२४८॥

सुन्दरी कन्या सीता को, बहुत बड़ी विजय को तथा अत्यन्त सुन्दर कीर्ति को पानेवाला और इस धनुप को तोड़ने वाला मानो ब्रह्मा ने बनाया ही नहीं। ब्रह्मा की सृष्टि में इस प्रकार का कोई आदमी ही नहीं।

कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकरचाप चढावा॥

कहिए, यह लाभ कौन नहीं चाहता, कौन नहीं चाहता कि यह लाभ हमें हो, और कितने शिव धनुप के चढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया।

रहउ चढाउब तोरब भाई। तिलभर भूमि न सके छुड़ाई॥

भाई, धनुष के चढ़ाने तथा तोड़ने की बात कौन कहे, वे तो तिलभर भी भूमि नहीं छुड़ा सके।

अब जनि कोउ माषइ भटमानी। बीरविहान मही मैं जानी॥

अब कोई भी अपने को वीर समझनेवाला मेरी बात को सुनकर क्रोध न करे। यह पृथिवी वीरों से हीन हो गयी है यह बात मैंने जान ली।

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि बिबाहू॥

अब आप लोग जिस आशा से आये हैं, उसे छोड़िए और अपने अपने घर लौट जाइए, क्योंकि ब्रह्मा ने वैदेही जानकी का विवाह होना नहीं लिखा है।

सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊं। कुआँरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥

यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर सीता का व्याह करदेता हूं तो पुण्य का नाश होता है, यदि प्रण नहीं तोड़ता हूं तो सीता अनव्याही रह जाती है, ऐसी दशा में मैं क्या करूँ।

जौं जनतेऊं विनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेऊँ न हँसाई॥

भाई, यदि मैं पहले से यह जानता होता कि यह पृथिवी वीरों से शून्य है तो प्रण करके हास्यास्पद न होता, प्रण करके अपनी निन्दा न कराता।

जनक वचन सुनि सब नर नारी। देषि जानकिहि भये दुषारी॥

जनक के वचन को सुनकर और जानकी को देखकर सब स्त्री पुरुष दुःखी भये।

(लक्ष्मण का क्रोध)

माये लषन कुटिल भइ भौंहे। रदपट फरकत नयन रिसौंहें।

उस समय लक्ष्मण को क्रोध आया, उनकी भौंहें तन गयीं, रदपट अर्थात् ओंठ फरकने लगे और आँखें क्रोधित सी हो गयीं।

दो० कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ रामपदकमल सिर, बोले गिरा प्रमान॥२४६॥

जनक के वचन लक्ष्मण को वाण के समान लगे, पर वे रामचन्द्रजी

के डर से कुछ कह नहीं सकते थे। रामजी के चरण कमलों में प्रणाम कर अर्थात् उनकी आज्ञा लेकर वे प्रमाणिक वचन बोले, अर्थात् उचित बात बोले।

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जस अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥
सुनहु भानुकुलपंकजभानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥

रघुकुल का कोई भी एक आदमी जिस समाज में हो उस समाज में ऐसी बात कोई नहीं कहता, जैसी अनुचित बात जनक ने कही है, सो भी रघुकुल श्रेष्ठ रामचन्द्र यहाँ वर्तमान हैं, इस बात को जानकर उन्होंने ऐसी बात कही है। हे सूर्यकुलकमल के सूर्य रामचन्द्र, सुनिए,मैं जो कहता हूँ वह अभिमान से नहीं किन्तु अपना स्वभाव कहता हूँ।

जो तुम्हार अनुसासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ॥

यदि आप आज्ञा दें तो मैं इस ब्रह्माण्ड को गेंद के समान उठा लूं।

काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रतापमहिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥

कच्चे घड़े के समान इस ब्रह्माण्ड को फोड़ दूं और मेरु पर्वत को मूली के समान तोड़ दूं। यह जो कुछ मैं कर सकूंगा, भगवान्, वह आप के प्रताप की महिमा है, फिर यह पुराना शिव का धनुष विचारा क्या चीज है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ॥

नाथ, यह जानकर आप आज्ञा दें, और जो मैं खेल करूं उसे आप देखें।

कमलनाल जिमि चाप चढावउँ। जोजन सत प्रमान लेइ धावउँ॥

कमल की डंडी के समान धनुष चढ़ा दूं और इसे लेकर सौ योजन तक दौड़ जाऊँ।

दो०–तोरउँ छत्रकदंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करउँ प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥२५०॥

हे नाथ, आपके प्रताप के बल से मैं इसे छत्रकदण्ड के समान तोड़ दूंगा, छत्रक नाम का एक पौधा होता है जिसकी डण्डी बहुत ही कोमल होती है, यदि मैं ऐसा न कर सकूं तो आपके चरणों की शपथ करता हूं पुनः मैं हाथों में धनुष न लूंगा।

लखन सकोप वचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥

लछमण ने जब क्रोध करके वचन कहे तब पृथिवी हिलने लगी और दिग्गज (दिशाओं के हाथी) काँपने लगे,

सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥

सब लोग तथा सब राजा डर गये, सीता के हृदय में आनन्द हुआ और जनक लज्जित हुए।

गुरु रघुपति सब मुनिमन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं॥

गुरुविश्वामित्र रामचन्द्र तथा और सब मुनि मन ही मन प्रसन्न हुए और पुलकित हुए।

सैनहिं रघुपति लषन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

रामचन्द्रजी ने इशारे से लक्ष्मण को मना किया और प्रेमपूर्वक अपने पास उन्हें बैठा लिया।

विस्वामित्र समय सुभजानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापू। मेटहु तात जनकपरितापू॥

मुनि विश्वामित्र उत्तम समय आया जानकर स्नेहमयवाणी बोले, राम, उठो, शिवधनुष को तोड़ो, और जनक के दुःख को दूर करो।

(धनुर्भङ्ग)

सुनि गुरु वचन चरन सिर नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा॥

रामजी ने गुरु का वचन सुनकर उन्हें प्रणाम किया, उस समय रामजी के हृदय में न तो हर्ष ही हुआ और न शोक ही।

ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये। ठवनि जुवा मृगराज लजाये॥

स्वाभाविक ढंग से वे उठकर खड़े हुए, उनके चलने का ढंग देखकर सिंह भी लज्जित हुए।

दो०–उदित उदय गिरि मंच पर, रघुवरबालपतंग।
विकसे संतसरोज सब, हरषे लोचनभृंग ॥२५१॥

जब रामजी मंच पर खड़े हुए उस समय का वर्णन कवि करते हैं। मंच रूपी उदयाचल पर रामचंद्र रूपी बालसूर्य (प्रातःकाल का सूर्य) उदित हुआ। सज्जन रूपी कमल विकसित हुए और नेत्र रूपी भौंरे प्रसन्न हुए।

नृपति केरि आसा निसिनासी। वचन नषत अवलीन प्रकासी॥

इस सूर्योदय से राजाओं की आशा रूपी रात्रि का नाश हुआ और उन राजाओं के वचनरूपी नक्षत्रों का प्रकाश भी जाता रहा।

मानी महिपकुमुद सकुचाने। कपटीभूप उलूक लुकाने॥

अहंकारी राजा कुमुद के समान हुए और वे इस सूर्योदय से शंकुचित हुए, और जो कपटी राजा थे वे उलूक के समान थे और छिप गये।

भये विसोक कोक मुनिदेवा। वरषहिं सुमन जनावहिं सेवा॥

देवता और मुनिगण चक्रवाक के समान हैं और उनका शोक जाता रहा। वे पुष्प वृष्टि करने लगे, और वे इस प्रकार अपना सेवा भाव प्रकाशित करने लगे।

गुरुपदबंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्हसन आयसु मांगा॥

प्रेम के साथ गुरु के चरणों को नमस्कार कर रामचन्द्रजी ने मुनियों से आज्ञा मांगी।

सहजहि चले सकल जगस्वामी। मत्तमंजुवरकुंजरगामी॥

मतवाले हाथी के समान चलनेवाले सकल जगत के स्वामी अपने स्वभाव से ही चले, उनका हाथी के समान चलने का स्वभाव है अतएव वे हाथी की गति से चले।

चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भये सुषारी॥

रामजी धनुष तोड़ने के लिए जा रहे हैं यह जानकर नगर के सभी स्त्री पुरुष सुखी भये और उनका शरीर आनन्द से पुलकित हो गया।

बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाव हमारे॥
तो सिव धनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गोसाईं॥

पितरों की वन्दना करके उन लोगों ने अपने अपने पुण्यों को याद किया और कहा कि यदि हमारे पुण्य का थोड़ा भी प्रभाव हो यदि उसमें कुछ शक्ति हो तो, हे गणेशबाबा, कमल डण्डी के समान रामजी इस शिवके धनुष को तोड़ डालें।

दो०-रामहिं प्रेम समेत लषि, सषिन समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेहबस, बचन कहे बिलषाइ॥२५२।

सीताजी की माता ने प्रेमपूर्वक रामजी को देखा, सखियों को अपने पास बुलाकर स्नेह के कारण बिलख कर, दुःखी होकर उन्होंने ये वचन कहे-

सषि सब कौतुक देषनिहारे। जेऊ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृपपाहीं। ए बालकअस हठ भल नाहीं॥

सखि, ये सब तमाशा देखनेवाले जो हमारे हितैषी कहे जाते हैं; उनमें कोई भी राजा को समझाकर यह नहीं कहता कि ये बालक हैं, क्या इनसे धनुष टूटेगा, ऐसी दशा में यह हठ अच्छा नहीं, जो धनुष तोड़ेगा उसीसे कन्या का ब्याह होगा यह हठ ठीक नहीं।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा॥
सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

रावण बाण आदि वीरों ने भी इस धनुष को नहीं छुआ, और राजा भी केवल दर्प करके ही रह गये, वे भी उठा न सके और हार गये, । वही धनुष इन राजकुवार के हाथ दिया जाता है, बालक हंस क्या मदराचल को उठा सकता है। बालक हंस का मंदराचल उठाना असम्भव है उसी प्रकार इन राजकुमार के द्वारा इस धनुप का टूटना भी असम्भव है।

भूप सयानप सकल सिरानी। सषि विधिगत कहिजाति न जानी॥

राजा की समस्त बुद्धिमानी खतम हो गयी ऐसा मालूम होता है, विधाता की क्या इच्छा है; यह कुछ जान नहीं पड़ता, उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

बोली चतुर सषी मृदुबानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी॥

सखी चतुर थी, उसने कोमल वाणी से कहा, रानी, तेजस्वियों को छोटा नहीं समझना चाहिए।

कहँ कुंभज कहँ सिन्धु अपारा। सोषेउ सुजस सकल संसारा॥

कहाँ कुम्भज, कुम्भ (घड़ा) से उत्पन्न अगस्त्य और कहाँ समुद्र जिसके वार पार का ठिकाना नहीं, पर उन्होंने समुद्र को सोख लिया और संसार में उनका यश फैल गया। कहाँ घड़े से जन्म हुआ मनुष्य और कहाँ समुद, पर अगस्त्य ने समुद्र सोख लिया, इसी प्रकार राम धनुष न तोड़ेंगे ऐसा विश्वास आप मत करें

रविमंडल देषत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवनतम भागा॥

सूर्यमण्डल देखने में छोटा ही दीखता है, पर उसके उदय होते ही तीनों लोकों का अन्धकार नष्ट हो जाता है।

दो०—मंत्र परम लघु जासु बस, विधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ, बस कर अंकुस षर्व॥ २५३॥

मन्त्र भी बहुत छोटा होता है, उसका रूप बहुत ही छोटा होता है, पर ब्रह्मा विष्णु महेश और सब देवता उस मन्त्र के अधीन रहते हैं, अंकुश जो छोटा होता है वह मतवाले गजराज को वश करके उसके अहङ्कार को चूर्ण कर देता है।

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देवि तजिय संसय अस जानी। भंजब धनुष राम सुनु रानी॥

कामदेव कोमल पुष्पों का ही धनुष धारण करता है, पर उसने उसी

धनुष से सब भुवनों को अपने वश में कर लिया है। हे देवि, इन बातों की ओर देखकर आप अपने मन का सन्देह दूर कर दें, हे रानी, आप सुने, रामजी धनुष तोड़ेंगे।

सषी वचन सुनि भइ परतीती। मिटा विषाद बढ़ी अतिप्रीती॥

सखी के वचनों को सुनकर रानी के विश्वास हुआ, उनका दुःख दूर हुआ, और हृदय में अत्यंत प्रेम बढ़ा।

तब रामहिं बिलोकि वैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥

तब सीताजी ने राम को देखा, उनका हृदय भयभीत हो गया, रामजी से धनुष न टूटा तो क्या होगा, इसी विचार से वे डरने लगीं, जिस तिस की प्रार्थना करने लगीं, घबड़ाहट के कारण जो ही स्मरण हुआ उसकी सहायता के लिए विनती करने लगीं।

मनही मन मनाव अकुलानी। होउ प्रसन्न महेस भवानी॥

अधिक उत्सकता के कारण व्याकुल होकर सीता मन ही मन मनाती हैं, कहती हैं कि शिव और पार्वती प्रसन्न हों।

करहु सुफल आपन सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई॥

अपनी सेवकाई अर्थात् जो मैंने आपकी सेवा की है उसे आप आज सफल करें, अर्थात् मेरी आराधना का फल दें, मेरे कल्याण के लिए धनुष की गुरुता को आप हटावें।

गननायक बरदायक देवा। आजु लगे कीन्हेउ तव सेवा॥
बार बार सुनि बिनती मोरी। करहु चाप गरुता अति थोरी॥

हे गणनायक, प्रमथ नामक शिवके गण के स्वामी, आज तक मैंने आपकी सेवा की है और बार बार मैं आपकी बिनती करती हूँ, उसे सुनकर इस धनुष के बोझ को हलका कीजिए।

दो०–देषि देषि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचनप्रेमजल, पुलकावली सरीर॥ २५४॥

सीताजी रामचंद्रजी की ओर देख देखकर ओर धैर्य धर कर देवताओं को मनाती है, उनकी आँखें प्रेम जल से भर आयीं और उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया।

नीके निरखि नयन भरि सोभा। पितुपनु सुमिरि बहुरि मनछोभा॥

सीताजी ने भर आँख अच्छी तरह रामजी की शोभा देखी, पर पिता का प्रण जब याद आया तब उनका मन दुःखित हो गया, पहले सौन्दर्य देख कर उन्हें अपना पति बनाने की इच्छा हुई, पर पिता का प्रण उसका बाधक है; यह स्मरण कर वे दुःखित हुईं।

अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥

अहह! पिता ने बड़ा कठोर हठ ठाना है, उन्होंने कठिन प्रतिज्ञा की है, इससे क्या लाभ है, क्या हानि है, यह वे कुछ भी नहीं समझते। पिता का प्रण लाभ हानि के विचार से नहीं है किन्तु हठ के कारण है, इसीलिए दुःख है।

सचिव सभय सिष देइ न कोई। बुधसमाज बड़ अनुचित होई॥

सचिव भी डरते हैं, वे भी राजा से कुछ नहीं कहते, उन्हें उचित सलाह नहीं देते। यह विद्वानों की सभा और उसमें ऐसा अनुचित्त कार्य।

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामलमृदुगात किसोरा॥

वज्रकी अपेक्षा भी कहाँ कठोर यह धनुष, कहाँ कोमल शरीर और किशोर अवस्थावाले साँवरे रामचंद्र।

विधि केहि भांति धरउँ उर धीरा। सिरिससुमन कनवेधियहीरा॥

विधाता, मैं किस तरह धैर्य धारण करूं। किस तरह यह समझूं कि रामचंद्र भी इस धनुष को तोड़ेंगे, सिरिस का फूल क्या हीरा वेध सकता है? रामचंद्रजी के समान कोमल पुरुष से धनुष का टूट जाना असम्भव है; यदि वह असम्भव है तो सीता का ब्याह भी असम्भव है; अतएव वे कहती हैं, मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूं।

सकल सभा के मति भइ भोरी। अब मोहिं संभुचाप गति तोरी॥

इस समूची सभा की बुद्धि मारी गयी है, हे शिवजी का धनुष, अब तूही मेरी गति है, मेरे लिए उपाय है, अब तू जैसा चाहे कर।

निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥

अपनी जड़ता भारीपन, लोगों को दे दो और तुम रामचन्द्रजी को देख कर हलके हो जाओ। रामचंद्रजी के दर्शन से अपनी जड़ता अपना अज्ञान दूर करो।

अति परिताप सीय मन माहीं। लवनिमेष जुगसय सम जाहीं॥

सीताजी के मन में बड़ा दुःख हो रहा है, उनके लिए एक निमेष का लेश भी सौ युगों के समान बीतता है।

दो०–प्रभुहि चितै पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीनजुग, जनु बिधुमंडल डोल॥ २५५॥

सीता प्रभु रामचंद्र की ओर देखकर पुनः पृथिवी की ओर देखती हैं, लज्जा से ऐसा स्त्रियां करती हैं, कहीं कोई देख न ले इसे छिपाने के लिए। उस समय उनके चञ्चल नेत्र ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो वे कामदेव की दो मछलियां हों और कांपते चंद्रमण्डल में डोल रही हों। सीताजी का मुख चंद्र मण्डल के समान है।

गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥

सीता के मुखरूपी कमल ने उनकी वाणी रूपी भंवरी को रोक लिया, बाहर नहीं निकलने दिया, क्योंकि लज्जा रूपी, रात्रि को देखकर उनका मुख कमल भी विकसित नहीं हुआ। सीताजी कुछ बोल न सकीं।

लोचनजल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपन कर सोना॥

सीताजी की आँखों का जल उनकी आँखों के कोने में छिपा रहा, जैसे अति कृपण (सूम) का सोना छिपा रहता है। आँख के आँसू को सीताजीने

उस प्रकार छिपाया जिस प्रकार कृपण अपने धन को छिपाता है। यहाँ सोना का अर्थ है धन।

सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥

अपनी व्याकुलता को बढ़ती देख वे सकुचा गयीं, उन्होंने धैर्य धरकर अपने को सम्भाल कर, मन में विश्वास स्थापन किया, अपने मनोरथ सिद्ध होने का विश्वास किया।

तन मन वचन मोर पन साचा। रघुपतिपदसरोज चितु राचा॥
तौ भगवान सकल उरबासी। करिहहि मोहि रघुबर कै दासी

सीताजी ने अपने मन में कहा, यदि तन मन और वचन से मेरी प्रतिज्ञा सच्ची है, यदि मेरा मन रामजी के चरण कमलों का सत्य सत्य अनुरागी है तो सबके हृदयों में रहनेवाले भगवान् अवश्य ही मुझे रामचंद्र की दासी बनावेंगे। अवश्य ही रामचंद्र के हाथों धनुष टूटेगा।

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

जिस पर जिसका सच्चा स्नेह रहता है, वह उसे अवश्य मिलता है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

प्रभु तन चितइ प्रेमपन ठाना। कृपा निधान राम सब जाना॥

प्रभु रामचंद्रजी की ओर देखकर सीता ने प्रेमप्रण ठाना, और यह प्रण कृपा निधान श्रीरामचंद्रजी ने जान ली।

सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड लघु व्यालहिं जैसे

रामचंद्रजी ने सीता को देखकर पुनः धनुष को देखा, उनका वह देखना कैसा था, जैसे गरुड़ छोटे साँप को देखे।

दो०-लषन लषेउ रघुवंसमनि, ताकेउ हरि कोदंड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चापि ब्रह्मंड॥ २५६॥

रघुवंशमणि रामजी ने धनुष को ताका, अब वे उसे तोड़ना चाहते हैं—

यह लचमण ने जान लिया, तब वे पैर से ब्रह्माण्ड को दबाकर और पुलकित शरीर होकर बोले—

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

हे दिशाओं के गजराज, हे कच्छप, हे शेषनाग, हे वाराह, धीरतापूर्वक पृथिवी को धारण करो, जिसमें यह डोलने न पावे। रामजी शिवजी के धनुष को तोड़ना चाहते हैं, तुम लोग मेरी आज्ञा पाकर सावधान हो जाओ।

चापसमीप राम जब आये। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये॥

रामचंद्र जब धनुष के समीप आये, तब स्त्री पुरुषों ने अपने अपने पुण्य मनाये, उन लोगों ने अपने अपने पुण्य रामचंद्रजी को दिये जिसकी सहायता से वे धनुष तोड़ सकें।

सब कर संसय अरु अज्ञानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोच जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुषदावा॥
संभुचाप बड़ बोहित पाई। चढे जाई सब संग बनाई॥

रामजी के धनुप तोड़ने न तोड़ने के विषय का सबका सन्देह और अज्ञान; मूर्ख राजाओं का अभिमान, परशुराम के गर्व की गुरुता, देवता और मुनि आदि की कायरता, सीता का सोच, जनक का पश्चात्ताप और रानियों का भयानक दुःख दावानल ये सब एक साथ शिवजी के धनुप को जहाज समझ कर उस पर चढ़ गये।

राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहि कोउ कनहारू॥

रामजी का बाहुबल रूपी समुद्र अपार है, ये उसके पार जाना चाहते हैं; पर कोई कर्णधार नहीं। कोई चतुर मल्लाह नहीं। कर्णधार का अपभ्रंश है कनहार।

दो०—राम विलोके लोग सब, चित्र लिषे से देषि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेषि ॥ २५७ ॥

रामजी ने सब लोगों को देखा और वे सब उनको चित्र में लिखे के समान प्रतीत हुए, पुनः कृपायतन श्रीरामचन्द्र ने सीता की ओर देखा और उन्हें विशेष व्याकुल जाना। सीताजी बहुत अधिक व्याकुल हैं यह रामचन्द्रजी को मालूम हुआ।

देषी विपुल विकल वैदेही। निमिष विहात कलपसम तेही ॥

रामचन्द्रजी ने सीता को विशेप व्याकुल देखा, एक निमिष समय उन्हें सौकल्पों के समान बीत रहा है।

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुये करइ का सुधा तड़ागा ॥

प्यासा मनुष्य जल के बिना जब शरीर छोड़ दे, जब वह मर जाय तो अमृत का तालाब होने से भी क्या होगा,

का बरषा जब कृषी सुषाने। समय चूकि पुनि का पछताने ॥

जब कृषी, खेतीवारी सूख जाय तब वर्षा भी हो तो उससे क्या, अथवा वह वर्षा कावर्षा है, कुत्सित वर्षा है, समय चूक जाने पर पछताने से क्या लाभ। फिर पछताना व्यर्थ है।

अस जिय जानि जानकी देषी। प्रभु पुलके लषि प्रीति विसेषी ॥
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥

इस प्रकार मन में सोच कर प्रभु ने जानकी को देखा और जानकी का विशेप प्रेम देखकर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरु वसिष्ठ को मन ही मन प्रणाम किया और बड़ी शीघ्रता से उस धनुष को उठा लिया।

दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनुमंडलसमभयऊ ॥

जब रामचन्द्रजी ने उस धनुष को उठाया तब वह बिजुली के समान चमका, पुनः वह आकाश मण्डल के समान हो गया।

लेत चढावत खैंचत गाढ़े। काहु न लषा देष सब ठाढ़े ॥

रामचन्द्रजी ने उसे उठाया, चढ़ाया तथा जोर से खींचा, सभी वहाँ खड़े थे पर किसी ने भी न देखा, बड़े ही शीघ्र रामजी ने ये सब काम कर दिये।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवनि धुनि घोर कठोरा॥

उसी समय राम ने धनुष को बीच से तोड़ दिया, अथवा सभा के बीच में धनुष तोड़ दिया, उसका कठोर और भयानक शब्द भुवन में भर गया। उसका शब्द चारो ओर फैल गया।

छं०-भरे भुवन घोर कठोर रव रविबाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, अहि कोल कूरम कलमले॥

धनुष का घोर और कठोर शब्द भुवन में भर गया, सूर्य के रथ के घोड़े मार्ग छोड़ कर भागे, दिग्गज चिक्कारने लगे, पृथिवी काँपने लगी, शेष नाग बाराह और कच्छप कलमलाने लगे।

सुर असुर मुनि कर कान कीन्हे सकल विकल विचारहीं।
कोदंड षंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं॥

देवता असुर तथा मुनियों ने हाथों से कान बन्द कर लिये और व्याकुल होकर सब विचारने लगे कि रामचन्द्र ने क्या शिवजी के धनुष को तोड़ डाला, और तुलसीदास जय जय कहते हैं।

सो०-संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहु बल।
बूड़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहि मोह बस॥

शिवजी का धनुष जहाज के समान है और रामचन्द्र का बाहुबल समुद्र के समान है, वह समूचा संशय, सब का अज्ञान आदि का समाज जो मोह वश पहले पहल इस जहाज पर चढ़ा, वह डूब गया।

प्रभु दोउ षंड चाप माह डारे। देषि लोग सब भये सुखारे॥
कौसिक रूप पयोनिधि पावन। प्रेमबारि अवगाह सुहावन॥
रामरूपराकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥

प्रभु राम ने उस धनुष को दो टुकड़े करके पृथिवी पर डार दिया, यह देखकर सब लोग सुखी हुए। कौशिक विश्वामित्र पवित्र समुद्र के समान हैं और उस समुद्र में अथाह प्रेम जल भरा हुआ है। वह समुद्र रामरूपी चन्द्रमा को देखकर बढ़ा, रोमाञ्चरूपी तरङ्गे उसमें उठने लगीं।

बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा॥
बरषहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥

आकाश में खूब बाजे बजने लगे और देवताओं की स्त्रियाँ गा गा कर नाचने लगीं, ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध तथा मुनीश्वर प्रभु रामजी की प्रशंसा करते हैं, उन्हें आशीर्वाद देते हैं और अनेक रंग के पुष्पों की वर्षा करते हैं तथा किन्नरगण रसमय गीत गा रहे हैं। समस्त भुवन जय जय वाणी से भर गया, जिसमें धनुष के टूटने का शब्द छिप गया। सभी पुरुष जहाँ तहाँ प्रसन्न हो कर कह रहे हैं कि रामजी ने शिव के बड़े भारी धनुष को तोड़ा है।

दो०-वंदी मागध सूतगन, विरद बदहिं मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय गय मनि धन चीर॥२५८॥

बुद्धिमान् वंदी मागध और सूतजन यश गान कर रहे हैं और सब लोग हाथी घोड़े मणि धन वस्त्र आदि रामजी को न्योछावर कर रहे हैं।

झांझ मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाये। जहँ तहँ जुवतिन मंगल गाये॥

झांझ, मृदंग, शंख, सहनाई, नगारे, ढोल, दुन्दुभी आदि अनेक सुन्दर बाजे बज रहे हैं और स्त्रियाँ जहाँ तहाँ मंगल गीत गा रही हैं।

सखिन्ह सहित हरषी सब रानी। सूखत धानु परा जनु पानी॥

जनक लहेउ सुष सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छबि छूटे॥
सीय सुषहि वरनिय केहि भांती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती॥
रामहिं लषन विलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे॥

सखियों के साथ सब रानियां प्रसन्न हुईं, मानो सूखते हुए धान में पानी पड़ गया हो। जनक सुखी हुए उनका दुःख जाता रहा, जिस प्रकार नदी में तैरता हुआ मनुष्य थक जाय और थाह मिलने पर सुखी हो। धनुष के टूटने से राजाओं का तेज मलिन हो गया, जिस प्रकार दिन में दीपक का प्रकाश क्षीण हो जाता है। सीता को जो सुख हुआ उसका वर्णन कैसे किया जाय, मानो चातकी ने स्वाती का जल पाया हो। लक्ष्मण रामजी को किस प्रकार देख रहे हैं, जिस प्रकार चकोर का बच्चा चन्द्रमा को देखता है।

सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीतागमन राम पहिं कीन्हा॥

तब धनुष टूटने पर शतानन्द ने आज्ञा दी और सीता रामजी के पास गयी।

(राम वरण)

दो०-संग सषी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुषमा अंग अपार॥ २५९॥

सीताजी के साथ सुन्दर और चतुर सखियाँ थी, जो मंगल गान गा रही थी। सीता बालक हंस की गति से जा रही हैं और उनके अंगों की शोभा अपार है।

सषिन्ह मध्य सिय सोहत कैसी। छबिगन मध्य महा छबि जैसी॥
कर सरोज जयमाल सुहाई। विस्व विजय सोभा जनु छाई॥
तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ प्रेम लषि परइ न काहू॥

सखियों के बीच में सीता कैसी शोभा पा रही हैं, जिस प्रकार शोभा के बीच में बड़ी शोभा, शोभा पाती है। सीताजी के कर कमलों में जयमाला शोभती थी। जिस जयमाला पर विश्वविजय की शोभा छा रही थी।

सीताजी के शरीर में सङ्कोच है पर मन में परम उत्साह है, सीताजी का रामजी के प्रति गुप्त प्रेम किसी ने भी न जान पाया।

जाइ समीप राम छबि देषी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेषी॥

समीप जाकर सीता ने राम की छवि देखी और वे कुमारी सीता चित्र लिखित के समान रह गयीं, अर्थात् टकटकी लग गयी।

चतुर सषी लषी कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥

सीताजी की दशा की बात जानकर चतुर सखी ने उन्हें समझाकर कहा "सुन्दर जयमाल पहनाइए"

सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम विवस पहिराइ न जाई॥

सखी की बात सुनकर सीता ने दोनों हाथों से जयमाल उठाया, पर वे रामजी को पहना न सकीं; क्योंकि प्रेम विवश थीं,

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥

डंडी के साथ दो कमल मानो शोभा पा रहे हैं और वे डरते डरते चन्द्रमा को जयमाल पहना रहे हैं। सीताजी के दोनों हाथ कमल के समान हैं और उनकी वाहु कमल डंडी के समान, रामजी का मुंह चन्द्रमा के समान है, यही बात ऊपर की चौपाई में कही गई है।

गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥

सखियाँ इस शोभा को देखती हुई गीत गा रही हैं, उसी समय सीताने रामचन्द्रजी के गले में जयमाल डाल दी।

सो०—रघुबर उर जयमाल, देषि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रवि कुमुद गन॥

रामजी के हृदय पर जयमाल देखकर देवता पुष्प वृष्टि करने लगे, सब राजा सकुचा गये, वे लज्जित हुए, जिस प्रकार सूर्य को देखकर कुमुद सकुचा जाते हैं।

पुर अरु व्योम बाजने बाजे। षल भये मलिन साधु सब राजे॥

नगर और आकाश में बाजे बजते हैं, दुष्ट लोग मलिन हो गये, और सज्जन गण प्रसन्न हुए।

सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥
नाचहिं गावहिं विबुधबधूटी। बार बार कुसुमाञ्जलि छूटी॥

देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग तथा मुनीश्वर जय जय जय कह कर रामचन्द्रजी को आशीर्वाद दे रहे हैं। देवताओं की युवती स्त्रियाँ नाचती हैं, और बार बार फूलों की वर्षा कर रही हैं।

जहँ तहँ विप्र वेद धुनि करहीं। बंदी बिरदावलि उच्चरहीं॥
महि पाताल नाक जसु व्यापा। राम वरी सिय भंजेउ चापा॥

तहाँ तहाँ ब्राह्मण गण वेद ध्वनि करते हैं और बन्दी यशोगान करते हैं। पृथिवी पाताल और स्वर्ग तक रामजी का यश फैल गया, सब जगह यह बात फैल गयी कि रामने शिवजी का धनुष तोड़ा और सीता को उन्होंने ब्याहा।

करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावर वित्त बिसारी॥

नगर के स्त्री पुरुष रामजी की आरती करते हैं और धन का लोभ भूल कर न्योछावर लोगों को देते हैं।

सोहति सीय राम के जोरी। छवि श्रृंगार मनहुँ एक ठोरी॥

राम और सीता की जोड़ी इस प्रकार शोभती है मानो शोभा और श्रृङ्गार एक जगह कर दिये गये हों।

सखी कहहिं प्रभु पदगहु सीता। करत न चरन परस अतिभीता॥

सखियों ने सीता से कहा कि रामजी का चरण छुओ, पर सीता चरण स्पर्श नहीं करतीं, क्योंकि वे बहुत डरी हैं।

दो०–गोतम तियगति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंस मनि, प्रीति अलौकिक जानि॥ २६०॥

गौतम की स्त्री अहल्या की गति का स्मरण कर सीता रामजी के

चरणों को हाथों से नहीं छूती, । सीता के इस अलौकिक प्रीति को जान कर रामचन्द्रजी मन ही मन हँसे ।

(निराश राजाओं का अस्फालन)

तब सिय देषि भूप अभिलाषे । क्रूर कपूत मूढ मन माषे ॥

उस समय क्रूर कुपूत और मूर्ख राजा सीता को देख कर उनकी ओर आकृष्ट हुए और वे मन ही मन बहुत कुपित हुए ।

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥

वे अभागे उठकर सनाह (कवच, युद्ध का वस्त्र) पहन कर इधर उधर अपनी शेखी मारने लगे । वे कहने लगे,

लेहु छंडाय सीय कहँ कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरे धनुष चाँड नहिं सरई । जीवत हमहिं कुअँरि को बरई ॥

कोई कहने लगा, सीता को छुड़ा लेता हूँ और इन दोनों राजकुमारों को बांध लेता हूँ । धनुष तोड़ने से इच्छा पूरी नहीं हो सकती, हमारे जीते जी सीता से दूसरा कौन ब्याह कर सकता हैं ।

जौ विदेह कुछ करइ सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥

यदि जनक भी कुछ सहायता करें तो मैं युद्ध में इन दोनों भाइयों को जीत लूँ ।

साधु भूप बोले सुनि बानी । राज समाजहिं लाज लजानी ॥
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई । नाक पिनाकहिं संग सिधाई ॥

इन बातों को सुन कर जो राजा अच्छे थे वे बोले, लज्जा भी इस राज समाज में लज्जित हो गयी, अर्थात् इस राज समाज को बुरे कृत्यों से लज्जा को भी लाज आती है । इन राजाओं का बल प्रताप वीरता प्रतिष्ठा धनुष के साथ ही स्वर्ग चले गये ।

सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई । असि बुधि तौ विधि मुंह मसिलाई ॥

वही शूरता जो धनुष के टूटने के साथ चली गयी थी, वह पुनः आप

लोगों को कहाँ से मिल गई है, ऐसी बुद्धि है, इसी से विधाता ने मुंह में स्याही लगायी है। अर्थात् जब धनुष तोड़ने का अवसर था उस समय तो प्रयत्न करने पर भी धनुष तोड़ते न बन पड़ा, अब इन बकवादों से क्या इज्जत बढ़ेगी ?

दो०–देषहु रामहिं नयन भरि, तजि इरषा मद मोहु।
लषन रोषपावक प्रबलु, जानि सुलभ जनि होहु ॥२६१॥

ईर्ष्या, मोह, मद का त्यागकर रामचन्द्रजी को भर आँखों देखो, जानकर लक्ष्मण के क्रोध रूपी प्रचण्ड अग्नि के पतंग मत बनो।

वैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहइ नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सुष संपति चाहे सिवद्रोही॥
लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरिपदविमुष परम गति चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा॥

सीता के पाने की तुम्हारी इच्छा उसी प्रकार की है, जिस प्रकार गरुड़ के भाग को ‹ आ लेना चाहे, जिस प्रकार खरहा सिंह के भाग को लेना चाहे, विना कारण क्रोध करनेवाला जिस प्रकार अपना कल्याण चाहे, शिवजी से द्रोह खनेवाला जिस प्रकार सुख सम्पत्ति चाहे, लोभी और लोलुप मनुष्य जिस प्रकार कीर्ति चाहे, कामी (व्यभिचारी) जिस प्रकार निष्कलङ्क होना चाहे और जिस प्रकार भगवान के चरणों से विमुख मनुष्य मोक्ष चाहे। इन लोगों की चाह जिस प्रकार व्यर्थ है, उसी प्रकार तुम्हारी भी।

कोलाहल सुनि सीय सकानी। सषी लवाइ गईं जहँ रानी॥

इसी समय बाहर कोलाहल हुआ। कोलाहल को सुनकर सीता शङ्कित हो गयीं, वे डर गयीं, तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गयीं जहाँ रानी थीं।

राम सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेह बरनत मनमाहीं॥

राम भी सीता के स्नेह को मन ही मन वर्णन करते हुए स्वाभाविक गति से (बिना घबड़ाये) गुरु के समीप गये ।

रानिन्ह सहित सोचबस सीया । अब धौं बिधिहिं काह करनीया ॥

रानियों के साथ सीता भी बहुत दुःख करने लगीं, वे कहने लगीं न मालूम अब भाग्य क्या करनेवाला है ।

भूप बचन सुनि इत उत तकहीं । लखन राम डर बोलि न सकहीं ॥

उन राजाओं की बात को सुनकर लक्ष्मण इधर उधर देखने लगे, उन्हें क्रोध आया, पर कुछ कर न सकने के कारण इधर उधर देखने लगे । न कर सकने का कारण रामजी का डर था, राम के डर से वे बोल भी न सके ।

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप ।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप ॥२६४॥

लक्ष्मण की आँखें लाल हो गयी थीं, भौंहे टेढ़ी हो गयीं थीं, वे राजाओं को बड़े क्रोध से देखते थे । मानो मतवाले हाथियों के झुण्ड को देखकर सिंह का बालक झपाट मारना चाहता हो ।

खरभरु देखि बिकल पुरनारी । सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी ॥
तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा । आये भृगुकुलकमलपतंगा ॥

इस खलबलाहट को देख नगर के स्त्री पुरुष व्याकुल हुए और वे राजाओं को गाली देने लगे । उसी समय शिवजी का धनुष टूट गया, इस संवाद को सुनकर भृगुकुल कमल के सूर्य परशुराम आये । पतंग का अर्थ है सूर्य ।

(परशुराम का आगमन)

देखि महीप सकल सकुचाने । बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥

इनको देखते ही सब राजा जो उछल कूद मचा रहे थे सकुचा गये, मानो बाज की झपट से लवा (बटेर) छिप गयी हो ।

गौर सरीर भूति भलि भ्राजा । भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा ॥

उनका शरीर गौर है, उस पर भस्म बहुत अधिक शोभती है, लंबा चौड़ा मस्तक है और उस पर त्रिपुंड शोभ रहा है।

सीसजटा ससि बदन सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइआवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहिं चितवत मनहुं रिसाते॥

सिर पर जटा है, मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, पर क्रोध के कारण वह मुख कुछ कुछ लाल हो आया है। भौहे टेढ़ी है आँखे क्रोध से लाल हैं, उनका स्वाभाविक देखना भी मालूम होता है कि क्रोध से देख रहे हैं।

वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥

वृषभ के कंध के समान कन्धा है, छाती और बाहु विशाल है, सुन्दर जनेऊ, माला और मृगछाला धारण किये हुए हैं।

कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कलकांधे॥

कमर में मुनियों का वस्त्र अर्थात् वल्कल वस्त्र धारण किये हुए हैं और दो भाथा बाँधे हुए हैं, हाथ में धनुष और वाण है तथा सुन्दर कन्धे पर कुठार है।

दो०—सांतवेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीररस, आयउ जहँ सब भूप॥२६३॥

उनका वेश शान्त है, मुनियों का सा है, पर उनके कार्य कठोर हैं, अतएव इस स्वरुप विरुद्ध कार्य करनेवाले के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीररस ही मुनि का वेष धारण कर वहाँ आया, जहाँ सब राजा लोग थे।

देषत भृगुपति वेष कराला। उठे सकल भय विकल भुआला॥

भृगपति परशुराम के भयानक स्वरूप को देखकर सब राजा लोग व्याकुल होकर उठे।

पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आइ षुटानी॥

वे पिता के नाम के साथ अपना अपना नाम बतलाकर मुनि को दण्ड-वत् प्रणाम करने लगे। स्वभाव से ही हित जानकर भी मुनि जिसकी ओर देखते हैं वह जानता है कि अब मेरी समाप्ति हुई,। उनका देखना इतना भयङ्कर है।

जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लेइ गईं सयानी॥

पुनः आकर जनक ने प्रणाम किया, और सीता को बुलाकर प्रणाम कराया, मुनि ने आशीर्वाद दिया, जिससे सखियाँ प्रसन्न हुईं, वे चतुर सखियाँ उनको अपने समाज में वे जहाँ थीं वहाँ—ले गयीं।

बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥

पुनः विश्वामित्र आकर उनसे मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को मुनिके चरणों पर गिराया।

राम लषन दसरथ के ढोटा। देषि असीस दीन्ह भल जोटा॥
रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मारमदमोचन॥

विश्वामित्र ने कहा ये दशरथ के पुत्र हैं, मुनि ने जानकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा अच्छी जोड़ी है।वे रामचन्द्र जी को आँखे भर भर कर देखने लगे। क्यों कि उनका स्वरूप अपार था और कामदेव के मद को भी दूर करनेवाला था।

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप सरीर॥ २६४॥

पुनः राजा जनक की ओर देखकर स्वयं सब जानते हुए भी एक अजान की भाँति परशुराम ने उन से पूछा, कहो, यह भीड़ क्यों है? और उनके शरीर में क्रोध व्याप्त हो गया। परशुराम क्रोध से अधीर हो गये।

समाचार कहि जनक सुनाये। जेहि कारन महीप सब आये॥

तब जनक ने सब बातें आद्योपांत सुनायीं, जिस लिए ये सब राजा आये थे, जिस लिए यह सब भीड़ हुई थी।

सुनत वचन तब अनत निहारे। देषे चापषंड महिडारे॥

जनक की सब बातें सुनकर परशुराम ने दूसरी ओर देखा, और उन्होंने देखा शिवजी के धनुष का टुकड़ा भूमि पर पड़ा है।

अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा॥

तब वे बड़े क्रोध से कठोर वचन बोले, मूर्ख जनक, कह, यह धनुष किसने तोड़ा है।

बेगि देषाउ मूढ़ नत आजू। उलटउँ महिं जहँ लगि तव राजू॥

शीघ्र धनुष तोड़नेवाले को बतलाओ, नहीं तो मूर्ख, आज मैं इस पृथिवी को उलट देता हूं जहाँ तक तुम्हारा राज्य है।

अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥

राजा जनक बहुत डर गये; वे कुछ भी उत्तर न दे सकें। परशुराम के इस आचरण को देखकर कुटिल राजागण मन ही मन प्रसन्न हुए।

सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहि सकल त्रास उर भारी॥

देवता मुनि नाग तथा नगर के स्त्री पुरुष सभी दुःखी हुए, उनके मन में बड़ा भारी डर समा गया।

मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सवरी बात विगारी॥

सीता की माता मन ही मन पछताने लगीं, उन्होंने मन ही मन कहा, अब विधाता ने सब बातें बिगाड़ दीं।

भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। आधा निमष कल्प सम बीता।

परशुराम के क्रूर स्वभाव की बातें सुनकर सीता को आधा निमेष भी एक कल्प के समान बीता।

दो०–समय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्रीरघुवीर॥ २६५॥

रामचन्द्रजी ने देखा कि परशुराम के आचरण से सब लोग डर गये हैं। जानकी भी बहुत व्याकुल है, तब वे बोले, उस समय उनके हृदय में न तो कुछ हर्ष था और न कुछ विषाद,

(राम और परशराम)

नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु कहा कहिय किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥

रामजी ने कहा, नाथ, शम्भु धनुष को तोड़नेवाला कोई आप ही का एक दास होगा, क्या आज्ञा है, मुझसे वह क्यों नहीं कहते। रामजी की बात सुन कर क्रोधी मुनि परशुराम क्रोध से बोले,

सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई॥

सेवक वह है जो सेवा करे, न कि शत्रुका काम करके लड़ाई करे। अतएव शम्भु धनुष को तोड़ने वाला हमारा दास नहीं हो सकता।

सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

राम, सुनो, जिसने शिव धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु कार्तवीर्य के समान मेरा शत्रु है। अर्थात् कार्तवीर्य जितनाबड़ा मेरा शत्रु था, वैसाही वह भी है अथवा वह सहस्रबाहु के समान भी यदि बली हो तो भी मेरा शत्रु है, मैं उसका नाश करूँगा।

सो बिलगाइ बिहाइ समाजा। नत मारे जइहैं सब राजा॥

वह शिव का धनुष तोड़नेवाला मेरा शत्रु समाज को छोड़कर; सभा से उठ कर अलग हो जाय जिससे मैं उसे पहचान लूं, नहीं तो यदि वह अलग न हुआ तो सब राजा मारे जाँयगे।

(लक्ष्मण और परशराम का संवाद)

सुनि मुनि वचन लषन मुसकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥

मुनि के वचन सुनकर लछमण मुस्कुराये, और वे ऐसा बोले, जिससे परशुराम का अपमान हो।

बहु धनुहीं तोरी लरकाईं। कबहुं न असि रीस कीन्ह गुसाईं॥
एहि धनुपर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ बोले भृगुकेतू॥

लक्ष्मण ने कहा, बाल्यावस्था में बहुत सी धनुहियाँ मैंने तोड़ दीं हैं, पर महाराज आपने ऐसा क्रोध तो कभी नहीं किया। इस धनुष पर इतना प्रेम क्यों है? लक्ष्मण की बात सुनकर परशुराम क्रोध से बोले।

दो०-रे नृप बालक कालवस, बोलत तू न संभार।
धनुहीसम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार॥ २६६॥

अरे राजा का बालक, तू कालवश होकर बोलता है, तुझे कुछ भी सावधानी नहीं है, कैसे बोलना चाहिए इसका थोड़ा भी ज्ञान तुझे नहीं है। शिव का धनुष, धनु ही के समान है? यह बात समस्त संसार जानता है।

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥

लक्ष्मण ने हंस कर कहा, महाराज, सुनिए, हमारी समझ से तो सभी धनुष समान ही हैं, किसीमें कुछ भेद नहीं है।

का छति लाभ जून धनु तोरे। देषा राम नये के भोरे॥

इस पुराने धनुष के तोड़ने से न कोई हानि ही है और न लाभ ही है, रामने इसे नया समझ कर देखा था, उन्हें इसके नया होने का भ्रम था, इसीलिए उन्होंने देखा और वह टूट गया।

छुवत टूट रघुपतहि न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥

यह धनुष तो छूते ही टूट गया; इसमें रामचन्द्र जी का कुछ दोष नहीं है, मुनि महाराज, आप व्यर्थ को कितना क्रोध करते हैं।

बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेइ सुभाउ न मोरा॥

उन्होंने परशु की ओर देखकर कहा, रे शठ, क्या मेरा स्वभाव तैंने नहीं सुना है?

बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोही॥

तू बालक है, यही जानकर मैं तुझे नहीं मारता, अरे मूर्ख, तू क्या मुझे केवल मुनि ही जानता है।

बालब्रह्मचारी अतिकोही। विस्वविदितछत्रियकुलद्रोही ॥

मैं बालब्रह्मचारी, अत्यन्त क्रोधी तथा संसार प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल का शत्रु हूँ।

भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही। विपुलवार महिदेवन्ह दीन्ही ॥

मैंने अपने भुजबल से पृथिवी को कई बार राजाओं से रहित कर दिया है और कई बार मैंने वह भूमि ब्राह्मणों को दान देदी है।

सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु विलोकु महीपकुमारा ॥

ऐ राजा के लड़के, सहस्रबाहु की भुजाओं को काटनेवाला यह मेरा कुठार देखो।

दो०—मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप किसोर ॥
गरभन के अरभक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२६७॥

राजकुमार, तू अपने माता पिताओं को दुःखी मत बना, गर्भ के बालकों को भी मारनेवाला मेरा परशु बड़ाही भयानक है। बहुत बक बक मत कर, मेरा क्रोध मत बढ़ा, नहीं तो मारा जायगा जिससे तेरे माता पिताओं को कष्ट होगा। यह मत समझ कि मैं बालक समझ कर तुझ पर दया करूंगा। मेरा यह परशु गर्भ के बलकों पर भी दया नहीं करता।

विहँसि लषन बोले मृदुवानी। अहो मुनीस महाभट मानी ॥

लक्ष्मण ने हँसकर कहा, अरे! ये मुनि महाराज तो अपने को बहुत बड़ा वीर समझने वाले हैं।

पुनि पुनि मोहि देषाव कुठारु। चहत उड़ावन फूंकि पहारु ॥

बारबार ये अपना कुठार मुझे दिखाते हैं, कुठार दिखा कर डराना चाहते हैं। इस प्रकार ये फूंक कर पहाड़ उड़ाना चाहते हैं।

इहां कुम्हड बतिया कोउ नाही। जो तर्जनी देषि मरि जाही ॥

यहाँ कोई कोंहड़े की बतिया नहीं है, जो तर्जनी दिखाने से ही मर जाती है, मैं मुनि की धमकियों से डरनेवाला नहीं हूँ।

देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥

कुठार, धनुष और वाण देखकर मैंने अभिमान के साथ कुछ कहा, था क्योंकि इन चीजों के देखने से मैंने क्षत्रिय समझा।

भृगुकुल समझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहो सहौं रिसरोकी॥

पुनः यज्ञोपवीत देखकर तथा आप भृगुकुल के हैं अर्थात् ब्राह्मण हैं, यह जानकर मैंने अपना क्रोध रोक लिया है, आप चाहे जो कहें।

सुर महिसुर हरि जन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न रिसाई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पा परिय तुम्हारे॥

देवता ब्राह्मण साधु और गौ इन पर हमारे कुलवाले अर्थात् रघुवंशी वीरता नहीं दिखाते। यदि इनको मारें तो पाप और हारें तो अपकीर्ति हो। इसी कारण मैं भी यदि आप मारें भी तो आप के चरणों ही पर पड़ूँगा।

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

महाराज, आपका वचन ही करोड़ों बज्र के समान हैं, फिर यह धनुष वाण और कुठार आप व्यर्थ धारण करते हैं। आप तो ब्राह्मण हैं, ब्राह्मणों का बल तो वाणी है अर्थात् शाप देना है। फिर इन अस्त्र शस्त्रों की क्या ज़रूरत है।

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउं, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुवंस मनि, बोले गिरा गंभीर॥ २६८॥

आपको देखकर जो मैंने कुछ अनुचित कहा हो उसे हे धीर महामुनि, आप क्षमा करें। लक्ष्मण की बात सुन कर भृगुवंशमणि परशुराम क्रोध-पूर्वक गम्भीर वाणी बोले।

कौसिक सुनहु मंद यह बालक। कुटिल कालबस निज कुलघालक॥

हे कौशिक, सुनो, यह बालक अभागा है, कुटिल है, काल के अधीन हो गया है और अपने कुलका नाश करनेवाला है।

भानुवंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥

सूर्य वंशरूपी चन्द्रमा का यह कलंक है, यह उच्छृङ्खल किसी की बात न माननेवाला मूर्ख और निडर है।

काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥

एक ही क्षण में यह काल का कवल हो जायगा, थोड़ी ही देर में मारा जायगा, मैं पुकार कर यह कह देता हूँ, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं।

तुम्ह हटकहु जो चहहु उवारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा॥

कौशिक, यदि तुम इसकी रक्षा चाहते हो तो रोको, मेरा बल प्रताप और क्रोध इसे जता दो। हटकना का अर्थ है निवारण करना।

लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को वरनइ पारा॥
अपने मुंह तुम्ह आपनि करनी। वार अनेक भांति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तौ पुनि कछु कहहू। जनिरिसरोकिदुसहदुखसहहू॥

लक्ष्मण ने कहा, मुनि महाराज, आपके रहते हुए आपका सुयश दूसरा कौन कह सकता है। आपने अपने कार्यों को अपने ही मुँह से अनेक तरह कहा है, इस पर भी यदि आपको सन्तोष न हो तो पुनः कुछ कहिये क्रोध रोक कर असहनीय दुःख न सहिए, जो कुछ कहना हो आप ही कहें।

वीर व्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा।

आप वीर स्वभाव के हैं, धीर हैं, अचल हैं, गाली देने से आपकी शोभा नहीं होती।

दो०-सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यामान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलापु॥२६९॥

जो शूर हैं; वे समर में करतब करते हैं, वे शब्दों से स्वयं कह कर

अपनी बीरता नहीं बतलाते, रण में आगे शत्रु को पाकर कायर मनुष्य प्रलाप करते हैं, बक बक करते हैं।

तुम तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहिं लाग बुलावा॥

आप तो मानों काल को हाँक कर ले आये हैं, मानो जबरदस्ती उसे अपने साथ लाये हैं, और उसे बारबार मेरे लिए बुला रहे हैं।

सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देई दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक बध जोगू॥

लचमण के कठोर वचन सुनकर परशुराम ने भयानक परशु सुधार कर ठीक कर हाथ में लिया।

बाल विलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा॥

उन्होंने कहा, इसे बालक समझ कर मैंने बहुत बचाया, अपने क्रोध को बहुत रोका, पर यह सचमुच मरनेवाला ही हो गया, यह स्वयं मरना चाहता है।

कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥

विश्वामित्र ने कहा, महाराज, अपराध क्षमा करें, सज्जन, बालक के गुण दोषों का विचार नहीं करते।

कर कुठार मैं अकरन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़ेउ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥

मेरे हाथ में कुठार है और आगे सामने मेरे गुरु का द्रोह करनेवाला अपराधी खड़ा है, फिर भी मैं अकारण क्रोध करनेवाला हूँ। यह जवाब देता जाता है तो भी बिना मारे मैंने इसे छोड़ा है। कौशिक यह केवल तुम्हारे ही शील से।

नतु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उरिन होतेहुं स्रम थोरे॥

नहीं तो इसी कठोर कुठार से इसे काटकर थोड़े ही परिश्रम से मैं गुरु से उऋण हो जाता।

दो०-गाधि सुवन कह हृदय हंसि, मुनिहिं हरिअरे सूझ।
अय मय षांडउ ऊषमय, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥ २७० ॥

गाधिसुवन विश्वामित्र ने हँसकर मन में कहा, मुनि को सभी हरा ही हरा सूझता है, वे सबको एक ही समान देखते हैं। ऊख के समान शिवजी का धनुष जिसने तोड़ दिया, उसे यह अबूझ अज्ञानी अभी भी नहीं समझता, अभी भी यह रामजी के यथार्थ रूप को नहीं जानता।

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान प्रगट संसारा॥
माता पितहि उरिन भये नीके। गुरु रिन रहा सोच बड़ जीके॥

लक्षमण ने कहा, मुनि, आपके स्वभाव को कौन नहीं जानता, वह तो समस्त संसार में प्रकट है, उसे सभी जानते हैं। माता पिता के ऋण से तो आप अच्छी तरह उऋण हो ही गये हैं, एक गुरु का ऋण था जिसके लिए आप के मन में बड़ा सोच था, आप बड़े चिन्तित थे। परशुराम ने अपनी माता का वध किया था और पिता के मारनेवाले हैहय वंशियों का नाश कर उनके खून से तर्पण किया था, उसीकी ओर यह लक्षमण का इशारा था।

सो जनु हमरे माथे काढा। दिन चलि गये ब्याज बहु बाढा॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देहुँ मैं थैली षोली॥

वह ऋण आपने मेरे ही माथे निकाला है। ठीक है, बहुत दिन होने से उसका ब्याज शायद बहुत बढ़ गया हो। अब आप व्यवहरिया—हिसाब किताब करनेवाले को बुलावें, और मैं शीघ्र ही थैली खोल कर वह ऋण चुका देता हूँ।

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥

लषमण के कठोर वचन सुनकर परशुराम ने कुठार तेज किया, समस्त सभा ने हाय हाय पुकारा, सब लोग हाय हाय करने लगे।

भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र बिचारि बचउ नृप द्रोही॥

लक्ष्मण ने कहा, हे भृगुश्रेष्ठ, आप मुझे परशु दिखाते हैं, हे नृप द्रोही मैं आपको ब्राह्मण समझ कर बचा जाता हूँ। आपकी इस उद्दण्डता का उत्तर नहीं देता।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे। द्विज देवता घरहिं के बाढे॥

आपको गहरे रणक्षेत्र में किसी अच्छे वीर से सामना करना नहीं पड़ा है, ब्राह्मण और देवता घर ही के श्रेष्ठ होते हैं रण में नहीं।

अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे॥

सभा के सब लोगों ने लक्ष्मणजी की इस बात को अनुचित कहा, वे एक ही बार पुकार उठे कि यह अनुचित बात कह रहा है, तब रामचन्द्रजी ने सङ्केत के द्वारा लक्ष्मण को चुप कराया।

दो०-लषन उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृसानु।
बढत देषि जलसम वचन, बोले रघुकुल भानु॥ २७१॥

लक्ष्मण का उत्तर आहुति के समान था और परशुराम का क्रोध अग्नि के समान। लक्ष्मण के उत्तर से उनका क्रोध और बढ़ता जाता है; यह देखकर रघुकुल के सूर्य रामचन्द्रजी जल के समान क्रोध को ठंडा करनेवाले वचन बोले,

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुष करिय न कोहू॥

महाराज, आप बालक पर दया करें, यह शुद्ध दुग्धमुख है, यह बिलकुल बच्चा है, इस पर क्रोध न कीजिए।

जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तो कि बराबरि करइ अयाना॥

हे प्रभु, यदि यह आप के प्रभाव को थोड़ा भी जानता तो क्या आपकी इस प्रकार बराबरी करता, क्या यह आपके साथ इस प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर करता?

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥

यदि बालक कुछ अचगरी करे—अनुचित व्यवहार करे, तो उससे पिता माता और गुरु के मन में प्रसन्नताही होती है।

करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी॥

महाराज, आप इसे अपना सेवक तथा बालक जानकर इस पर कृपा करें, आप सम स्वभाव के धीर और ज्ञानी मुनि हैं। आपके लिये सब बराबर है न कोई शत्रु है न मित्र।

राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने॥

रामजी के वचन सुनकर मुनि कुछ प्रसन्न हुए, इसी समय लचमण ने कुछ कह कर मुस्कुरा दिया।

हंसत देषि नष सिष रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बडपापी॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं। कालकूटमुष पयमुषनाहीं॥

लचमण को हँसते देखकर मुनि के सिर से पैर तक क्रोध फैल गया, और उन्होंने कहा, राम, तुम्हारा भाई बड़ा पापी है। इसका शरीर तो गोरा है पर मन में कालिमा है, यह दूध मुँह नहीं है किन्तु इसके मुख में विष है। इसे तुम दुध मुँह बालक क्यों कहते हो?

सहज टेढ अनुहरइ न तोही। नीच मीचसम देष न मोही॥

यह स्वभावतः टेढ़ा है, तुम्हारे ऐसा नहीं है, तुम्हारे गुण इसमें नहीं हैं, यह नीच मुझे मृत्यु के समान देखता है।

दो०—लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, परहिं विश्व प्रतिकूल॥२७२॥

पुनः हँसकर लचमण ने कहा, मुनि, सुनो, क्रोध पापों का मूल है, क्रोध के वश होकर मनुष्य अनुचित काम करता है, और संसार से उलटे मार्ग में चलता है। अतएव महाराज क्रोध दूर करें।

मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहि जुरहिं रिसाने। बैठिय होइहहि पाय पिराने॥

हे मुनिराज, मैं आप का अनुचर हूँ, आप क्रोध छोड़कर अब मुझ पर दया कीजिए, महाराज, टूटा हुआ धनुष अब आप के क्रोध करने से जुड़ नहीं सकता, बैठ जाईए, अब पैर में पीड़ा होती होगी, खड़े खड़े पैर दुखते होंगे।

जो अतिप्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड गुनी बोलाई॥

यदि वह धनुष आपका अत्यन्त प्रिय हो तो कुछ उपाय किया जाय, कहिए तो कोई गुणी बुलवा कर वह जुड़वा दिया जाय।

बोलत लषनहिं जनक डराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थर थर कांपहि पुर नर नारी। छोट कुमार षोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तन जरइ होहि बल हानी॥

लचमण के बोलने से जनक डरते थे, उन्होंने कहा, चुप रहो, अनुचित वर्ताव अच्छा नहीं। नगर के स्त्री पुरुष थर थर काँपते थे और कहते थे, यह कुमार है तो छोंटा पर बड़ा खोटा है। लचमण की निडर बातें सुनने से परशुराम का शरीर जलता जाता था और उनका बल छीजता जाता था।

बोले रामहिं देइ निहोरा। बचउं विचारि बंधु लघु तोरा।

परशुराम ने राम को निहोरा देकर कहा, यह तुम्हारा छोटा भाई है इसीलिए मैं इसको बचाता हूँ, इसको मारता नहीं। निहोरा देने का अर्थ यहाँ 'अहसान देना' करना चाहिए।

मनमलीन तनु सुंदर कैसे। विषरसभरा कनक घट जैसे॥

इसका मन मलिन है और शरीर सुन्दर है, यह कैसा मालूम होता है, जैसे सोने का घड़ा विष रस से भरा हो।

दो०-सुनि लछिमन विहँसे बहुरि, नैन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम॥२७३॥

परशुराम की बात सुनकर लचमण पुनः हंसे, तब राम ने उनकी ओर आंखें टेढी की। इससे सकुचाकर और व्यंग बोलना छोड़कर गुरु विश्वामित्र के पास जाकर वे बैठ गये।

अतिविनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी॥

तब रामचन्द्र अति नम्र होकर, दोनों हाथ जोड़कर कोमल और शीतल वाणी बोले।

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक वचन करिय नहिं काना॥

नाथ, सुनिए, आप तो स्वभावतः चतुर हैं, बालक के वचन को सुनना ही नहीं चाहिए, उसपर ध्यान ही नहीं देना चाहिए।

बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहिं न संत विदूषहिं काऊ॥

बर्रे और बालक इन दोनों का स्वभाव एक समान होता है, सज्जन मनुष्य इन्हें कभी नहीं छेड़ते।

तेहि नाहि कछु काज विगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं॥

और महाराज, उसने तो आपका कोई काम विगाड़ा नहीं, उसने तो आपका कोई अपराध किया नहीं, नाथ, आपका अपराधी मैं हूँ। महाराज, मुझे आप अपना दास समझ कर कृपा, क्रोध, वध, तथा बन्धन इनमें जो चाहिए सो कीजिए।

कहिय वेगि जेहि विधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करउँ उपाई॥

कृपा कर शीघ्र कहिए आपका क्रोध कैसे दूर होगा, हे मुनिनायक, आपका क्रोध जैसे दूर होगा वही उपाय मैं करूंगा।

कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुं अनुज तव चितव अनैसे॥

मुनि ने कहा, राम, मेरा क्रोध कैसे दूर हो, इस समय भी तुम्हारा भाई मेरी ओर कनखी से देख रहा है।

एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप कर कीन्हा॥

इसके गले में यदि मैंने कुठार न दिया, यदि इसे मैंने न मारा; तो क्रोध करके मैंने क्या किया?

दो०-गर्भ स्रवहिं अवनिप रवँनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखेऊँ जियत, वैरी भूप किसोर ॥२७४॥

जिस मेरे कुठार के घोर कार्यों को सुनकर स्त्रियों का गर्भ पृथिवी पर गिर पड़ता है। वही कुठार वर्तमान है, मैं जी रहा हूँ और शत्रु राजकुमार सामने है। फिर मेरा क्रोध कैसे शान्त हो।

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥
भयेउ वाम विधि फिरउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ ॥

हाथ आगे नहीं बढ़ता, क्रोध से छाती जल रही है, राजाओं को मारनेवाला यह कुठार इस समय कुंठित हो गया है, यह भोथर हो गया है,

आजु दैव दुष दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बहुरि सिर नावा ॥

आज दैव ने मुझे असहनीय दुःख सहाया, परशुराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने पुनः सिर नवाया, अर्थात् सिर नवाकर प्रणाम किया।

वाहु कृपा मूरति अनुकूला। बोलत वचन झरत जनु फूला ॥

महाराज, आपकी कृपा आपकी मूर्ति के अनुकूल है, जैसी आपकी मूर्ति है वैसी कृपा है। आप वचन बोलते हैं तो मानो फूल झर रहा हो।

जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये तन राषु विधाता ॥

मुनि, यदि कृपा करने से आपका शरीर जलता हो तो क्रोध होने पर आपके शरीर की रक्षा विधाता ही कर सकेंगे।

देखु जनक हठि बालक एहु। कीन्ह चहत जड जमपुर गेहू ॥
वेगि करहु किन आंषिन ओटा। देषत छोट खोट नृप ढोटा ॥

तब परशुराम ने जनक की ओर देख कर कहा, देखो जनक, यह बालक बड़ा ही हठी है, यह यमराज की पुरी में अपना घर बनाना चाहता है, इसे शीघ्र ही हमारी आँखों की ओट में क्यों नहीं करते, यह राजा का छोकड़ा देखने में छोटा है; पर है बड़ा खोटा।

विहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूंदे आँषि कतहुँ कोउ नाहीं ॥

लक्ष्मण हँसे और उन्होंने मुनि से कहा, महाराज, आँख मूंद लीजिए, कहीं कोई नहीं रहेगा, सभी आपकी आखों के ओट हो जायँगे।

दो०-परसुराम तव राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
संभु सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध ॥२७५॥

तब परशुराम रामचन्द्र पर मन में बड़ा क्रोध कर बोले, शठ, शिवजी के धनुष को तोड़ कर तू हमारा प्रबोध करना चाहता है, हमें समझाना चाहता है,

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तूं छल विनय करसि कर जोरें॥

तुम्हारा भाई जो कठोर बातें कह रहा है, वह तुम्हारी सम्मति से कह रहा है, तू छल पूर्वक हाथ जोड़ कर विनय करता है।

करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं तो छाडु कहाउब रामा॥

युद्ध करके मेरा परितोष करो, मेरा मन भर दो, नहीं तो आज से राम कहाना छोड़ दो।

छल तजि करहि समर सिव द्रोही। बंधु सहित नत मारहुँ तोहीं॥

हे शिव द्रोही, छल छोड़कर मुझ से युद्ध करो नहीं तो तुम्हारे भाई के साथ तुमको मार डालूंगा।

भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये॥

कुठार उठाकर परशुराम बकते जाते हैं और सिर नवाकर रामचन्द्र हंसते जाते हैं।

(परश राम दमन)

गुनहु लषन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू॥

महाराज, अपराध तो लक्ष्मण का है और आप हम पर क्रोध करते हैं, कहीं कहीं सीधेपन से, सज्जनता से भी बड़े दोष होते हैं।

टेढ जानि बंदइ सब काहू। वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू॥

टेढ़ जान करके ही सब लोग वन्दना करते हैं, जो सीधा नहीं है, वही पूजा जाता है, टेढ़े चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता।

राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहिं जानिय आपन अनुगामी॥

राम ने कहा, मुनीश, क्रोध छोड़ दीजिए, आपके हाथ में कुठार है ही और आगे मेरा यह मस्तक है। जिस प्रकार आपका क्रोध दूर हो वही आप करें, महाराज, आप मुझे अपना सेवक जानें।

दो०-प्रभु सेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोसु।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु॥२७६॥

प्रभु, और सेवक का युद्ध कैसा, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, आप क्रोध त्याग करें। उस बालक लछमण का भी दोष नहीं है, उसने आपके वेश को देखकर कुछ कह दिया,

देषि कुठार बानधनु धारी। भइ लरिकहिं रिस बीर विचारी॥

कुठार, बाण, धनुष आदि धारण किये हुए आपको देखकर उसने आप को कोई वीर समझा और लड़कपन के कारण उसे क्रोध चढ़ आया।

नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। बंस सुभाव उतरु तेहि दीन्हा॥

वह आपका नाम जानता था पर आपको पहचानता न था, इस कारण रघुवंश की कुलमर्यादा के अनुसार उसने कुछ उत्तर दे दिया।

जौ तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं। पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं॥

महाराज, यदि आप मुनि के वेश में आते तो आपकी पदधूलि वह बालक अपने माथे पर चढ़ाता।

छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्रवर कृपा घनेरी॥

इस अनजान के अज्ञानी के अपराध को क्षमा करें, ब्राह्मण के हृदय में अधिक कृपा होनी चाहिए।

हमहिं तुम्हहिं सरबरकस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥

नाथ, हमारे तुम्हारे में बराबरी कैसी, कहीं मस्तक और चरण में बराबरी होती है? मस्तक और पैर की बराबरी से हानि है, इनमें बराबरी करने के भाव से आपस में द्वेष होगा पर वह ठीक नहीं, क्योंकि इन दोनों का उद्देश्य एक ही है, उसी प्रकार हमारी तुम्हारी बराबरी की भी बात है, क्यों कि हम तुम दोनों एक ही काम के लिए आये हैं, हमारा तुम्हारा उद्देश्य एक है, फिर बराबरी कैसी और ब्राह्मण क्षत्रिय में भी तो बराबरी का भाव ठीक नहीं। महाराज, मेरा छोटा नाम केवल, राम है, और आपका परशु के सहित, ऐसा बड़ा नाम है। अर्थात् आपका परशुराम नाम इतना बड़ा है और मेरा नाम केवल राम है।

देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥

देव, मेरे धनुष में केवल एक ही गुण है यहाँ गुण का अर्थ है रस्सी, और आपके परम पवित्र नौ गुण हैं, शम, दम, तप, क्षमा, शौच, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता।

सब प्रकार हम तुम्हसन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे॥

महाराज, हम तो सब प्रकार आप से हारे हैं, हे ब्राह्मण, आप मेरे अपराधों को क्षमा करें।

दो०-बार बार मुनि विप्र द्विज, कहा रामसन राम।
बोले भृगुपति सरुष हंसि, तुहूं बंधु सम बाम ॥२७७॥

राम ने कई बार राम को अर्थात् परशुराम को मुनि, विप्र, द्विज आदि कहा, क्रोध पूर्वक हँस कर परशुराम ने कहा, तुम भी अपने भाई के समान टेढ़े ही हो।

निपटहिं द्विज करि जानहि मोहि। मैं जस विप्र सुनावों तोही॥

क्या तुम मुझको बिलकुल ब्राह्मण ही समझते, हो, मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, वह तुमको सुनाता हूँ।

चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिध सेन चतुरंग सोहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे। समर जज्ञ जग कोटिक कीन्हे।

मेरा क्रोध भयानक अग्नि है, चाप श्रुवा है (हवन करने की वस्तु) और बाण आहुति है। सजी हुई चतुरंगिणी सेना लकड़ी है और बड़े बड़े राजा आकर उसके पशु होते हैं। मैंने अपने परशु से काट कर उन्हें बलि दिया है, इस प्रकार करोड़ों रणयज्ञ मैंने किया।

मोर प्रभाव विदित नहि तोरे। बोलेसि निदरि विप्र के भोरे॥

तुम्हें मेरा प्रभाव मालूम नहीं है, इसी कारण ब्राह्मण समझ कर तुम मेरा अनादर करते हो, मैं केवल ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं वीर हूँ।

भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जग ठाढ़ा॥

धनुष तोड़ दिया इससे तुम्हारा दर्प, तुम्हारा अभिमान बहुत बढ़ा है, तुम्हें वैसा अहंकार हो गया है मानो संसार को जीत कर तुम खड़े हुए हो।

राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिस अति बडि लघु चूक हमारी॥

राम ने कहा, मुनि, आप सोच विचार कर कहें, मेरा अपराध तो छोटा है और आपने बहुत अधिक क्रोध किया है।

छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना॥

यह पुराना धनुष छूते ही टूट गया, फिर मैं किस कारण अभिमान करूंगा, अर्थात् पुराने धनुष के तोड़ने के कारण मैं क्या अभिमान करूँगा।

दो०—जौं हम निदरहिं विप्रवदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ असको जग सुभट जेहि, भयबस नावहिं माथ॥२७८॥

हे भृगुनाथ, मैंने ब्राह्मण समझकर आपका अनादर किया है ऐसा आप समझते हैं तो सची सची बात सुनिए, इस संसार में ऐसा कौन बड़ा बीर है, जिससे डरकर मैं माथा नवाऊंगा?

देव दनुज भूपति भट नाना। सम बल अधिक होउ बलवाना॥

जो रन हमहिं प्रचारइ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥

देवता, दनुज तथा अनेक वीर राजा, वे चाहे हमसे बराबर बलवान् हों या अधिक, यदि रण में हमको कोई ललकारे तो हम सुख से उसके साथ लड़ेंगे, चाहे वह काल ही क्यों न हो।

छत्रिय तनुधरि समर सकाना। कुल कलंक तेहि पावर जाना॥

जो क्षत्रिय का शरीर धारण कर के रण से डरता है, वह अधम, कुल का कलंक समझा जाता है।

कहउँ सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी॥

मैं अपना स्वभाव कहता हूँ, अपने कुल की प्रशंसा नहीं करता, रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते।

विप्रवंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई॥

यह ब्राह्मण वंश का ही केवल महत्व है कि जो उनसे डरता है वह अभय हो जाता है। महाराज, मैं आपको ब्राह्मण समझ करही डरता हूँ नहीं तो और कोई कारण नहीं।

सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसुधरि मतिके॥

रामजी के गूढ़ और कोमल बचन सुनकर परशुराम की बुद्धि पर का परदा हट गया। ब्राम्हण ही समझ कर डरता हूँ रामजी के यह कहने का तात्पर्य है कि मुझ से तो डर भी डरता है, तब मैं किसीसे क्यों डरने लगा, हां मर्यादा की रक्षा के लिए केवल आपसे सो भी ब्राह्मण समझ कर डरता हूँ।

राम, रमापति कर धनु लेहू। खचहु मिटइ मोर संदेहू॥

परशुराम ने कहा, रमापति राम, हाथ में यह धनुष लीजिए और इसे चढ़ाइए जिससे मेरा सन्देह दूर हो।

देति चाप आपुहि चढ़ि गयेऊ। परसुराम मन विसमय भयेऊ॥

परशुराम ने उन्हें चाप दिया और वह आप ही आप चढ़ गया, यह देखकर परशुराम के मन में आश्चर्य हुआ।

दो०—जाना राम प्रभाव तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम समात ॥२७९॥

तब परशुराम ने रामजी का प्रभाव जाना, आनन्द से उनका मुँह खिल गया, हाथ जोड़ कर वे वचन बोले, हर्ष उनके हृदय में नहीं समाता था।

जय रघुवंसबनजबनभानू। गहनदनुजकुलदहनकृसानू॥

हे रघुकुल कमल के सूर्य, हे दैत्य कुल वन को जलाने के लिए अग्नि, आप की जय हो।

जय सुर विप्र धेनुहितकारी। जय मद मोहकोहभ्रमहारी॥
विनयसील करुना गुनसागर। जयति बचन रचना अति नागर॥

हे देवता, ब्राह्मण और गौ के हितकारी, मद, मोह, क्रोध और भ्रम को दूर करनेवाले आपकी जय हो। हे विनयशील, आप करुणा और गुणों के सागर हैं, हे अति चतुर, हे वचन रचना में प्रवीण, आपकी जय हो।

सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छबि कोटि अनंगा॥

हे सेवकों को सुख देनेवाले, आप के सभी अंग सुन्दर हैं, कोटि कामदेव के समान आपके शरीर की शोभा है, आपकी जय हो।

करउं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेसमनमानसहंसा॥

एक मुँह से मैं आपकी क्या प्रशंसा करूं, हे शिवके मन रूपी मानस सर के हंस, आपकी जय हो।

अनुचित बचन कहेउं अज्ञाता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

अज्ञान से जो मैंने अनुचित वचन कहे हैं, उन्हें आप दोनों भ्राता क्षमा करें, क्योंकि आप लोग क्षमा की खान हैं।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहिं तपहेतू॥

रामचन्द्र की जय जय जय, कह कर परशुराम वन में तपस्या करने के लिए चले गये।

अपभय सकल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवहिं पराने॥

यह देखकर काल्पनिक भय से सब राजा डर गये और जो कायर थे वे धीरे से उठकर वहाँ से भाग गये। परशुराम के पराजय से उन लोगों को रामचन्द्र की वीरता का ज्ञान हुआ और वे इसीलिए डरे।

दो०--देवन दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नरनारि सब, मिटा मोहभयसूल॥२८०॥

देवताओं ने नगारा बजाया, और उन लोगों ने प्रभु रामचन्द्र पर फूलों की वृष्टि की, नगर के स्त्री पुरुष सभी प्रसन्न हुए; क्योंकि अज्ञान के कारण जो उनको दुःख हो रहा था वह दूर हो गया।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिलबयनी॥
सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुं निधि पाई॥

खूब जोर से बाजे बजने लगे, सभी ने मनोहर और मंगल के समय के योग्य वेश बनाये। सुन्दर आँख और मुँह वाली तथा कोकिल के समान वाणी वाली स्त्रियाँ झुण्ड के झुण्ड मिलकर मधुर गान करने लगीं। राजा जनक को जो सुख हुआ, वह तो कहा ही नहीं जा सकता, मानो जन्म का दरिद्री कहीं खजाना पा गया हो।

बिगत त्रास भे सीय सुखारी। जनु बिधु उदय चकोर कुमारी॥

सीता का त्रास जाता रहा, वे सुखी हुईं, मानो चन्द्रमा के उदय से चकोर की कन्या सुखी हुई हो।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुं भाई। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥

जनक ने कौशिक मुनि को प्रणाम किया और कहा, प्रभु के प्रताप से

अर्थात् आप के प्रताप से राम ने धनुष तोड़ दिया। इन दोनों भाइयों ने मुझे कृतकृत्य कर दिया, अब आगे के लिए जो उचित हो सो कहिए।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा बिबाह चाप आधीना॥

मुनि ने कहा, हे प्रवीण महाराज, सुनिए, सीता का व्याह तो धनुष के अधीन था।

टूटतहि धनु भयेउ बिवाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

धनुष के टूटते ही व्याह हो गया, यह बात देवता मनुष्य तथा नाग सब को विदित हो गयी।

(दूतका अयोध्या जाना और दशरथ का बारात लेकर आना)

दो०-तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुरु, बेदबिदित आचारु॥ २८१॥

फिर भी जाकर तुम अपने कुल का व्यवहार करो, ब्राह्मण, कुल वृद्ध तथा गुरु से वैदिक आचारों को पूछ कर करो।

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहिं नृप दसरथहिं बोलाई॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठये दूत बोलि तेहि काला॥

अयोध्या में दूत भेजो जो जाकर राजा दशरथ को बुला ले आवे। प्रसन्न होकर राजा ने कहा, कृपालु भला, और उन्होंने उसी समय दूत बुलवा कर भेजा।

बहुरि महाजन सकल बोलाये। आइ सबन्हि सादर सिर नाये॥

पुनः जनक ने सब बड़े आदमियों को बुलाया, और उन लोगों ने आकर आदर पूर्वक राजा जनक को प्रणाम किया।

हाट बाट मंदिर सुरवासा। नगर सवांरहु चारिहु पासा॥

बाजार, रास्ता, मकान तथा मन्दिर इस प्रकार चारो ओर से नगर को सजाओ, यह जनक ने उन लोगों से कहा।

हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाये॥

रचहु विचित्र वितान बनाई। सिर धरि वचन चले सचुपाई॥

वे प्रसन्न होकर अपने अपने घर चले आये, और उन लोगों ने नोकर चाकरों को बुलवाया और कहा, तुम लोग सुन्दर मण्डप बनाओ, स्वामी की आज्ञा सुनकर वे चुपचाप चले गये।

पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे वितानबिधिकुसल सुजाना॥

उन लोगों ने अनेक प्रकार के गुणी कारीगर बुलवाये, जो शामियाना आदि खड़ा करने में चतुर थे।

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को प्रणाम कर उन लोगों ने अपना काम आरम्भ किया, और सुवर्ण का कदलिस्तम्भ बनाया।

दो०-हरित मनिन्ह के पत्र फल, पदुमराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति, मन बिरंचि कर भूल॥२८२॥

उसमें हरे मणियों का (पन्ना का) पत्ता और फल, पद्मराग मणि का फूल, बनाया, यह सुन्दर रचना देखकर ब्रह्मा का भी मन मोहित हो जाता था।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरन परहिं नहि चीन्हे॥

उन सबने हरित मणि—पन्ना का बांस बनाया, जो बिलकुल सीधा था और पत्ते वाला था, वह पहचाना नहीं जाता था कि सच्चा है या बनावटी।

कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखि नहि परई सपरन सुहाई॥
तेहि के रचि पचि बंध बनाये। बिच बिच मुकुता दाम सुहाये॥

सोना जड़ी हुई नागवेलि उन लोगों ने बनायी, वह भी पहचानी नहीं जाती थी और पत्तों के साथ वह भी भली मालूम होती थी। उसके उत्तम बन्ध उन लोगों ने बनाये और उसमें बीच बीच में मोतियों की माला शोभित हुई।

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥
किये भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा॥

मानिक, मरकत (पन्ना) कुलिश (हीरा) और पिरोजा इनको कोर-दार काट काट कर उन लोगों ने कमल के पुष्प बनाये। फिर उन पर अनेक रंग बिरंग के भौंरे और पक्षी बनाये जो कि पवन के लगने से गूंजते थे और चहकते थे।

सुरप्रतिमा खंभन्हि गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य लिये सब ठाढ़ी॥

खम्भों में देवताओं की मूर्तियाँ उन लोगों ने बनायी, जो मङ्गल वस्तु लिये खड़ी थीं।

चौके भांति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सुहाई॥

अनेक प्रकार के चौक पुरवाये, उनमें मणियों के हाथी बनवाये जो स्वाभाविक हाथी के समान सुन्दर मालूम होते थे।

दो०-सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किये नील मनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाट मय डोरि॥२८३॥

कोरदार नीलमणि—नीलमके सुन्दर और सुहावने पत्ते उन लोगों ने बनाये, उनमें सोने की बौर पन्ने की घवरि—फल का गुच्छा बनाया जो रेशम की डोरी में लटकी हुई शोभती थी।

रचे रुचिर वरवंदनवारे। मनहुँ मनोभव फंद सवाँरे॥

उन लोगों ने ऐसे उत्तम बन्दनवार बनाये, मानों कामदेव ने फन्दा बनाया हो।

मंगलकलस अनेक बनाये। ध्वजपताक पट चँवर सुहाये॥

उन लोगों ने अनेक प्रकार के मङ्गल कलश बनाये, ध्वजा, पताका, वस्त्र और चवँर भी बनाये जो बड़े सुहावने थे।

दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि विचित्र विताना॥

मणियों के सुन्दर अनेक दीप बनाये। अद्भुत शामियाना जो उन लोगों ने बनाये थे उनका तो वर्णन ही नहीं हो सकता।

जेहि मंडप दुलहिनि वैदेही। सो वरनइ अस मति कवि केही॥
दूलह राम रूपगुनसागर। सो वितान तिहुँलोक उजागर॥

जनकभवन कै सोभा जैसी। गृह गृह मुनि पुर देषिय तैसी॥

जिस मण्डप की दुलहिन वैदेही है, उस मण्डप का वर्णन करे ऐसी बुद्धि किस कवि में है। रूप और गुण के सागर राम जिस मण्डप के दूलह हैं, वह मण्डप तीनों लोकों में उजागर है। महाराज जनक के घर की जैसी शोभा है वैसी शोभा नगर के प्रत्येक घर की देखी जाती थी।

जेहि तिरहुति तेहि समय निहारि।तेहि लघुलगत भुवनदसचारी॥

उस समय जिसने तिरहुत की शोभा देखी है, उसे चौदहो भुवन की शोभा छोटी दीखती है।

जो संपदा नीच गृह सोहा। सो विलोकि सुरनायक मोहा॥

उस समय जनकपुरके नीचों के घर जो सम्पत्ति दिखायी पड़ी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो गये।

दो०–बसइ नगर जेहि लच्छिकरि, कपट नारिवर वेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद सेषु।२८४॥

जिस नगर में स्वयं लक्ष्मी छल पूर्वक स्त्री का वेष धारण कर के रहती है, उस नगर की शोभा कहने में शारदा और शेष भी सकुचित होंगे।

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर विलोकि सुहावन॥
भूपद्वार तिन्ह षबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिये बोलाई॥
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महोप आपु उठि लीनी॥

जनक का दूत रामजी के पवित्र नगर में पहुंचा, और सुन्दर नगर देखकर वह प्रसन्न हुआ। उस दूत ने राजा के द्वार पर जाकर अपने आने की खबर दी। राजा दशरथ ने उसे शीघ्र बुलवा लिया। राजा दशरथ को प्रणाम करके उसने पत्र दिया और प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं उठकर उस पत्र को लिया।

बारि विलोचन बांचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥

पत्र बाँचते बाँचते राजा की आँखों में पानी आ गया, अंग पुलकित हुआ और छाती भर आयी।

राम लषन उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न षाटी मीठी॥

राजा दशरथ के मन में राम और लचमण विराज रहे हैं, और उनके हाथों में वह पत्र है, वे कुछ भी न बोल सके, चुप होकर रह गये, खट्टा मीठा कुछ भी न बतला सके। उस पत्र के पाने से उनको सुख हुआ या दुःख इसका निर्णय वे न कर सके।

पुनि धरि धीर पत्रिका वांची। हरषी सभा बात सुनि सांची॥

पुनः धैर्य धर कर उन्होंने चिट्ठी पढ़ी और उस सची बात को सुनकर सभा प्रसन्न हुई।

षेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आये भरत सहित लघु भाई॥

भरत खेलते थे वहीं उन्होंने पत्र आने की खबर पायी और वे अपने छोटे भाई के साथ चले आये।

पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहां तें पाती आई॥

संकोचपूर्वक स्नेह से उन्होंने पूछा, पिता जी यह पत्र कहाँ से आया है।

दो०-कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन, वांची बहुरि नरेस ॥२८५॥

प्राणों के समान प्रिय हमारे दोनों भाई कुशल से हैं, वे किस देश में हैं? भरत के इस स्नेह युक्त वचन सुनकर राजा ने पुनः वह पत्र पढ़ा।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेह समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देषी। सकल सभा सुख लहेउ विसेषी॥

पत्र सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हुए, उन दोनों को अधिक आनन्द हुआ जो अंगों में नहीं समाया, रामचन्द्र में भरत की पवित्र प्रीति देखकर समस्त सभा ने विशेष सुख पाया।

तब नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैया कहहु कुसल दोउवारे। तुम्ह नीके निज नयन निहारे॥

तब राजा ने दूत को जो जनकपुर से आया था—अपने पास बैठाया

मधुर और सुन्दर वचन वे बोले, भैया, कहो, दोनों बालक कुशल से तो हैं ? उन दोनों को तुमने अपनी आँखों से देखा है न ?

स्यामल गौर धरे धनु भाथा। वय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम विवस पुनि पुनि कह राऊ॥

वे दोनों बालक श्याम और गौर वर्ण के हैं, वे हाथों में धनुष तथा तरकस धारण किये हुए हैं, उनकी किशोरअवस्था है और वे कौशिक मुनि के साथ हैं। क्या तुम उनको पहचानते हो, उनका स्वभाव कैसा है, कहो, राजा प्रेमविवश होकर यह पुनः पुनः पूछने लगे।

जा दिन तें मुनि गये लेवाई। तब तें आजु साँचि सुधि पाई॥

जिस दिन से मुनि उनको लेकर गये, उस दिन से सच्ची खबर आजही मैंने पायी है।

कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने॥

कहो, राजा विदेह ने उन दोनों को किस प्रकार जाना ? राजा के इन प्रिय वचनों को सुनकर दूत मुस्कुराया।

दो०-सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिनके तनय, विश्वविभूषण दोउ॥२८६॥

उसने कहा, हे राजाओं के मुकुटमणि, आपके समान धन्य कोई नहीं है। जिनके राम और लक्ष्मण के समान विश्वविभुषण दो पुत्र हैं।

पूछन जाग न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उँजियारे॥

महाराज, आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं, अर्थात् उनके विषय में चिंतित होने की जरूरत नहीं है, वे पुरुष सिंह हैं और तीनों लोकों में प्रकाशित हैं।

जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

जिनके यश के सामने चन्द्रमा मलिन और प्रताप के सामने सूर्य

ठण्डा मालूम पड़ते हैं। कवि, यश का वर्णन ठंढा और प्रताप का वर्णन गर्म करते हैं।

तिन्ह कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देषियरविकिदीप कर लीन्हे॥

नाथ, उनके लिए आप कहते हैं कि कैसे पहचाना ? क्या सूर्य हाथ में दीपक लेकर देखा जाता हैं ?

सीय स्वयंबर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका॥

सीता जी के स्वयम्बर में अनेक राजा आये थे, जो एक से एक बढ़कर सुन्दर थे।

संभु सरासन काहु न टारा। हारे सकल वीर बरियारा॥

पर शिव का धनुष किसी ने भी न टारा, सभी बलवान वीर हार गये।

तीनि लोक महँ जे भट मानी। सब कै सकति संभु धनु भानी॥

तीनों लोकों में जो अपने को वीर समझने वाले थे उन सब की शक्ति को, उन सब के बल को शिव के धनुष ने तोंढ दिया।

सकै उठाइ सुरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयेउ करि फेरू॥

जो देवता और दानव सुमेरु पर्वत को भी उठा सके थे उन लोगों ने भी यहां फेरा लगाया और उन्हें मन ही मन हारना पड़ा।

जेइ कौतुक सिवसैल उठावा। सोउ तेहि सभा परा भव पावा॥

जिसने कौतुक से अनायास शिवजी के पर्वत को उठा लिया था उसने भी इस सभा में पराजय पाया। कैलाश पर्वत को उठाने वाला रावण भी हार गया।

दो०–तहां राम रघुवंसमनि, सुनिय महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल॥२८७॥

हे महा महीपाल, सुनिए, उस सभा में रघुवंश मणि राम ने बिना प्रयास के बिना कुछ प्रयत्न किये ही धनुष तोड दिया, जिस प्रकार हाथी कमल की डंण्डी को तोड़ देता है, उसी प्रकार राम ने धनुष तोड़ दिया।

सुनि सरोष भृगुनायक आये। बहुत भाँति तिन्ह आँषि देषाये॥

इस खबर को पाकर—धनुष टूटने का समाचार पाकर, क्रोधपूर्वक परशुराम वहाँ आये, और अनेक प्रकार से उन्होंने आँख दिखाया, अर्थात डराया धमकाया।

देषि राम वलु निज धनु दीन्हा। करि बहु विनय गवन वन कीन्हा॥

पुनः राम जी का बल देख कर उन्होंने अपना धनुष दे दिया और राम-जी की बहुत प्रार्थना करके वे वन चले गये।

राजन राम अतुल बल जैसे। तेज निधान लषन पुनि तैसे॥

राजन्, राम जिस प्रकार अतुल बलशाली हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण भी तेजस्वी हैं।

कंपहिं भूप विलोकत जाके। जिमि गज हरि किसोर के ताके॥

जिसके देखने से राजा लोग काँपने लगते हैं, जिस प्रकार के सिंह के बच्चे के ताकने से हाथी काँपने लगता है।

देव देषि तव बालक दोऊ। अब न आँषि तर आवत कोऊ॥

देव, आपके दोनों पुत्रों को देखकर अब कोई भी आँखों के सामने नहीं आता, अब कोई भी उनका सामना नहीं करता।

दूत वचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप वीर रस पागी॥

प्रेम, प्रताप और वीरता में पगी हुई दूत की बातें राजा को बहुत अच्छी लगी। दूत की बातों से वे प्रसन्न हुए।

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूंदहि काना। धरमु विचारि सवहि सुष माना॥

सभा के साथ राजा प्रसन्न हुए, अर्थात राजा भी प्रसन्न हुए, और सभा भी, राजा दशरथ दूतों को विदाई देने लगे। दूतों ने इसे नीति विरुद्ध कह कर अपने कान बन्द कर लिये। कन्यापक्षवालों का वरपक्षवालों से लेना

अच्छा नहीं, उनका यह धर्म विचार देख कर दूसरे भी सुखी हुए, उन्होंने इसे बुरा न माना।

दो०-तब उठि भूप बसिष्ठ कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहिं सब, सादर दूत बुलाइ ॥ २८८ ॥

तब राजा ने जाकर वह पत्र वशिष्ठ को दिया और दूत को आदर पूर्वक बुलाकर उन्होंने गुरु को सब बातें सुनवायीं।

सुनि बोले गुरु अतिसुष पाई। पुन्य पुरुष कँह महि सुष छाई॥

सुनकर और अत्यन्त सुखी होकर गुरुजी बोले, पुण्यात्मा पुरुष के लिए इस पृथिवी में सर्वत्र सुख ही सुख है।

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं। जद्यपि ताहिं कामना नाहीं॥
तिमि सुष संपति बिनहिं बोलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए॥

सब नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं, यद्यपि समुद्र यह नहीं चाहता कि नदियाँ मेरे पास आवें, इसी प्रकार बिना बुलाये ही धर्मशील मनुष्य के पास सब सुख और सम्पति जाती हैं।

तुम्ह गुरु-बिप्र-धेनु-सुर-सेवी। तस पुनीत कौसल्यादेवी॥
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनउ नाहीं॥

आप राजा दशरथ, गुरु ब्राह्मण गौ और देवताओं की सेवा करनेवाले हैं और कौशल्या देवी भी आप ही के समान पवित्र हैं। आपके समान पुण्यात्मा इस जगत में न तो कोई हुआ है, न है और न होगा।

तुम्ह ते अधिक पुण्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके॥

राजन्, आप से बढ़कर पुण्य किसका है, जिसके रामके समान पुत्र हैं।

बीर बिनीत धरम ब्रतधारी। गुन सागर बरबालकचारी॥

आपके वीर, विनयी धर्मव्रत के धारण करनेवाले और गुणसागर चार बालक हैं, फिर आपके समान पुण्यात्मा कौन है।

तुम्ह कहँ सर्वकाल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥

आपका सब समय में कल्याण ही होगा, अब आप बरात सजाइए, बाजे बजवाइए।

दो०—चलहु बेगि सुनि गुरु बचन, भलेहि नाथ सिरुनाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बास देवाइ ॥ २९६ ॥

शीघ्र चलो, गुरु के इस वचन को सुनकर राजा ने सिर नवाकर अच्छा कहा, अर्थात् उन्होंने गुरु का कहना स्वीकार किया दूतों को ठहरने की जगह दिलवा कर राजा भवन में गये अर्थात् रानियों के महल में गये।

राजा सब रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ॥
सुनि संदेस सकल हरषानी। अपर कथा सब भूप बषानी ॥

महल में जाकर राजा ने सब रानियों को बुलाया और जनक का पत्र बाँच कर उन्हें सुनाया। दूतों से सुनी और बातें भी उन्होंने कही, रानियाँ जनक के सन्देश को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहु सिखिनि सुनि बारिदबानी ॥

प्रेम से प्रफुल्लित होकर रानियाँ बहुत शोभने लगीं, मानों मेघ गर्जन सुनने पर जैसे मोरिन प्रसन्न हो रही हो शीखी का अर्थ है मयूर उसी का हिन्दी व्याकरण के अनुसार स्त्री लिङ्ग रूप होता है शिखिन।

मुदित असीस देहिं गुरुनारी। अति आनंद मगन महतारी ॥

बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने लगीं और माता कौशल्या आनन्द मग्न हो गयीं।

लेहि परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहि छाती ॥
राम लषन के कीरति करनी। बारहिं बार भूपवर बरनी ॥

उस प्रिय पत्र को वे परस्पर एक से दूसरी इस प्रकार लेने लगीं और उस पत्र को हृदय में लगा कर छाती जुड़ाने लगी। राजा दशरथ ने राम और लछमण की कीर्ति कथा बारबार कह सुनायी।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाये। रानिन्ह तब महिदेव बोलाये ॥

यह सब मुनि विश्वामित्र की कृपा का फल है, ऐसा कह कर राजा द्वार पर चले आये और तब रानियों ने ब्राह्मणों को बुलवाया।

दिये दान आनंद समेता। चले विप्रवर आसिष देता॥

उन लोगों ने आनन्दपूर्वक खूब दान दिये, और ब्राह्मण दान लेकर आशीर्वाद देते हुए चले गये।

सो०—जाचक लिए हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि विधि।
चिरजीवहु सुत चारि, चक्रवर्त्ति दसरत्थ के॥

रानियों ने याचकों को बुलवाया और करोड़ों तरह के निछावर करके उन्हें दिया, उन लोगों ने आशीर्वाद दिया कि चक्रवर्ती राजा दशरथ के चारो पुत्र चिरजीवी हों।

कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥

अनेक प्रकार के वस्त्र पहने हुए याचक चक्रवर्ती राजा दशरथ के चारो पुत्र चिरजीवी हों ऐसा कहते हुए चले और प्रसन्न होकर खूब बाजे बजाने लगे।

समाचार सब लोगन्ह पाये। लागे घर घर होन बधाये॥
भुवन चारि दस भयऊ उछाहू। जनक सुता रघुबीर बिवाहू॥

यह समाचार सब लोगों ने पाया, तब घर घर बधावे होने लगे। जानकी और रामचन्द्र के विवाह में चौदहों भुवनों में उत्साह हुआ, आनन्द मङ्गल हुआ।

सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सवाँरन लागे॥

शुभ समाचार को सुनकर लोग प्रसन्न हुए तथा रास्ता और गली सजाने लगे।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मंगल रचना रची बनाई॥

यद्यपि रामचन्द्र की मङ्गलमय और पवित्र अयोध्यापुरी सदा ही सुन्दर

है, तथापि रीति के अनुसार, परम्परा की प्रथा के अनुसार और मङ्गल के समय के अनुसार उसकी सजावट की गई।

ध्वज पताक पट चामर चारू। छावा परम विचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनिजाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥

ध्वजा पताका, वस्त्र तथा उत्तम चांवरसे बाजार बड़े अच्छे ढंग से सजाया गया। सोने का कलश, मणियों के तोरण, हरिद्रादूब, दही, अक्षत और माला से लोगों ने अपने अपने घर सजाये।

दो०-मंगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथी सींची चतुर सम, चौके चारु पुराइ॥ २६०॥

लोगों ने माङ्गलिक द्रव्यों से अपने अपने घर सजाये, चौतरे के समान गलियों को उन लोगों ने सींचा और सुन्दर चौक पुरवाया। चत्वर शब्द का अपभ्रंश चतुर है, इसका अर्थ चौतरा है।

जहँतहँजूथजूथमिलिभामिनि। सजिनवसप्तसकलदुति दामिनि॥
बिधु बदनी मृग सावक लोचनि। निज सरूप रतिमानविमोचनि॥
गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठलजानी॥

जहाँ तहाँ सात सात नौ नौ की झुण्ड बना कर बिजुली के समान काँतिवाली चन्द्रमुखी मृगनयनी और अपने रूप से कामदेव की स्त्री रति का अहंकार दूर करने वाली स्त्रियां सुन्दर वाणी से मंगल गाने लगी, उनकी मधुर और गम्भीर ध्वनि सुनकर कोयल भी लज्जित हुई।

भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहनरचेउ बिताना॥
मंगल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥

राजा के भवन का क्या वर्णन किया जाय, वहाँ संसार को मोहित करनेवाला शामियाना खड़ा किया गया था। अनेक प्रकार के और मन-हरण करनेवाले मंगल द्रव्य वहाँ शोभ रहे थे, अनेक बाजे बज रहे थे।

कतहुँ बिरद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं॥

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लेइ लेइ नाम राम अरु सीता॥
बहुत उछाहु भवन अति थोरा। मानहु उमंगि चला चहुं ओरा॥

कहीं बन्दीगण यशगान कर रहे थे, और ब्राह्मणगण कहीं वेद पाठ करते थे, राम और सीता का नाम ले ले कर स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं, उत्साह बहुत अधिक था, पर राजभवन छोटा था, इसलिए मालूम होता था कि आनन्द उमड़कर चारो ओर फैल रहा है।

दो०-सोभा दसरथ भवन कै, को कबि बरनइ पार।
जहाँ सकलसुरसीसमनि, राम लीन्ह अवतार॥२९१॥

दशरथ के भवन की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है, क्योंकि जिस भवन में सब देवताओं के मुकुट मणि स्वयं रामचन्द्र ने अवतार लिया है।

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुवीर बराता। सनत पुलक पूरे दोऊ भ्राता॥
भरत सकल साहनी बोलाये। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाये॥

राजा ने भरत को बुलाया और कहा, हाथी, घोड़े तथा रथ जाकर तयार कराओ, शीघ्र ही रामचन्द्र की बारात में चलो, यह सुनकर दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए, उनके रोंगटे खड़े हो गये। भरत ने सब फौजवालों को बुलाया और उन्हें आज्ञा दी, वे प्रसन्न होकर अपने अपने काम में दौड़े।

रुचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। वरन वरन वर बाजि बिराजे॥

उन लोगों ने बड़ी सुन्दरता से घोड़ों पर जीन सजाये जिससे रंग त्रिरंगे उत्तम उत्तम घाड़े और भी अधिक शोभने लगे।

सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥

वे सब के सब सुन्दर थे और सुहावने थे, उनकी चाल तेज थी, जलते हुए लोहे के समान वे पृथिवी पर पैर धरते थे। जैसे लोग जलते हुए लोहे

पर पैर धर कर जल्दी उठा लेते है पुनः धरते हैं उसी प्रकार वे पृथिवी में जल्दी जल्दी पैर धरते थे ।

नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने॥

वे घोड़े अनेक जाति के थे, जिनका वर्णन नहीं हो सकता, मानों वे अपने वेग से पवन का अनादर करके उसे उड़ा देना चाहते हैं।

तिह सब छैल भये असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा॥

उन घोड़ों पर भरत की उमरवाले सब सुन्दर सुन्दर राजकुमार सवार हुए।

सब सुंदर सब भूषन धारी। कर सर चाप तून करि भारी॥

वे सब राजकुमार सुन्दर थे, उन लोगों ने सब भूषण धारण किये थे, उनके हाथ में धनुष और बाण था, तथा कमर में तूणीर, (बाण रखने का भाथा)

दो०—छरे छबीले छैल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग पद चर असवार प्रति, जे असि कला प्रवीन॥२६२॥

वे सब राजकुमार सुन्दर तथा चतुर थे. उन प्रत्येक असवार के साथ दो दो पैदल चलने वाले थे, जो तलवार की कला में बहुत ही प्रवीण थे।

बाँधे विरद वीर रन गाढ़े। निकसि भये पुर बाहिर ठाढ़े॥

रण में अजेय वीर जो युद्ध के वेश से सजे हुए थे वे निकल कर नगर के बाहर जाकर खड़े हुए।

फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना॥

वे अपने सिखे सिखाये घोड़ों को अनेक चाल चलाने लगे, और नगारे का शब्द सुनकर वे प्रसन्न होने लगे।

रथ सारथिन्ह विचित्र बनाये। ध्वज पताक मनि भूषन लाये॥
चवँर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं॥

सारथियों ने ध्वजा पताका तथा मणियों के भूषण लगाकर रथ को

खूब सजाया, उन रथों में सुन्दर चँवर थे, छोटी छोटी घंटियाँ बज रहीं थी, इस प्रकार वे रथ सूर्य के रथ की शोभा को हरण करते थे। सूर्य के रथ से भी उन रथों की शोभा अच्छी थी।

स्यामकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥

अनेक श्याम कर्ण जाति के घोड़े राजा दशरथ के यहाँ थे। सारथियों ने उन घोड़ों को रथों में जोता।

सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकत मुनिमन मोहे॥
जे जल चलहिं थलहिं की नाई। टाप न बूड़ वेग अधिकाई॥

वे सब सुन्दर रथ खूब सजाये गये थे जिन्हें देखकर मुनियों का भी मन मोहित हो जाता था। वे घोड़े भूमि के समान जल पर चलते थे, उनके पैर जल में नहीं डूबते थे, क्योंकि उनका वेग बहुत अधिक था।

अस्त्र सस्त्र सब साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिये बोलाई॥

अस्त्र शस्त्र आदि सब सामग्रियों को सजाकर सारथियों ने रथियों को तथा रथ के सवारों को बुलाया।

दो०-चढ़ि चढ़ि रथ बाहिर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबन्हि, जो जेहि कारज जात॥ २९३॥

वे रथ पर चढ़ चढ़ कर नगर के बाहर हुए, नगर के बाहर बारात एकत्रित होने लगी, जो जिस काम के लिए जाता था उसे ही अच्छे सगुन होते थे, उसे ही भावी शुभ की सूचना मिलती थी।

कलित करि बरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सवाँरी॥

ले आये गये हाथियों पर सुन्दर अम्बारी रखी गयी, वह कैसी सजायी गयी थी यह कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी सजावट का वर्णन हो नहीं सकता।

चले मत्तगज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घनराजी॥

मतवाले हाथी चले, जिन पर घंटा शोभता था, वे सावन की सुन्दर घटा के समान मालूम पड़ते थे।

वाहन अपर अनेक विधाना। सिविका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले विप्रवर वृन्दा। जनु तनु धरे सकल स्रुति छन्दा॥

और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थीं, सुन्दर पालकी थीं, जिनमें बैठने से सुख होता है। उन पर श्रेष्ठ ब्राह्मणों का समूह चढ़कर चला, मानो समस्त वेद शरीर धारण करके जा रहे हों।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥

मागध, सूत, बन्दी आदि यश वर्णन करनेवाले, सवारियों पर चढ़कर चले, जो जिसके योग्य था उसे उसी प्रकार की सवारी दी गयी थी।

वेसर ऊँट वृषभ बहु भाँती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती॥

खच्चर, ऊँट और अनेक जाति के बैल, भाँति भाँति की वस्तुओं को लाद कर चले।

कोटिन्ह कावँरि चले कहारा। विविध वस्तु को बरनइ पारा॥

काँवर लेकर करोड़ों कहार अनेक प्रकार की वस्तुओं को लेकर चले, वे कितनी वस्तु थीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥

नौकर चाकरों का भी समुदाय चला, वे अपना अपना वेश बना कर अपने अपने समाज के साथ चले।

दो०—सब के उर निर्भर हरषु, पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबइ नयन भरि, राम लषन दोउ वीर॥२९४॥

सब का हृदय आनन्द से भर गया था और शरीर पुलक से पूर्ण था, सब लोगों की यही अभिलाषा थी कि राम और लक्ष्मण दोनों वीरों को कब भर आँख देखेंगे।

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥

चारों ओर हाथी गर्जते थे, घंटो की भयानक ध्वनि होती थी, रथों का शब्द होता था और घोड़े हिनहिनाते थे।

निदरि घनहिं घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना॥

नगारों की ध्वनि बादलों का अनादर करके धम धम शब्द फैला रही थी जिससे अपनी या परायी कुछ भी कानों को सुनायी नहीं पड़ती थी।

महाभीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पषान पवारे॥

राजा दशरथ के द्वारे बहुत बड़ी भीड़ थी, इतनी अधिक भीड़ थी कि पत्थर डाल देवें पर भी वह धूल हो जाय।

चढी अटारिन्ह देषहिं नारी। लिये आरती मंगल थारी॥
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंद न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबिहयनिंदक बाजी॥

स्त्रियाँ कोठों पर चढ़कर देखती थीं, वे मंगल थालियों में आरती लिये हुए थीं। वे अनेक तरह के मनोहर गीत गाती थीं, जिससे बहुत आनन्द आता था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुमंत्र ने दो रथ सजाये, इनमें सूर्य के घोड़ों की निन्दा करनेवाले घोड़े जोते।

दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बषाने॥

वे दोनों सुन्दर रथ राजा के पास लाये, उनका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं।

राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेजपुंज अति भ्राजा॥

उन दोनों रथों में का एक रथ; राजा के योग्य सामग्रियों से सजाया गया था और दूसरा तेज पुंज से स्वयं शोभित हो रहा था।

दो०-तेहि रथ रुचिर बसिष्ट कहँ, हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु॥२६५॥

राजा ने प्रसन्न होकर उस सुन्दर रथ पर वशिष्ठ को चढ़ाया और स्वयं भी शिव, गुरु, गौरी तथा गणेश का स्मरण करके रथ पर चढ़े।

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरुसंग पुरंदर जैसे॥
करि कुलरीति वेदविधि राऊ। देषि सबहि सबभाँति बनाऊ॥
सुमिर राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति संग बजाई॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगलदाता॥

वशिष्ठ के साथ राजा कैसे शोभते थे, जैसे बृहस्पति के साथ इन्द्र शोभते हैं। राजा ने वेदविधि के अनुसार अपने कुल की रीतियाँ कीं और सब सजावटों को उन्होंने देखा। तब राम का स्मरण कर और गुरु की आज्ञा पाकर राजा चले, उनके संग बाजा बजता था। बारात को देखकर देवता प्रसन्न हुए और वे माङ्गलिक फूलों की बरसा करने लगे।

भयउ कोलाहल हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नाग सुमंगल गाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥

हाथी और घोड़ों की मस्ती से बड़ा कोलाहल हुआ, आकाश में बारात के बाजे बजने लगे। देवता, मनुष्य और नाग मंगल गाने लगे, सुहावने राग में सहनाई बजने लगी।

घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सरव करहिं पायक फहराहीं॥

घंटे घटियों के शब्दों का तो वर्णन ही नहीं हो सकता, पैदल चलने-वाले पताका फहराते चले जाते थे।

करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कलगान सुजाना॥

विदूषक—हँसी मजाक करने वाले राजा के साथी, अनेक प्रकार का तमाशा करते थे। वे हास्यकला में निपुण; उत्तम गानेवाले तथा चतुर थे।

दो०—तुरग नचावहिं कुअँरवर, अकनि मृदङ्ग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित, डगहिं न ताल बँधान॥२९६॥

राजकुमारगण घोड़ों को मृदङ्ग की ध्वनि के अनुसार नचाते थे, चतुर नट इस बात को देखकर चकित होते थे, क्योंकि वे घोड़े ताल से ज़रा भी नहीं डिगते थे।

बनइ न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभदाता॥
चारा चाषु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कह देई॥

बारात कैसी बनी थी इसका वर्णन नहीं हो सकता, सभी ओर सुन्दर और शुभदायी सगुन होते थे। बारात के वामभाग में चपक, नीलकंठ, चारा चुगता था इस प्रकार मानो वह होनेवाले सब मंगलों को कह देता था।

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब काहू पावा॥

दाहिनी ओर खेत में कौआ शोभता था और सब लोगों ने नेवले को देखा।

सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव बरनारी॥

शीतल, मन्द और सुगन्ध तीन प्रकार की अनुकूल हवा चलती थी, सुन्दर स्त्रियाँ घड़े भर भर कर बालकों के साथ आती दीख पड़ीं।

लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा॥

लोमड़ी ने बार बार अपना दरस दिखाया और सामने ही गौ ने बच्चे को दूध पिलाया।

मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगलगन जनु दीन्ह देखाई॥

मृगों का झुण्ड फिर कर दाहिनी ओर आया अर्थात् बायीं ओर से वह दाहिनी ओर आया, मानो वे मङ्गलों के समूह ही दिखायी पड़े।

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥

क्षेमकरी नाम की चिड़िया ने विशेष क्षेम बतलाया, और उत्तम पेड़ पर बाँयी ओर श्यामा नाम की चिड़िया दिखायी पड़ी।

सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

सामने दही और मछलियाँ आयीं और दो प्रौढ़ ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लेकर आये।

दो०—मंगलमय कल्यानमय, अभिमतफलदातार।
जनु सब साँचे होन हित, भये सुगुन एक बार ॥२६७॥

मङ्गलमय, कल्याणमय तथा इष्ट मनोरथों को देनेवाले सभी शकुन; मानो सच्चे होने के लिए सब एक ही साथ हुए।

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुनब्रह्म सुंदर सुत जाके॥

उसके लिए सभी मंगल सुगम है, जिनके पुत्र स्वयं सगुण ब्रह्म हैं।

राम सरिस वर दुलहिनि सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता॥
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम सांचे॥

राम के समान वर और सीता के समान दुलहिन, दशरथ और जनक के समान पवित्र समधी हैं, इस ब्याह की बात सुनकर सभी सगुन प्रसन्नता से नाच उठे, उन सगुनों ने कहा कि इस अवसर पर हम लोगों को ब्रह्मा ने सत्य प्रमाणित किया।

एहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसना॥

इस प्रकार बारात चली, हाथी और घोड़ों पर निशान चलता था।

आवत जानि भानुकुलकेतू। सरितहि जनक बँधाये सेतू॥
बीच बीच बर वास बनाये। सुरपुर सरिस संपदा छाये॥

सूर्यकुल केतु महाराज दशरथजी आ रहे हैं, यह जानकर जनक जी ने नदियों पर पुल बनवा दिये। बीच बीच में रास्ते में रहने के लिए उन्होंने सुन्दर स्थान बनवा दिये थे। जहाँ देवनगरी के समान सम्पत्तियाँ एकत्रित थीं।

असन सयन बर बसन सुहाये। पावहिं सब निज निज मनभाये॥

भोजन, शयन तथा उत्तम वस्त्र जिसकी आवश्यकता थी, वह वहीं पाता था।

नित नूतन सुख लखि अनकूले। सकल बरातिन्ह ंदिर भूले॥

नित नये नये अनुकूल सुखों को देखकर सब बाराती अपने अपने घरों को भूल गये।

दो०—आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान ॥२६८॥

सजी हुई बारात आ रही है, यह जानकर और डंके की आवाज सुनकर, राजा जनक हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सजाकर अगवानी के लिए चले।

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा ॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने ॥
फल अनेक बरवस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई ॥

भरे हुए सोने के कलश, परात, थार तथा और भी अनेक प्रकार के सुन्दर सुन्दर बर्तन, भाँति भाँति के अमृत समान पकवानों से भरकर, विविध फल तथा और भी अनेक प्रकार की अच्छी अच्छी चीजें राजा जनक ने प्रसन्न होकर भेंट में भेजी।

भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुविधि जाना ॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाये। बहुत भाँति महिपाल पठाये ॥

भूषण, वस्त्र, अनेक प्रकार के मणि, पक्षी, पशु, घोड़ा, हाथी तथा और भी अनेक प्रकार की सवारी, माङ्गलिक वस्तु; शकुन की वस्तु जो अनेक प्रकार की थीं राजा ने भेजीं।

दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि कावरि चले कहारा ॥

जलपान के लिए कावरों में भरकर कहार दही चिवड़ा लेकर चले।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलकभरगाता ।

अगवानी करनेवालों ने जब बारात देखी, तब उनके मन में बहुत आनन्द हुआ, उनका शरीर पुलकित हो आया।

देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना ॥

बारातियों ने जब देखा कि सजकर लोग अगवानी के लिए आ रहे हैं तब प्रसन्न होकर उन लोगों ने डंका बजाया।

दो०-हरषि परस्पर मिलनहित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनंदसमुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल ॥२६६॥

परस्पर मिलने के लिए वे थोड़ी दूर तक बगमेल चले। बगमेल उसको कहते हैं जो एक की ओर दूसरा और दूसरे की ओर एक जाय, प्रायः घोड़ों-सवारों की ऐसी चाल को बगमेल कहते हैं। उस समय ऐसा मालूम होता था मानों दो समुद्र तीर छोड़ कर आपस में मिल रहे हों।

बरषि सुमन सुर सुंदर गावहिं। मुदित देव दंदुभी बजावहिं॥

देवता पुष्पबृष्टि करने लगे, देवतों की स्त्रियाँ गाने लगीं और प्रसन्न होकर देवता दुन्दुभी बजाने लगे।

वस्तु सकल राषी नृप आगे। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे॥

सब वस्तु जो राजा जनक ने भेजी थी, महाराज दशरथ के सामने ले आनेवालों ने रक्खीं और बड़े प्रेम से रखलेने की उन लोगों ने प्रार्थना की।

प्रेमसमेत राय सब लीन्ही। भइ बकसीस जाचकन दीन्ही॥

राजा दशरथ ने प्रेम पूर्वक वे सब चीज़ें रखवा लीं, वे सब चीज़ें इनाम के रूप में उन्होंने मांगनेवालों को दे दीं।

करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लेवाई॥

अगवानी करनेवाले बारातियों की पूजा तथा प्रसंशा करके उन्हें जनवासे लिवा ले चले।

बसन बिचित्र पाँवडे परहीं। देषि धनद धनमद परिहरहीं॥

मार्ग में बहुत ही सुन्दर वस्त्र बिछा हुआ था, जिसे देखकर कुबेर भी अपने धन का अहङ्कार भूल जाते थे।

अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सबभाँति सुपासा॥

उन लोगों ने बड़ा ही सुन्दर जनवासा दिया, बारातियों के रहने के लिए जगह दी, जहाँ सबको सब प्रकार की सुविधा थी।

जानी सिय बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥

सीता ने जब जाना कि बारात नगर में आ गयी, तब उन्होंने कुछ महिमा प्रकाशित की, उस समय उन्होंने अपना चमत्कार बताया।

हृदय सुमिरि सब सिद्धि बोलाई। भूप पहुनई करन पठाई॥

हृदय में स्मरण करके उन्होंने सब सिद्धियों को बुलाया और उन्हें राजा दशरथ की पहुनई करने के लिए भेज दिया, पाहुन की सेवा को पहुनई कहते हैं।

दो०–सिधि सब सिय आयसु अकनि, गई जहाँ जनवास।
लिये संपदा सकल सुष, सुर पुर भोगविलास॥३००॥

सीताजी की आज्ञा को समझ कर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था; वहाँ सब प्रकार की सम्पत्ति, सब प्रकार के सुख तथा इन्द्रनगरी का भोग-विलास लेकर गयीं।

निज निज वास विलोकि बराती। सुर सुष सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बषाना॥

बारातियों ने अपने अपने रहने के स्थान देखे, जहाँ सब प्रकार से देव सुख सुलभ था। यह सब विभव कहाँ से आया है, यह किसीने नहीं जाना, जनक ने ही यह सब किया है, ऐसा समझ कर उन लोगों ने जनक की प्रशंसा की।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥

पर रामचन्द्रजी ने यह बात जान ली कि यह सब सीताजी की महिमा है और इसका कारण जानकर (अर्थात् सीताजी लक्ष्मी की अवतार हैं) वे मन ही मन प्रसन्न हुए।

पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंद समाई॥

सकुचन्ह कहि न सकत गुरुपाहीं। पितु दरसन लालच मन माहीं ॥

पिता आ रहे हैं; यह सुनकर दोनों भाइयों को इतना आनन्द हुआ कि वह हृदय में नहीं समाया। संकोच के कारण वे गुरु विश्वामित्र से कुछ कह नहीं सकते थे, पर पिता को देखने की उनके मन में बड़ी उत्कण्ठा थी।

बिस्वामित्र विनय बड़ि देषी। उपमा उर संतोष बिसेषी ॥
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाये। पुलक अंग अंबुक जलछाये ॥

विश्वामित्र ने उन दोनों भाइयों की इस बड़ी विनय को देखा, इससे उनके हृदय में अधिक सन्तोष हुआ। प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयों को हृदय से लगाया, उनका शरीर पुलकित हो आया और उनकी आँखों में जल छा गया।

चले जहाँ दसरथ जनवासे। मनहुँ सरोवर तकेउ पियासे ॥

वे दशरथजी जहाँ जनवासे में थे वहाँ चले, मानो प्यासा हुआ मनुष्य तालाब ढूंढता जा रहा हो।

दो०–भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ हरषि सुषसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥२०१॥

राजा ने जब देखा कि मेरे पुत्रों के साथ मुनि विश्वामित्रजी आ रहे हैं, तब वे उठकर चले, मानो सुख के समुद्र का वे थाह लेते जा रहे हैं।

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पदरज धरि सीसा ॥
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई ॥
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुष न समाई ॥
सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतकसरीर प्रान जनु भेटे ॥

राजा दशरथ ने मुनि को दण्डवत प्रणाम किया और कई बार उनके चरण कमलों की धूलि अपने मस्तक पर रखी। विश्वामित्र ने राजा को छाती से लगा लिया, आशीर्वाद देकर उन्होंने उनकी कुशल क्षेम पूछी। पुनः जब राजा ने देखा कि दोनों भाई राम और लचमण उन्हें दण्डवत कर

रहे हैं; तब उनको जो सुख हुआ, वह उनके हृदय में न समाया। पुत्रों को हृदय से लगाकर राजा ने अपने न सह सकने योग्य दुःख को दूर किया, मानो मृतकशरीर ने पुनः प्राण पा लिया हो।

पुनि वसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाये। प्रेममुदित मुनिवर उर लाये॥

पुनः वसिष्ठ के चरणों में सिर नवाकर उन्होंने प्रणाम किया, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने प्रसन्न होकर उनको छाती से लगा लिया।

विप्रवृंद बंदे दुहुँ भाई। मनभावती असीसैं पाई॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रणामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लषन देषि दोउ भ्राता। मिले प्रेमपरिपूरितगाता॥

पुनः दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों को प्रणाम किया और मनके प्रिय आशीर्वाद उन लोगों ने पाये। छोटे भाई शत्रुघ्न के साथ भरत ने राम को प्रणाम किया, रामने उठा कर उन लोगों को हृदय से लगाया, दोनों भाइयों को देखकर लक्ष्मण प्रसन्न हुए, वे उनसे मिले; उनका शरीर प्रेम से भर गया।

दो०-पुरजन परिजन जातिजन, जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाविधि सबहिं प्रभु, परम कृपालु विनीत॥३०२॥

नगरवासी, नौकर, भाई, बन्धु, याचक, मन्त्री, मित्र इन सभी से परमकृपालु और विनयी श्री रामचन्द्रजी जो जैसा था उससे वैसे ही मिले।

रामहिं देषि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बषानी॥

राम को देखकर बारातवाले प्रसन्न हुए, उन लोगों की प्रीति की रीति कैसी थी इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

नृपसमीप सोहहिं सुतचारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥

राजा दशरथ के पास चारो पुत्र वैसे शोभते थे मानो अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष ये चारों शरीर धारण करके वहाँ बैठे हों।

सुतन्ह समेत दसरथहिं देषी। मुदित नगरनरनारिविसेषी॥

पुत्रों के साथ राजा दशरथ को देखकर नगर के स्त्री पुरुष बहुत अधिक प्रसन्न हुए।

सुमन वरषि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना॥

देवता पुष्प वृष्टि करके नगारे वजाने लगें, स्वर्ग की वेश्यायें जा जाकर नाचने लगीं। नाक का अर्थ है स्वर्ग और नटी का अर्थ है नाचनेवाली।

सतानंद अरु विप्र सचिव जन। मागध सूत विदुष वंदीजन॥
सहित वरात राउ सनमाना। आयसु मांगि फिरे अगवाना॥

शतानन्द, ब्राह्मण, राजा जनक के सचिव, मागध, सूत, विद्वान् और वन्दीजन इन सबों ने वारात के साथ राजा का सम्मान किया और उनकी आज्ञा पाकर अगवानी से लौट गये।

प्रथम वरात लगन ते आई। तातें पुर प्रमोद अधिकाई॥

वारात लगन से पहले आयी है. विवाह के दिन से पहले ही बारात आ गयी, इससे नगर में विशेष आनन्द हुआ। क्योंकि नगर वासियों को अधिक दिनों तक आनन्दोत्सव देखने का अवसर मिलेगा।

ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। वढ़इ दिवसनिसि विधि सव कहहीं॥

सभी ब्रह्मानन्द के समान आनन्द पाने लगे, वे लोग ब्रह्मा से इस बात की प्रार्थना करने लगे कि दिन और रात को कुछ और बढ़ा दीजिए।

दो०-रामु सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नरनारिसमाज॥३०३॥

राम और सीता शोभा की सीमा हैं तथा दोनो राज्य; अवध और मिथिला पुण्य की सीमा हैं, नगरवासी स्त्री पुरुषों का समाज जहाँ तहाँ एकत्रित होकर यह कहता है।

जनकसुकृतमूरति वैदेही। दसरथसुकृत रामु धरे देही॥

वैदेही जनक के पुण्य की मूर्ति है और दशरथ के पुण्य ने राम का रूप धारण किया है।

इन्ह सम काहु न सिव अवराधे । काहु न इन्ह समान फल लाधे ॥
इन्ह सम कोउ न भयउ जगमाहीं । है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी । भये जग जनमि जनक पुरवासी ॥

इनके समान शिवजी की पूजा किसी ने नहीं की और इनके समान फल भी किसी ने नहीं पाया, इनके समान जगत् में कोई नहीं हुआ, है भी नहीं और होगा भी नहीं । हम लोग भी पुण्य की राशि हैं, हम लोग भी पुण्यात्मा हैं, जो जगत् में जन्म लेकर जनकपुर के वासी हुए हैं ।

जिन्ह जानकी राम छवि देषी । को सुकृती हम सरिस विसेषी ॥

जिन्होंने राम और सीता की शोभा अपनी आँखों देखी है, भला वैसा हम लोगों के समान बड़ा पुण्यात्मा कौन है ।

पुनि देषब रघुबीर विवाहू । लेब भलीविधि लोचनलाहू ॥

पुनः हम लोग रामचन्द्रजी का ब्याह देखेंगे और अच्छी तरह आँख पाने का लाभ लेंगे ।

कहहिं परसपर कोकिलबयनी । एहि विवाह बड़ लाभ सुनयनी ॥
बड़े भाग विधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥

कोकिल के समान बोलनेवाली स्त्रियाँ आपस में कहती हैं, सुनयनी; सुन्दर आँखों वाली, इस विवाह में बड़ा लाभ है । बड़े भाग्य से ब्रह्मा ने बात बनायी है, यह समय दिखाया है, क्योंकि दोनों भाई हमारी आँखों के अतिथि होंगे अर्थात् हम लोग उन्हें देखेंगी ।

दो०–बारहि बारु सनेहबस, जनक बोलाउब सीय ।
लेन आइहहिं बंधु दोउ, कोटि काम कमनीय ॥२०४॥

स्नेह के कारण जनक सीता को बारबार अयोध्या से बुलायेंगे और करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर दोनों भाई सीता को लेने के लिये बारबार जनकपुर में आवेंगे ।

बिविध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥

तरह तरह से इनका सत्कार होगा, ऐसी ससुराल भला किसे प्रिय न होगी।

तब तब राम लषनहिं निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुषारी॥

जब जब ये आवेंगे; तब तब इन दोनों राम और लछमण को देखकर सब नगरवासी सुखी होंगे।

सषि जस रामलषन कर जोटा। तैसइ भूपसंग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अंग सुहाये। ते सब कहहिं देषि जे आये॥

सखि, राम और लछमण की जैसी जोड़ी है, राजा दशरथ के साथ वैसे ही दो लड़के और हैं। उनमें एक श्यामवर्ण का और दूसरा गौरवर्ण का है, वे दोनों भी सर्वाङ्ग सुन्दर हैं, यह बात वे कहते हैं जो उन्हें देखकर आये हैं।

कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ संवारे॥
भरतु राम ही की अनुहारी। सहसा लषि न सकहिं नर नारी॥

उनमें की एक ने कहा, उन दोनों को मैंने आज ही देखा है, मानो ब्रह्मा ने स्वयं अपने हाथ से उन्हें सवाँरा है। भरत राम के समान ही हैं, सहसा इन दोनों के भेद को कोई स्त्री या पुरुष पहचान नहीं सकते।

लषन सत्रुसूदन एक रूपा। नषसिष ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहिं मुष बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥

लछमण और शत्रुघ्न दोनों एक समान हैं, नख से सिख तक इनका प्रत्येक अंग सुन्दर है। वे सभी मन को अच्छे लगते हैं, पर मुख से उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि त्रिभुवन में इनके योग्य कोई उपमा ही नहीं है।

छं०—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कवि कोबिदकहहिं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहहिं॥

पुर नरि सकल पसारि अंचल विधिहि बचन सुनावहीं।
व्याहियहु चारिउ भाइ एहि पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

तुलसीदास कहते हैं कि कोई कवि या विद्वान् इनके लिए कोई उपमा नहीं दे सकता, बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के ये समुद्र हैं और अपने समान ये आप ही हैं। नगर की स्त्रियाँ अंचल पसार कर ब्रह्मा से यह प्रार्थना करती हैं, इन चारों भाइयों का व्याह इसी नगर में कराओ, जिससे हमलोग मंगल गावें।

सो०-कहहिं परस्पर नारि, बारि विलोचन पुलक तन।
सषि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥

जनकपुर की स्त्रियाँ आनन्द से पुलकित हो गयी हैं, उनकी आँखें जल से भर गयीं हैं, वे आपस में कहती हैं कि सखी, शिवजी सब पूरा करेंगे क्योंकि दोनों राजा जनक और दशरथ पुण्यात्मा हैं।

एहि विधि सकल मनोरथ करहीं। आनंद उमगि उमगि उर भरहीं॥

इसी प्रकार की अभिलाषा लोग अपने अपने मनमें कर रहे हैं और आनन्द की उमंग से उनका हृदय भर रहा है।

जे नृप सीय स्वयंवर आये। देषि बंधु सब तिन्ह सुष पाये ॥
कहत राम जसु विसद विसाला। निज निज भवन गये महिपाला ॥
गये वीति कछु दिन एहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥

जो राजा सीता के स्वयम्बर में आये थे उन लोगों ने चारों भाइयों को देखकर सुख पाया। रामजी के उज्ज्वल और विशाल यश का वर्णन करते हुए वे सब राजा अपने अपने घर गये। पुरवासी और बाराती सभी आनन्दित थे, इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये।

(विवाह)

मंगल मूल लगन दिन आवा। हिम रितु अगहन मास सुहावा ॥

हेमन्त ऋतु में अगहन का सुहावना मास आया और उसमें मङ्गल का मूल लग्न का दिन भी आ गया।

ग्रह तिथि नषत जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥
पठइ दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥

ग्रह, तिथि, नक्षत्र, उत्तम योग, दिन और लग्न का ब्रह्मा ने अच्छी तरह विचार किया। ब्रह्मा ने वह जन्मपत्री नारद के हाथ भेजी और जनक के गणक—ज्योतिषियों ने भी गणना करके उसे ठीक बताया।

सनी सकल लोगन यह बाता। कहहि जोतिषी आहि बिधाता॥

इस बात को सुनकर सब लोग कहने लगे कि ये ज्योतिषी तो साक्षात् विधाता ही हैं।

दो०—धेनुधूलिबेला बिमल, सकल सुमंगल मूल॥
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल॥ ३०५॥

अनुकूल होनेवाले शकुनों को देखकर ब्राह्मणों ने राजा जनक से कहा कि विवाह के लिए गोधूलि का समय उत्तम है, वह सब प्रकार के उत्तम मंगलों का मूल है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय का दो घड़ी समय गोधूलि कहा जाता है। गोधूलि शब्द का ही धेनुधूलि बेला शब्द से बोध कवि ने यहाँ किया है।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारन काहा॥
सतानंद तब सचिव बोलाये। मंगल सकल साजि सब ल्याये॥
संष निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥
सुभग सुआसनि गावहिं गीता। करहिं बेदधुनि बिप्र पुनीता॥

नरनाथ जनकजी ने पुरोहित से कहा कि अब विलम्ब का कारण क्या है। शतानन्द ने सब सचिवों को बुलाया और वे मङ्गल की सब सामग्री सजाकर ले आये, शंख, निशाने, नगारे आदि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, मंगल कलश तथा और भी शुभ सामग्रियाँ सजायी गयीं। सुआसि-

नियाँ (स्त्रियाँ) सुन्दर गीत गाने लगीं, ब्राह्मण गण पवित्र वेद ध्वनि करने लगे।

लेन चले सादर एहि भाँती। गये जहां जनवास बराती॥

पुरोहित आदि इस प्रकार बारात को लेने के लिए चले, जहाँ जनवास था वहाँ वे गये।

कोसलपति कर देषि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहिं सुरराजू॥

कोशलपति दशरथ के दल के सामने उन्हें इन्द्र भी छोटा लगता था।

भयउ समय अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ॥

पुरोहित ने राजा दशरथ से कहा, महाराज समय हो गया, अब पधारिये, महाराज के यह सुनने पर डंके की आवाज हुई अर्थात् चलने की तयारी होने लगी।

गुरुहि पूछि करि कुलविधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥

राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ से कुल की विधि पूछकर उसीके अनुसार चले, मुनि और साधुओं का समाज भी उनके साथ चला।

दो०-भाग्य विभव अवधेस कर, देषि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन्ह सहसमुष, जानि जनम निज बादि॥३०६।

राजा दशरथ के भाग्य को देखकर ब्रह्मा आदि देवता हजारों मुख से उनकी प्रशंसा करने लगे और अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगे।

सुरन्ह सुमंगल अवसर जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक विबुध बरूथा। चढ़े विमानन्हि नाना जूथा॥
प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले विलोकन राम बिआहू॥

मंगल का अवसर जानकर देवताओं ने निशान बजाया और वे पुष्प वृष्टि करने लगे। शिव ब्रह्मा आदि देवताओं का यूथ का यूथ विमानों पर चढ़ कर प्रेम से पुलकित शरीर और हृदय में उत्साहित होकर रामजी का विवाह देखने के लिए चला।

देखि जनक पुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघुलागे॥

देवता बड़े प्रेम से जनकपुर को देखते हैं, उन लोगों को जनकपुर के सामने अपना अपना लोक छोटा देख पड़ता है।

चितवहिं चकित विचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥

वे अद्भुत बने हुए शामियानो और मण्डपों को चकित होकर देखने लगे तथा अन्य अलौकिक विविध रचनाओं को भी देखने लगे।

नगर नारिनर रूपनिधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥

नगर के सुन्दर स्त्री पुरुषों को उन्होंने देखा, जो धर्मात्मा सुशील हैं और चतुर हैं।

तिन्हहिं देषि सब सुरसुरनारी। भये नषत जनु बिधु उजियारी॥

उनको देखकर सब देवता तथा देवताओं की स्त्रियाँ, चन्द्रमा के प्रकाश के सामने नक्षत्रों के समान हो गये। जनकपुर के स्त्रीपुरुषों की शोभा के सामने उनकी शोभा फीकी पड़ गयी।

विधिहिं भयो आचरज विसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देषी।

ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने अपनी सृष्टि जनकपुर में कहीं नहीं देखी।

दो०-सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुवीर बिवाहु॥ ३०७॥

शिवजी ने सब देवताओं को समझाया, उन्होंने कहा कि आश्चर्य में मत भूलो। धैर्य धरकर हृदय में विचारो कि यह सीता और राम का ब्याह है। इसमें आश्चर्य की बातों को देखकर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं।

जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूलनसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

इस संसार में जिनका नाम लेने से सब प्रकार के अमंगलों का मूल

नष्ट हो जाता है और चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं, कामारि शिव ने कहा कि वे ही सीताराम हैं।

एहि विधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे बरबसह चलावा॥

महादेवजी ने इसी प्रकार देवताओं को समझाया और अपने उत्तम बैल को—अपने वाहन को आगे बढ़ाया।

देवन्ह देषे दसरथ जाता। महामोदु मन पुलकित गाता॥

देवताओं ने जब दशरथ को जाते हुए देखा तो उनके मनमें बड़ा आनन्द हुआ, उनका शरीर पुलकित हो गया।

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुष सेवा॥

राजा दशरथ के साथ साधुओं का दल तथा ब्राह्मणों का दल था, मानो स्वयं सुख ही शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहा हो।

सोहत साथ सुभग सुतचारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥

सुन्दर चारों पुत्र उनके साथ ऐसे शोभते हैं मानों चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम आदि ने ही शरीर धारण किया हो।

मरकत कनकबरन बरजोरी। देषि सुरन्ह भइ प्रीति न थोरी॥

पन्ना और सुवर्ण के समान दो जोड़ी देख कर देवताओं को थोड़ी प्रसन्नता न हुई अर्थात् बहुत प्रसन्नता हुई।

पुनि रामहि बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

पुनः रामको देखकर वे मन ही मन प्रसन्न हुए और राजा की प्रशंसा करके उन देवताओं ने उनपर फूलों की वृष्टि की।

दो०-राम रूप नष सिष सुभग, बारहिं बार निहारि॥
पुलकगात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि॥३०८॥

नख से सिख तक रामजी का सुन्दर रूप बार बार देखकर शिव और पार्वती बहुत प्रसन्न हुए, उनका शरीर पुलकित हुआ, उनकी आंखों में जल भर आया।

केकिकंठदुति स्यामल अंगा। तडितविनिंदक वसन सुरंगा॥

मयूर के कण्ठ की द्युति के समान रामजी का श्याम अंग है और बिजुली को नीची दिखाने वाले रंग में वस्त्र रंगा हुआ है अर्थात् पीले रंग में रंगा हुआ है।

ब्याह विभूषन विविध वनाये। मंगलमय सब भांति सुहाये॥

ब्याह के लिए अनेक प्रकार के भूषण बनाये गये थे, जो मङ्गलमय थे तथा सब प्रकार से सुन्दर थे।

सरद विमल विधु बदन सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन॥

शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान उनका सुन्दर मुख है और उनकी आँखें नव विकसित कमल को लज्जित करनेवाली हैं।

सकल अलौकिक सुन्दरताई। कहि न जाइ मनहीं मनभाई॥

रामजी का सभी सौन्दर्य अलौकिक है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, केवल मनही मन उसका अनुभव किया जा सकता है।

वंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥
राज कुअँर वरवाजि देषावहिं। वंस प्रसंसक विरद सुनावहिं॥

उनके साथ में सुन्दर भाई शोभित हो रहे हैं, जो चञ्चल घोड़ों को नचाते हुए जाते हैं। राजकुमार अच्छी जातवाले घोड़ों को दिखाते हैं और वंश की प्रशंसा करनेवाले चारण भाट आदि उनका यश गाते हैं।

जेहि तुरंग पर राम विराजे। गति विलोकि षगनायकु लाजे॥

जिस घोड़े पर रामचन्द्र बैठे थे उसकी चाल देख कर गरुड़ भी लज्जित होते थे।

कहि न जाइ सब भांति सुहावा। वाजिवेषु जनु काम वनावा॥

वह घोड़ा सब प्रकार से सुन्दर था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, मालूम होता था मानों कामदेव ने ही घोड़े का रूप धारण किया है।

छं०—जनु बाजि वेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।

आपने वय बल रूप गुनगति सकल भुवन विमोहई ॥

मानो स्वयं कामदेव रामचन्द्रजी के लिए घोड़े का रूप बना है और वह बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। अपनी उमर, बल, रूप, गुण और चाल से वह समस्त भुवन को मोहित करता है।

जग मगत जीन जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे ॥

उस घोड़े परका जड़ाऊ जीन, जिसमें, आवदार मोती, मणि और माणिक आदि लगे हैं, वह अपनी जोति से जगमगा रहा है।

किंकिन ललाम लगाम ललित विलोकि सुरनर मुनि ठगे ॥

मनोहर लगाम जिसमें छोटे छोटे घूंघरू लगे हैं, उसको देखकर देवता मनुष्य और मुनि भी ठगे जाते थे, वे भी मोहित हो जाते थे।

दो०-प्रभुमन महि लयलीन मनु, चलत बाजि छवि पाव।
भूषित उडगन तडित घन, जनु बर बरहि नचाव ॥३०९॥

प्रभु रामजी के मन में लीन होकर अर्थात् जैसी उनकी इच्छा है वैसा ही वह घोड़ा चलता है और चलने के समय वह शोभित होता है। मानो वह नक्षत्र और विद्युत से भूषित मेघ हो और श्रेष्ठ वर रामचन्द्रजी को नचा रहा हो।

जेहि वर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदहु न बरनइ पारा ॥
संकर राम रूप अनुरागे। नयन-पंचदस अति प्रियलागे ॥

जिस उत्तम घोड़े पर रामचन्द्रजी सवार थे उसका वर्णन शारदा भी नहीं कर सकती। शिवजी रामके रूप देखने में मग्न थे; अतएव इस समय उन्हें अपनी पन्द्रह आँखें बड़ी ही प्रिय लगीं। शिवजी के पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुख में तीन आँखें।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे ॥

हरि विष्णु ने जब प्रेम के साथ राम को देखा तब वे लक्ष्मीपति लक्ष्मी के साथ मोहित हो गये।

निरषि राम छवि विधि हरषाने। आठै नयन जानि पछताने॥

रामजी की शोभा देखकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए, और आठ ही आँखें हैं, यह जान कर वे पछताने लगे क्योंकि अधिक आँखों के होने से वे अधिक शोभा देख सकते थे।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि ते डेवढ़ सुलोचन लाहू॥

देवताओं के सेनापति कार्तिकेय के मन में बड़ा उत्साह था क्योंकि उन्हें ब्रह्मा से ड्योढ़ी आँखें थीं, कार्तिकेयके ६ मुख हैं, इसलिए उनकी आँखें बारह हैं।

रामहिं चितव सुरेस सुजाना। गौतम साप परम हित माना॥
देव सकल सुर पतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥

चतुर इन्द्र ने रामकी ओर देखा और गौतम के शाप को अपने लिए उन्होंने हित ही समझा। गौतम के शाप से इन्द्र को हजार आँखें हो गयी थीं, सब देवता इन्द्र से ईर्ष्या करने लगे, वे इन्द्र से डाह करने लगे और कहने लगे कि इन्द्र के समान आज कोई नहीं है।

मुदित देवगन रामहिं देषी। नृप समाज दुहुँ हरष विसेषी॥

रामको देखकर देवता प्रसन्न हुए और दोनों राजाओं के दल में अधिक आनन्द हुआ।

छं० अति हरष राज समाजु दुहुँ दिसि दुदुंभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुल मनी॥
एहि भांति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥

दोनों ओर राजाओं के दल में बड़ा आनन्द था, दोनों ओर खूब दुन्दुभी बजती थी, देवता प्रसन्न होकर पुष्प की वृष्टि करते हैं और रघुकुलमणि रामजी का जय जयकार करते हैं। बारात आरही है; यह जानकर खूब

बाजे बजने लगे। सुवासिनी-सधवा स्त्रियों को बुलाकर रानी परिछन करने के लिए मंगल सामग्री सजाने लगीं।

दो० सजि आरती अनेक विधि, मंगल सकल सवाँरि।
चली मुदित परिछन करन, गज गामिनि बरनारि ।३१०॥

गज गामिनी सुन्दर स्त्रियाँ आरती सजा कर तथा अनेक प्रकार की मंगल सामग्रियों को लेकर प्रसन्नतापूर्वक परिछन करने के लिए चलीं।

विधुबदनी सब सबमृगलोचनि। सबनिजतनछबिरतिमदमोचनि॥
पहिरे बरन बरन बरचीरा। सकल विभूषन सजे सरीरा॥
सकल सुमंगल अंग बनाए। करहिं गान कल कंठ लजाये॥

वे सब स्त्रियाँ चन्द्रमुखी मृगनयनी तथा अपने शरीर की शोभा से रति को लजानेवाली थीं। रंग बिरंग के वे वस्त्र पहने हुए थीं और सब प्रकार से अपना शरीर सवाँरे हुए थीं। उन लोगों ने सब प्रकार से अपने अंग को मंगलमय बनाया था, वे गा रही थीं, उनका गान सुनकर कोयल भी लज्जित होती थी।

कंकंन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि कामगज लाजहिं॥

घुंघुरु वाले कंकण बज रहे हैं और नूपुर (पायजेब) बज रही हैं, उनकी गति देखकर कामदेव रूपी हाथी लज्जित हो जाता है।

बाजहिं बाजन विविध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगल चारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचिसहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥

अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं, आकाश और नगर में माङ्गलिक व्यवहार हो रहे इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती आदि जो २ देवताओं की स्त्रियाँ पवित्र थीं तथा स्वाभाविक सुन्दर थीं वे सब छल पूर्वक साधारण स्त्रियों का उत्तम वेश बनाकर रानियों के साथ जाकर मिल गयीं, उनके साथ वे भी परिछन में शामिल हुईं।

करहिं गान कल मंगल बानी। हरष विवस सब काहु न जानी॥

और मधुर गम्भीर तथा कोमल वाणी से वे गान करने लगीं, पर उस समय सभी आनन्द से विभोर थे, इसलिए किसी ने भी उन्हें पहचान न पाया।

छं० कोजान केहि आनंदवस सब ब्रह्म वर परिछन चलीं।
कल गान मधुर निसार बरपहिं सुमन सुर सोभा भलीं॥

कौन किस को पहचानता है, सभी आनन्द परवश होकर ब्रह्मस्वरूप वरको परिछने के लिए चलीं। मधुर गान हो रहा था, बाजे बज रहे थे और देवता गण पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे।

आनंदकंद विलोकि दूलह सकल हिय हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई।

आनन्द के मूल दूलह को देखकर सभी अपने अपने मन में प्रसन्न हुईं। उनकी कमलरूपी आँखों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया।

दो० जो सुष भा सिय मातु मन, देषि राम वर वेष।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा सेष॥३११॥

वर रामजी के वेप को देखकर सीताजी की माता के मन में जो सुख हुआ, उस सुख को सौ कल्पों में भी हजारों शेप तथा शारदा नहीं कह सकते।

नयन नीर हठि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी॥

मङ्गलका समय है, यह बात जानकर आँखों के जलको उन लोगों ने बलपूर्वक रोका और प्रसन्न मन होकर वे रानियाँ वर परिछन के लिए चलीं।

वेद विहित अरुकुल आचारू। कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू॥
पंच सबद सुनि मंगल नाना। पट पाँवडे परहिं विधिनाना॥

वेदों में जो कहा गया है और कुल का जो आचार है, वह सब विधि

उन लोगों ने भली भाँति कीं। उस समय मंगलमय गान वाद्य हो रहा था, रास्ते में वस्त्र बिछाया गया था।

करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गवन मंडप तव कीन्हा॥

आरती करके उन लोगों ने अर्घ दिया, तब रामचन्द्रजी ने मण्डप में गमन किया।

दसरथ सहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे॥
समय समय सुर वरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

सब समाज राजा दशरथ के साथ शोभित होने लगा, उसे देखकर लोकपाल भी लज्जित होते थे। देवता समम समय पर पुष्प वृष्टि कर रहे थे और ब्राह्मण शान्ति पाठ पढ़ रहे थे।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनइ न कोई॥
एहि विधि राम मंडपहिं आये। अरघु देइ आसन वैठाये

आकाश और नगर में इतना कोलाहल हुआ कि अपनी बात या दूसरे की बात किसी को भी सुनायी नहीं पड़ती थी। इस प्रकार रामचन्द्रजी मण्डप में लाये गये और अर्घ देकर वे आसन पर बैठाये गये।

छं० बैठारि आसन आरती करि निरखि वरु सुख पावहीं।
मनि वसन भूषन भूरि वारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुर वर विप्रवेष बनाइ कौतुक देषहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेषहीं॥

आसन पर बैठाकर, आरती करके और उनको देखकर रानियाँ बहुत आनन्दित होती हैं, मणि, वस्त्र और भूषण बार बार न्योछावर करती हैं, स्त्रियाँ मंगल गाती हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मण का वेष बनाकर तमाशा देखते हैं। रघुकुल कमल के सूर्य रामचन्द्र की शोभा देखकर अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

दो० नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरषु न हृदय समाइ ॥३१२॥

नाई, बारी, भाट, नट आदि राम की न्योछावर पाकर तथा प्रसन्न होकर सिर नवाकर आशीर्वाद देते हैं। वे इतने प्रसन्न हैं कि प्रसन्नता उनके हृदय में नहीं समाती।

मिले जनकु दसरथ अति प्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती॥
मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा षोजि षोजि कवि लाजे॥

वैदिक और लौकिक सब व्यवहारों को करके जनक और दशरथ बड़े प्रेम से मिले। मिलने के समय इन दोनों महाराजाओं की जो शोभा हुई उसके लिए उपमा ढूँढ़ते २ कवियों को लज्जित होना पड़ा।

लीन कतहुं हारि हिय मानी। इन्ह सम पइ उपमा उर आनी॥
समधी देषि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥

जब कवियों को कहीं उपमा न मिली तब इन्होंने अपने मन में हार मान ली और अपने समान ये आप ही हैं; यही उपमा उन लोगों ने मन में निश्चित की।

जगु विरंचि उपजावा जबते। देषे सुने व्याह बहु तबते॥
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

जब से ब्रह्मा ने यह सृष्टि रची है तब से अनेक व्याह हम लोगों ने देखे और सुनें। सब प्रकार की समानता, साज समान आदि में भी समानता तथा समधी में भी समानता हमने आज ही देखी है।

देवगिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची॥

ऐसी सुन्दर और सच्ची देववाणी सुनकर दोनों ओर, तथा दशरथ और जनक की ओर बड़ा आनन्द उत्पन्न हुआ।

देत पाँवड़े अरघु सुहाये। सादर जनकु मंडपहिं ल्याये॥

स्वयं जनक भी रास्ता बतलाते हुए और अर्घ देते हुए आदर पूर्वक मण्डप में ले आये।

छं०- मंडप विलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे॥

मण्डप की अद्भुत रचना और सौन्दर्य देखकर मुनियों का भी मन हाथ से जाता रहता था।

निजपानि जनक सुजान सब कहँ आनि सिंहासन धरे।

चतुर जनकजी ने सब को अपने हाथों से लिवा लाकर सिंहासनों पर बैठाया।

कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आसिष लही।
कौसिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तौं न परइ कही।

जनकजी ने कुलपूज्य के समान वसिठजी की पूजा की और प्रार्थना की तथा वसिठजी से आशीर्वाद पाया। विश्वामित्र जी की पूजा उन्होंने बड़े प्रेम से की, उस प्रेम के ढंग के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

दो० वामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिये दिव्य आसन सबहि, सबसन लही असीस॥३१३॥

राजा जनक ने प्रसन्नतापूर्वक वामदेव आदि ऋषियों की पूजा की और सब को उन्होंने उत्तम आसन दिये, तथा उन लोगों से आशीर्वाद पाया।

बहुरि कीन्ह कोशल पति पूजा। जानि ईससम भाव न दूजा॥

पुनः उन्होंने राजा दशरथ की पूजा की, राजा दशरथ को ईश्वर समझ कर दूसरा भाव न रखकर उन्होंने पूजा की।

कीन्हि जोरि कर विनय बड़ाई। कहि निज भाग्य विभव बहुताई॥

हाथ जोड़कर उन्होंने विनयपूर्वक दशरथ की प्रशंसा की तथा अपने भाग्य का महत्व बतलाया।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥

राजा जनक ने समधी के समान ही सब बरातियों की पूजा की।

आसन उचित दिये सब काहू । कहउँ कहा मुख एक उछाहू ॥

सभी को उन्होंने उचित आसन दिये, एक मुख से मैं उस समय का उत्साह कहाँ तक कह सकता हूँ ।

सकल बरात जनक सनमानी । दान मान विनती बरबानी ॥

दान, मान, विनय तथा उत्तम वाणी द्वारा जनक ने सब बारात का सम्मान किया ।

विधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ । जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ ॥
कपट विप्रवर वेषु बनाये । कौतुक देखहिं अति सचुपाये ॥

ब्रह्मा, हरि, शिव, दिक्पाल, सूर्य तथा और भी देवता जो रामचन्द्र के प्रभाव को जानते हैं वे छल से ब्राह्मण का वेष बनाकर चुपचाप आकर राम विवाह का तमाशा देखते थे ।

पूजे जनक देव सम जाने । दिये सुआसन बिनु पहिचाने ॥

जनक ने उनकी पूजा देवता के समान की, पर उन्होंने यह भी जाना कि ये देवता छल से आये हैं ।

छं०—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई ।
आनंद कंद विलोकि दूलह उभय दिसि आनंद भई ॥

उस समय कोई किसी को पहचानता भी कैसे सभी तो सुध बुध खोये हुए थे । आनन्द के मूल दूलह को देखकर दोनों ओर आनन्द हो रहा था ।

सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये ।

पर चतुर रामजी ने देवताओं को पहचान लिया और उन्होंने सब देवताओं को मानसिक आसन दिया ।

अवलोकि सील सुभाउ प्रभु को विबुध मन प्रमुदित भये ।

प्रभु रामजी के शील तथा स्वभाव को देखकर देवगण मन ही मन प्रसन्न हुए ।

दो०—रामचंद्र मुषचंद्र छवि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोद न थोर ॥३१४॥

सभी के लोचन रूपी सुन्दर चकोर रामचन्द्र के मुख रूपी चन्द्रमा की छवि का आदरपूर्वक पान करते हैं, रामजी के प्रति प्रेम तथा उनके मन में आनन्द कम न था।

समउ विलोकि वसिष्ठ बुलाये। सादर सतानंद सुनि आये॥

समय आया जानकर वसिष्ठ ने आदरपूर्वक शतानन्द को बुलाया और वे वसिष्ठ की आज्ञा सुनते ही आये।

बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सषिन समेत सयानी॥

वशिष्ठ ने कहा, शीघ्रतापूर्वक जाकर अब कुमारी सीता को ले आओ, मुनि की आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले। पुरोहित की बात सुनकर चतुर सखियों के साथ रानी प्रसन्न हुईं।

विप्रवधू कुलवृद्ध बुलाई। करि कुल रीति सुमंगल गाई॥

ब्राह्मणों की स्त्रियाँ तथा कुल की वृद्धा स्त्रियों को बुलाकर कुल रीतियाँ कीं और मंगल गान कराया।

नारि वेष जे सुरवर वामा। सकल सुभाउ सुन्दरी स्यामा॥
तिनहिं देषि सुष पावहिं नारी। विनु पहिचानि प्रानते प्यारी॥
बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारदसम जानी॥

बड़े बड़े देवताओं की जो स्त्रियाँ नारी वेष धारण कर वहाँ आयो थीं; वे स्वभावतः सुन्दर थीं और श्यामा थीं। सोलह वर्ष की अवस्था वाली स्त्री को श्यामा कहते हैं। उनको देखकर जनकपुर की स्त्रियाँ सुखी होती थीं, यद्यपि उनसे परिचय नहीं था फिर भी वे उन्हें प्राणों से भी प्यारी थीं। लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती के समान जानकर रानी ने बार बार उनका सम्मान किया।

सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहिं चली लवाई॥

सीता का शृङ्गार करके तथा दल बाँध कर वे प्रसन्न होती हुईं सीता को लेकर मण्डप में चलीं।

छं०-चलि ल्याइ सीतहिं सषी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त सजे सुंदरी सब मत्तकुंजरगामिनी॥

सखियाँ आदरपूर्वक सीताजी को लेकर मण्डप में चलीं, वे स्त्रियाँ भी साथ चलीं जिन्होंने मङ्गल की सामग्रियाँ सजा रखी थीं, सभी स्त्रियाँ सोलह शृंगार किये हुए थीं और वे मत्तहाथी के समान चलने वाली थीं।

कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति बर बाजहीं॥

उनका मधुर गान सुनकर मुनि अपना ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेवका भी कोकिल लज्जित होता है। उनकी मंजीर नूपुर और कंकण के शब्द ताल का अनुसरण करते हैं।

दो०—सोहति बनिता बृंद महँ, सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना जन मध्य जनु, सुखमा तिय कमनीय॥३१५॥

स्वभाव सुन्दर सीताजी स्त्रियों के बीच में शोभ रही हैं, मानों शोभा रूपी स्त्रियों के मध्य में कमनीय परम शोभा ने स्त्री का रूप धारण किया हो।

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥
आवत देषि बरातिन सीता। रूप रासि सब भांति पुनीता॥

सीता की सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि वर्णन करनेवाले की बुद्धि थोड़ी है और सुन्दरता अधिक है। रूप की खान और सब प्रकार से पवित्र सीता को आती हुई बरातियों ने देखा।

सबहिं मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। देषि राम भये पूरनकामा॥

सभी ने मन ही मन सीता को प्रणाम किया और सीता को देखने से रामजी का मनोरथ पूरा हुआ।

हरषे दसरथ सुतन समेता। कहि न जाइ उर आनंद जेता॥

सीता को देखकर दशरथ अपने पुत्रों के साथ प्रसन्न हुए, उस समय उनके हृदय में जितना आनन्द हुआ वह कहा नहीं जा सकता।

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस सुनि मंगलमूला॥
गाननिसान कोलाहल भारी। प्रेम प्रमोद नगर नर नारी॥
एहि विधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥

प्रणाम करके देवताओं ने फूल बरसाये, मुनियों ने मंगल के मूल आशीर्वाद दिये। गाना बजाना आदि से बड़ा भारी कोलाहल हुआ, नगर के स्त्री पुरुष प्रसन्न हुए। इस प्रकार सीता जी मण्डप में आयीं और मुनिराज प्रसन्न होकर शान्ति पाठ करने लगे।

तेहि अवसर कह विधि व्यवहारू। दुहुँ कुल गुरु मिलि कीन्ह अचारू॥

उस समय के योग्य आचार व्यवहार दोनों कुल के गुरुओं ने मिलकर किये।

छं० आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगट पूजा लेहि देहि असीस अति सुष पावहीं॥

इस प्रकार कुलाचार के हो जाने पर ब्राह्मणों ने गुरु, गौरी और गणपति की पूजा कराई। देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर पूजा ली और आशीर्वाद दिये और इससे वे बड़े सुखी हुए।

मधु पर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समै मुनि मन महँ चहहिं।
भर कनक कोपर कलस सो सब लिये परिचारक रहहिं॥

मधुपर्क तथा और भी मङ्गल द्रव्य आये, उस समय मुनिगण जो अपने मन ही में चाहते थे, वह सब सोने के परात में तथा सोने के घड़ों में लिये परिचारक वहीं खड़े रहते थे।

कुलरीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर कियो।

सूर्य प्रेमपूर्वक कुलकी सब रीति बताते जाते थे; क्योंकि वे ही कुल देव हैं और उनका बताया आदरपूर्वक किया जाता है।

एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंहासन दियो॥

इस प्रकार देवताओं की पूजाकर सीता के लिए सुन्दर सिंहासन दिया गया।

सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लषि परइ।
मन बुद्धिवर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करइ॥

सीता और राम का परस्पर देखने के समय (विवाह की यह एक विधि है) जो प्रेम था उसे किसी ने भी न जान पाया। क्योंकि वह मन बुद्धि और वाणी के अगोचर था, फिर कोई कवि उसे कैसे कह सकता है।

दो० होम समय तनु धरि अनलु, अति सुष आहुतिलेहिं।
विप्र वेष धरि वेद सब कहि, बिवाह विधि देहिं॥३१६॥

होम के समय अग्नि ने प्रत्यक्ष शरीर धारण करके बड़ी प्रसन्नता से आहुति ग्रहण की और चारों वेदों ने ब्राह्मण का शरीर धारण करके विवाह की सब विधियाँ बतलायीं।

जनक पाट महिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बषानी॥

जनक की महारानी जगत् में प्रसिद्ध हैं, वे सीता की माता हैं, उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है।

सुजस सुकृत सुष सुदरताई। सब समेटि विधि रची बनाई॥

सुयश, सुख, पुण्य और सुन्दरता इन सब को एकत्रित करके ब्रह्मा ने उन्हें बहुत रच करके बनाया है।

समउ जानि मुनि बरन्ह बोलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई॥

समय जान कर मुनि श्रेष्ठों ने उन्हें बुलाया, मुनियों की आज्ञा सुनते ही सुवासिनी सधवा स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आयीं।

जनक वाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग वनी जनु मयना॥

राजा जनक के वाम भाग में उनकी महारानी सुनयना कैसी शोभती थीं जैसे हिमालय के साथ मयना—हिमालय की महारानी शोभती हैं।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥

सुवर्ण के घड़े और मणियों के सुन्दर परात-जिनमें पवित्र और सुगन्धित मङ्गल जल भरे थे।

निजकर मुदित राय अरुरानी। धरे राम के आगे आनी॥

प्रसन्नतापूर्वक राजा और रानी ने रामजी के आगे लाकर रखे।

पढ़हिं वेद मुनि मंगल वानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी॥

मङ्गल वाणी से ब्राह्मण वेद पाठ करने लगे और अवसर जानकर आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी।

वर विलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥

वर को देखकर जनक और उनकी महारानी बड़े प्रसन्न हुए, वे वरके पवित्र चरणों को धोने लगे।

छं० लागे पखारन्ह पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥

जब वे वरका चरण कमल धोने लगे तब आनन्द से उनका शरीर पुलकित हो गया, आकाश और नगर में होनेवाले गान; बाजाओं के शब्द और जय जयकार चारों ओर फैल गये।

जे पद सरोज मनोजअरि उरसर सदैव बिराजहीं।
जे सुकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलिमल भाजहीं॥

जो चरण कमल कामदेव के शत्रु शिवजी के हृदय में सदा वास करते हैं तथा पुण्य स्वरूप जिन चरणों के स्मरण करने से मन विमल होता है और कलिके समस्त पाप दूर होते हैं।

जे परसि मुनि वनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंद जिन्ह को संभु सिर सुचिता अवध सुर वरनई॥

जिन चरणों के स्पर्श करने से मुनि की स्त्री अहल्या का उद्धार हुआ, जो पापिनी थी, जिन चरणों की धूलि को शिवजी मस्तक पर धारण करते हैं और जिस धूलिको देवता पवित्रता की सीमा समझते हैं।

करि मधुप मुनि मन जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहहिं।
ते पद पखारत भाग्य भाजन जनक जय जय सब कहहिं॥

मुनिगण जिसके लिए अपने मनको भ्रमर बना कर तथा योगी जिसकी सेवा कर मन चाही गति पाते हैं, उन्हीं चरणों को भाग्यवान् जनक धो रहे हैं, यह देखकर सब लोग जय जयकार करते हैं।

वर कुँअरि करतल जोरि साखोच्चार दोउ कुल गुरु करहिं।
भयो पानि गहन विलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनँद भरहिं॥

वर और कुमारी दोनों का हाथ मिला कर दोनों कुल गुरु शाखोच्चार करते हैं। रामजी का पाणिग्रहण हो गया, विवाह हो गया, यह देखकर ब्रह्मा, देवता, मनुष्य और मुनि आनन्दित हुए।

सुष मूल दूलह देषि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो।
करि लोक वेद विधान कन्यादान नृप भूपन कियो॥

सुख के मूल वर रामचन्द्र को देखकर राजा और रानी का शरीर पुलकित हुआ और हृदय आनन्दित हुआ। नृपभूषण जनक ने लौकिक और वैदिक विधान करके कन्यादान किया।

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरिहिं श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी विश्व कल कीरति नई॥

हिमवान् ने जिस प्रकार शिव को पार्वती दी थी और समुद्र ने विष्णु को जिस प्रकार लक्ष्मी दी थी, उसी प्रकार जनक ने, रामजी को सीता समर्पित करके संसार में सुन्दर कीर्ति पायी।

क्यों करहिं विनय विदेह किये विदेह मूरति साँवरी।

विदेह राजा जनक रामजी की विनय कैसे करें क्योंकि उनके साँवली मूर्ति ने जनक को विदेह कर दिया था, रामजी को देखकर वे विभोर हो गये थे।

करि होम विधिवत गाँठि जोरि होन लागी भाँवरी॥

तब विधिपूर्वक होम करके, वरकन्या का गठबन्धन करके, भाँवर (सप्तपदी) होने लगीं।

दो० जय धुनि बंदी बेद धुनि, मंगल गान निसान।
सुनि हरषहि बरषहिं बिबुध, सुर तरु सुमन सुजान॥३१७॥

जयध्वनि, बन्दी और वेद की ध्वनि तथा मंगल गान होने लगे, बाजे बजने लगे, जिसे सुनकर देवता प्रसन्न हुए और कल्पवृक्ष के पुष्प चतुर देवता बरसाने लगे।

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभ सब सादर लेहीं॥

कुमार और कुमारी सुन्दर भाँवर दे रहे हैं और सब लोग आदरपूर्वक नयन का लाभ ले रहे हैं। इस सुन्दरी जोड़ी को देखकर सभी अपनी आँखों को तृप्त करते हैं।

जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥

इस सुन्दर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता, इस जोड़ी के लिए जो कुछ उपमा दी जाय वह सब थोड़ी होगी।

राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहु मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिवाह अनूपा॥

राम और सीता का प्रतिबिम्ब मणि के खम्भों में प्रतिबिम्बित होकर जगमगा रहा है। मालुम पड़ता है कि कामदेव और रति अनेक रूपधर कर अनुपम रामजी का ब्याह देखने आये हों।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

उन्हें रामजी को देखने की उत्कण्ठा है, पर सब के सामने आने में उन्हें सङ्कोच भी होता है, इसलिए कभी वे प्रकट होते हैं और कभी छिप जाते हैं। इसी प्रकार वे बार बार करते हैं। रामजी और सीता जिधर जाते हैं उधर के खम्भे में उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिधर से हट जाते हैं उधर के खम्भे में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, इसी बात को कवि ने उपर लिखे ढंग से उत्प्रेक्षा की है।

भये मगन सब देषनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥

सब देखनेवाले इस शोभा को देखकर मगन हो गये और जनक के समान वे भी अपने को भूल गये।

राम सिया सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जात बिधि केहीं॥

रामचन्द्रजी सीताजी के मस्तक में सिन्दूर दान करते हैं; उस समय की शोभा किस प्रकार कही जाय।

अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहिं भूंष अहि लोभ अमीके॥

उस समय मालूम हुआ कि सर्प कमल में लाल पराग भरकर चन्द्रमा को भूषित करता है और उसे अमृत का लोभ है। रामजी की बाँह सर्प के समान, उनका हाथ कमल सिन्दूर लाल पराग और सीताजी का मुख चन्द्रमा। उस सर्प को मानो चन्द्रमा के अमृत का लोभ है।

बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन। बर दुलहिन बैठे एक आसन॥

पुनः वसिष्ठजी ने आज्ञा दी जिससे वर और दुलहिन दोनों एक आसन पर बैठे।

छं०-बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देषि अपने सुकृत सुर तरु फल नये॥

सुन्दर आसन पर राम और जानकी को बैठे देख राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए, उनका शरीर पुलकित हो गया और वे अपने पुण्य रूपी कल्पवृक्ष के नये फल को बार बार देखने लगे।

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यह मंगल महा॥

समस्त भुवनों में उत्साह फैल गया, सब ने कहा कि राम का व्याह हो गया। इस महामङ्गल के वर्णन करने के लिए भला एक जीभ कैसे समर्थ हो सकती है?

तब जनक पाइ वसिष्ठ आयसु व्याह साज सँवारि के।
मांडवी स्रुति कीरति उर्मिला कुअँरि लइ हंकारि के॥

तब जनक ने वसिष्ठ की आज्ञा पाकर और व्याह की सब सामग्रियों को सजवाकर, माण्डवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला नाम की कन्याओं को बुलवाया।

कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो व्याहि नृप भरतहिं दई॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदर सिरोमनि जानि कै।
सो जनक दीन्ही व्याहि लषनहिं सकल विधि सनमानि कै॥
जेहि नाम स्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुषि सब गुनआगरी।
सोइ दइ रिपुसूदनहिं भूपति रूप सील उजागरी॥

गुण सुख शील शोभा की खान कुशध्वज की कन्या का व्याह सब रीति भाँति के अनुसार राजा ने भरत के साथ कर दिया। जानकी की छोटी बहिन उर्मिला सब सुन्दरियों की शिरोमणि है, यह जान कर उसे राजा ने लक्ष्मण को सब प्रकार से सम्मानित करके उससे व्याह दिया। जिसका नाम श्रुतकीर्ति था, जो सुमुखी और सुनयनी थी, गुणवती थी, राजा ने उसे शत्रुघ्न को दिया। जो रूपवती और शीलवती थी।

अनुरूप बर दुलहिन परस पर लषि सकुचि हिय हरषहीं।

सभी वर और दुलहिन अनुरूप हैं, वे आपस में देखकर लजाते हैं और मन ही मन प्रसन्न भी होते हैं।

सब मुदित सुंदरता सराहहिँ सुमन सुरजन बरषहीं।
सुंदरी सुंदरबरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं।

सभी प्रसन्न होकर इनकी सुन्दरता की प्रशंसा करते हैं, देवगण पुष्पों की वृष्टि करते हैं, सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर वरों के साथ एक ही मण्डप में बैठे ऐसे शोभती थीं मानो जीव के हृदय में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया ये चारों अवस्थाएँ अपने स्वामियों के साथ शोभ रही हैं।

दो०-मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ॥३२८॥

बहुओं के साथ अपने चारों पुत्रों को देखकर अवधपति राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए, मानो राजाओं में श्रेष्ठ दशरथ ने क्रियाओं के साथ चारो फल पाये हों। श्रद्धा, भक्ति, तपस्या और सेवा ये चार क्रियाएँ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार फल हैं।

जसि रघुबीर ब्याह विधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी॥

जिस प्रकार हमने रामचन्द्र के ब्याह का वर्णन किया है; उसी प्रकार, उसी विधि से राजा ने अन्य कुमारों के भी ब्याह किये।

कहि न जाइ कुछ दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडप पूरी॥
कंबल बसन विचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहुमोल न थोरे॥

राजा जनक ने इतना अधिक दहेज दिया जिसका कुछ कहा नहीं जा सकता, सुवर्ण और मणियों से मण्डप भर गया। कँबल (ऊनी दुशाले आदि) वस्त्र तथा उत्तम रेशमी वस्त्र भाँति भाँति के दिये जिनका दाम थोड़ा नहीं था, अर्थात् जो बहुमूल्य थे।

गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहासी॥

हाथी, रथ, घोड़ा, दास, दासी तथा सजी गौ जो काम धनु के समान थीं राजा जनक ने दीं।

वस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुख माने॥

इसी प्रकार अनेक वस्तु राजा ने दीं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती, वे कह कर बतलायी नहीं जा सकतीं; जिन लोगों ने देखी हैं; वे ही जानते हैं कि वे चीजें कितनी थीं। उन वस्तुओं को देखकर लोकपालों को बड़ा आश्चर्य हुआ, राजा दशरथ ने प्रसन्नतापूर्वक सब ले लिए।

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासहिं आवा॥

राजा दशरथ ने याचकों को वह सब दे दिया, जिसको जो अच्छा लगा और जो बचा वह जनवासे आया।

तब कर जोरि जनक मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥

तब हाथ जोड़कर तथा सब बारातियों का सम्मानकर राजा जनक मृदु वाणी बोले।

छं०-सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महा मुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लगाइ कै॥

आदर, दान, विनय तथा प्रशंसा के द्वारा सब बारात का सम्मान करके बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने मुनियों को प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक पूजा की।

सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये॥

तब शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर सब से वे कहने लगे कि, देवता और सज्जन मन का भाव देखते हैं, समुद्र की प्रसन्नता क्या एक अञ्जलि जल देने से हो सकती है।

करजोरि जनक बहोरि बन्धु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बैन सान सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब विधि भये।
यह राज साज समेत सेवक जानिबी बिनु गथ लये॥

पुनः राजा जनक अपने भाइयों के साथ हाथ जोड़कर राजा दशरथ से स्वाभाविक शील और स्नेहसना वचन बोले। महाराज, आप के संबन्ध से अब हम सब प्रकार से बड़े हुए, आप मुझे इस समस्त राज साज के साथ अपना बिना दाम का दास समझें।

ए दारिका परिचारिका करि पालवी करुनामई।

दासी समझकर इन दयनीय कन्याओं का पालन कीजिएगा।

अपराध छमिबो बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यो कई॥

मैंने आप को यहाँ बुलाने की बहुत बड़ी धृष्टता की है, इस अपराध को आप क्षमा करें।

पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि समधी किये।
कहि जात नहिं बिनती परस्पर प्रेमपरिपूरन हिये॥

पुनः भानुकुलभूषण राजा दशरथ ने भी अपने समधि को सब प्रकार के सम्मान का पात्र बनाया, दशरथजी ने भी जनक जी का सम्मान किया। प्रेम से परिपूर्ण हृदयवाले उन दोनों समधियों के परस्पर विनय का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता।

वृंदारकागन सुमन बरषहिं राउ जनवासहिं चले।
दुंदुभी जय धुनि वेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले॥

जब राजा जनक जनवासे चले तब देवता पुष्पवृष्टि करने लगे, दुन्दुभि बजने लगी, जयध्वनि और वेद ध्वनि होने लगी इस प्रकार आकाश में और नगर में बड़ा ही कौतुक हुआ।

तब सखी मंगलगान करत मुनीश आयसु पाइ के।
दूलह दुलहिनिन्हि सहित सुंदर चली कोहबर ल्याइ के॥

तब मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर सब सखियाँ मङ्गलगान करती हुई वर और दुलहिनियों को कोहबर में ले चलीं।

दो०-पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचित मन सकुचैन।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ॥ ३१९ ॥

सीता बारबार राम की ओर देखती हैं पर वे लज्जित हो जाती हैं, किन्तु उनका मन नहीं लजाता, प्रेम के प्यासे नैन सुन्दर मछलियों की शोभा को चुराते हैं।

स्याम शरीर सुभाव सुहावन। सोभा कोटि-मनोजलजावन ॥
जावक-जुत पद कमल सुहाये। मुनिमनमधुप रहत जिन्हछाये ॥

रामजी का शरीर श्याम है, वह स्वभावतः सुन्दर है, उसकी शोभा से करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं। जिन चरणों पर मुनियों के मन भ्रमर होकर लगे रहते हैं, वे ही चरण महावर के लगाने से बड़े ही सुन्दर मालूम होते थे।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बालरवि दामिनि जोती ॥

पवित्र और सुन्दर उनकी धोती पीली है, जो उदय होनेवाले सूर्य तथा विद्युत की शोभा को हरण करती है अर्थात् उनके समान शोभित होती है।

कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥

सुन्दर करधनी में घुंघरू लगे हैं, विशाल बाहु में सुन्दर आभूषण है।

पीत जनेऊ अति छबि देई। कर मुद्रिका चोरि चित लेई ॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत भूषन उर राजे ॥

रामजी का पीला यज्ञोपवीत बड़ा सुन्दर मालूम होता है और उनके हाथ की अंगूठी मन को चुरा लेती थी। वे ब्याह की सब सामग्रियों से सजे हुए हैं; बड़े सुन्दर मालूम होते हैं, उनके विशाल वक्षस्थल पर भूषण शोभित हो रहा है।

पिअर उपरना काँखा-सोती। दुहुं आचरन्हि लगे मनि मोती ॥

कन्धे से बगल की ओर लटका पीला उपर्णा है और उसके दोनों छोरों पर मोती टके हुए हैं।

नयन कमल कल कुंडल काना। बदन सकल सौंदर्ज निधाना॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगल मय मुकुता मनि गाथे॥

उनके नेत्र कमल के समान हैं, कानों में सुन्दर कुण्डल हैं और उनका मुख सब सुन्दरता की खान है। सुन्दर भौंहे हैं और मनोहर नाक है, मस्तक पर तिलक है जो मानों सौन्दर्य की खान है। रामजी के मस्तक पर मौर शोभ रही है, जिसमें माङ्गलिक मोति और मणि लगे हुए हैं।

छं०-गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुर सुंदरी वरहिं विलोकि सब तृन तोरहीं॥

उनकी मौर में हीरे लगे हुए हैं, उनके सुन्दर अंग सबों के चित चुराते हैं। नगर की स्त्रियाँ तथा देवता की स्त्रियाँ सब वर को देख कर तृण तोड़ती हैं। कोई सुन्दर चीज देखने पर नजर न लगने के लिए तृण तोड़ने की स्त्रियों की चाल है।

मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन वरिसहिं सूत मागध वंदि सुजस सुनावहीं॥
कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्हि सुष पाइ के।
अति प्रीति लौकिकि रीति लागी करन मंगल गाय के॥

वे मणि वस्त्र तथा भूषण रामजी पर न्योछावर करती हैं, उनकी आरती उतारती हैं तथा मंगल गाती हैं। देवता पुष्प वृष्टि करते हैं, सूत, मागध और वन्दी गुणगान करते हैं। सुख अनुभव करती हुई सधवा स्त्रियाँ कुमार और कुमारियों को कोहबर में ले आईं, कुमार और कुमारी का अविवाहित अर्थ यहाँ न समझना चाहिए किन्तु बालक। बड़े प्रेम के साथ मंगल गान करके वे लौकिक रीति करने लगीं।

लहकौरि गौरि सिषाव रामहिं सीय सन सारद कहहिँ।
रनिवासु हास विलास रस बस जन्म को फल सब लहहिँ॥

पार्वतीजी रामजी को लहकौर की रीति सिखाती हैं। (दही गुड़ मुंह में देने की एक रीति) और सरस्वती सीता को सिखाती हैं, समूचा रनिवास हँसी दिल्लगी से अपने जन्म को सार्थक करने लगा।

निज पानिमनिमहुँ देषि प्रतिमूरत सुरूप-निधान की।
चालति न भुजबल्ली विलोकनि विरहभय बस जानकी॥

जानकी अपने हाथ की मणियों में रामचन्द्रजी का प्रतिविम्ब देखकर अपना हाथ हिलाती डुलाती नहीं, क्योंकि हाथ हिलाने से प्रतिविम्ब के हटजाने से वियोग का भय है।

कौतुकविनोद प्रमोद प्रेम न जाइ कहि जानहि अली।
वर कुअँरि सुंदर सकल सषी लिवाइ जनवासहिं चली॥

मस समय कितना विनोद हुआ, कितना आमोद प्रमोद हुआ, यह कहा नहीं जा सकता, केवल सखियाँ ही इसे जानती हैं। वर और दुलहिन को लेकर सब सखियाँ जनवासे में गयीं।

तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँद महा।
चिरजिअहु जोरी चारु चारो मुदित मन सबही कहा॥
जोगिंद्र सिद्ध मुनीस देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी।
चले हरषि वरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी॥

उस समय चारों ओर से आशीर्वाद सुनायी पड़ता था, नगर और आकाश में बड़ा आनन्द था। सब लोग प्रसन्न होकर यही कहते थे कि यह चारों जोड़ी चिरजीवी हो। योगी, सिद्ध, मुनीश तथा देवता रामचन्द्र को देखकर दुन्दुभी बजाने लगे। वे प्रसन्न होकर, पुष्पों की वृष्टि करके, जय जय करते हुए अपने अपने लोकों में गये।

दो०-सहित वधूटिन्ह कुअँर सब, तब आये पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥३२०॥

तब नयी वहुओं के साथ चारो कुँअर अपने पिता के पास आये; उस समय मानो शोभा आनन्द तथा मंगल से जनवास भर गया।

पुनि जेवनार भई बहु भांती। पठये जनक बोलाइ बराती॥
परत पाँवडे बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन किय भूपा॥

जनक ने बारातियों को बुलवाया, और अनेक प्रकार का जेवनार हुआ, मार्ग में उत्तम वस्त्र बिछे हुए थे राजा दशरथ पुत्रों के साथ गये।

सादर सब के पाय पखारे। जथाजोग पीढ़न बैठारे॥

जनकजी ने आदरपूर्वक सब के पैर धोये और योग्यता के अनुसार सब को पीढ़ों पर बैठाया।

धोये जनक अवधपति चरना। सील सनेह जाइ नहिं बरना॥

जनक ने राजा दशरथ के चरण धोये, जिस शील तथा स्नेह से उन्होंने जनक के चरण धोये इसका वर्णन नहीं हो सकता।

बहुरि रामपद-पंकज धोये। जे हर हृदयकमल महँ गोये॥

पुनः उन्होंने रामजी के उन चरण कमलों को धोए जिन्हें शिवजी ने अपने हृदय कमल में छिपा रक्खे हैं।

तीनउ भाइ राम सम जानी। धोये चरन जनक निजपानी॥
आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे॥

भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन तीनों भाइयों को भी राम के समान जान कर जनक ने अपने हाथ से उनके चरण धोये। राजा ने सबको उचित आसन दिये और तब उन्होंने सब सूपकारों—रसोई बनाने तथा परोसने वालों को बुलाया।

सादर लगे परन पनवारे। कनककील मनि पान सँवारे॥

बड़े आदर के साथ पत्तलें पड़ने लगीं, वे मणियों के पत्ते तथा सोने के कीलों से सजायी गयी थीं।

दो०–सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वाद पुनीत।
छन महँ सब के परुसिगे, चतुर सुआर विनीत॥३२१॥

चतुर और विनयी परसनेवाले सब एक क्षण में ही दाल, भात सुगन्धित घी सब के आगे परोस गये, ये सब चीज़ें सुन्दर, पवित्र तथा उत्तम स्वादवाली थीं।

पंचकवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥

पंचवलि करके सब लोग भोजन करने लगे और गालि सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए।

भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥

भोजन करनेवालों के आगे अनेक प्रकार के पकवान रखे गये, वे अमृत के समान थे, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

परसन लगे सुआर सुजाना। विंजन विविध नाम को जाना॥
चारि भाँति भोजनविधि गाई। एक एक विधि बरनि न जाई॥

चतुर परसनेवाले अनेक प्रकार के व्यंजन परोसने लगे, भला उनका नाम कोई कैसे बतला सकता है। चार प्रकार का भोजन बतलाया गया है, पर उनमें के एक प्रकार का भी—जो यहाँ बना है वर्णन नहीं हो सकता।

छरस रुचिर विंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥

अनेक प्रकार के और षड्रस के व्यंजन बने थे, एक एक रस में भी अनेक प्रकार के बने थे।

जेंवत देहिं मधुरधुनि गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
एहि विधि सब ही भोजन कीन्हा। आदर सहित आचमन दीन्हा॥

भोजन के समय मधुर स्वर से स्त्री और पुरुषों के नाम ले लेकर

गाली दी जाने लगीं, समय के कारण वह गाली भी भली मालूम होती थीं, गालियों को सुनकर राजा अपने साथियों के साथ हँसने लगे। इस प्रकार सबने भोजन किया और आदरपूर्वक सब को हाथ मुँह धोने के लिए जल दिया गया।

दो०—देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज।
जनवासे गवने मुदित, सकल भूप सिरताज॥ ३२२॥

पान देकर राजा जनक ने समाज के सहित दशरथ की पूजा की, सब राजाओं के शिरोमणि राजा दशरथ प्रसन्न होकर जनवासे गये।

नित नूतन मंगल पुरमाहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं॥
बड़े भोर भूपति मनि जागे। जाँचक गुनगन गावन लागे॥

नगर में प्रति दिन नये नये मंगल होते थे, पलक के समान दिन और रात बीतते थे। बड़े प्रातःकाल राजा दशरथ जागे और वन्दी चारण आदि उनके गुणों को गाने लगे।

देखि कुअँर वर वधुन समेता। किमि कहि जात मोद मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरुपाहीं। महा प्रमोद प्रेम मन माहीं॥
करि प्रनाम पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिय जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयो आजु मैं पूरनकाजा॥
अब सब विप्र बुलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति सुहाईं॥

सुन्दरी बहुओं के साथ कुमारों को देखकर मन में जितना आनन्द होता है, वह कैसे कहा जा सकता है। प्रातःकाल का कृत्य समाप्त कर, राजा दशरथ गुरु वसिष्ठ जी के पास गये, उस समय उनका मन आनन्द और प्रेम से भरा हुआ था। प्रणाम करके उन्होंने पूजा की और पुनः हाथ जोड़ कर वे बोले, उनकी वाणी मानों अमृत में डुबोयी हुई थी। राजा ने कहा, मुनिराज, आपकी कृपा से आज हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ। महाराज, अब सब ब्राह्मणों को बुलाकर सुन्दर सुन्दर गौ आप उन्हें दान दें।

सुनि गुरु करि महिपाल बड़ाई। पुनि पठये मुनिवृंद बोलाई॥

गुरु वसिष्ठ ने राजा की बात सुनकर उनकी प्रशंसा की और पुनः मुनियों को बुलाया।

दो०-बामदेव अरु देवरिषि, बालमीक जाबालि।
आये मुनि वर निकट तब, कौसिकादि तपसालि॥३२३॥

बामदेव, देवर्षि, नारद, वाल्मीकि, जाबालि तथा विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियों का सभी समुदाय आया।

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बरधेनु मंगाई। काम सुरभिसम सील सुहाई॥

राजा ने सभी को दण्डवत प्रणाम किया, उनकी पूजा की और उन्हें उत्तम आसन दिया। राजा ने चार लाख गौ मंगवायीं जो कामधेनु के समान थीं।

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महीप महिदेवन दीन्हीं॥

राजा ने सब प्रकार से उनको भूषण आदि से सजाया और पुनः राजा ने ब्राह्मणों को वे गौ दे दीं।

करत बिनय बहुबिधि नरनाहू। लहेउं आजु जगजीवन लाहू॥
पाइ असीस महीस अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक वृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यन्दन। दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन॥

राजा बहुत प्रकार की विनय करने लगे और उन्होंने कहा कि आज मैंने अपने जीवन का लाभ पाया। मुनियों से आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। तब उन्होंने सूत, मागध, बन्दी आदि याचकों को बुलाया। रविकुल को आनन्दित करनेवाले राजा दशरथ ने सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी, रथ आदि उन याचकों की इच्छा समझ कर दिये अर्थात् जिसकी जैसी इच्छा थी, उसे वही दिया।

चले मुदित बरनत गुनगाथा। जय जय जय दिनकरकुलनाथा॥
एहिबिधि राम बिबाह उछाहू। सकइ न बरनि सहसमुख जाहू॥

वे राजा के गुणों को वर्णन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक चले, सूर्यकुल के स्वामी राजा दशरथ की जय जयकार करते हुए चले। इस प्रकार राम के विवाह का उत्साह उसके द्वारा भी वर्णन नहीं किया जा सकता—जिसके हजार मुख हैं। अर्थात् शेषनाग भी राम के विवाह के उत्सव का वर्णन नहीं कर सकते।

दो०—बार बार कौसिक चरन, सीसु नाइ कह राउ।
यह सब सुष मुनिराज तब, कृपा कटाच्छ प्रभाउ॥३२४॥

राजा दशरथ ने विश्वामित्र के चरणों पर बार बार सिर नवाया और कहा कि, हे मुनिराज, यह सब सुख आपके कृपाकटाक्ष के फल हैं।

जनक सनेह शील करतूती। नृपु सब रीति सराह विभूती॥

राजा दशरथ ने जनक के स्नेह, शील, कार्य तथा उनके ऐश्वर्य की समस्त रीति सराहना की।

दिन उठि विदा अवधपति माँगा। राषहिं जनक सहित अनुरागा॥

राजा दशरथ प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर विदा माँगते हैं और जनक भी प्रेमपूर्वक उनको रहने को कहते हैं। विदा नहीं देते।

नित नूतन आदर अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंद उछाहू। दसरथ गवँन सुहाय न काहू॥

दशरथजी का नित नया नया अधिक आदर होने लगा, प्रतिदिन हजारों प्रकार का स्वागत सत्कार होने लगा। नगर में नित नये नये उत्सव होने लगे, दशरथजी के जाने की बात किसी को भी अच्छी नहीं लगती है।

बहुत दिवस बीते एहि भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥

इस प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो बाराती प्रेम की रस्सी में बँध गये थे।

कौसिक सतानंद तब जाई। कहा विदेह नृपति समुझाई

तब कौशिक और शतानन्द राजा जनक के पास गये और उन्होंने राजा जनक को समझाकर कहा।

अब दसरथ कहँ आयसु देहू। जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिँ नाथ कहि सचिव बोलाये। कहि जय जीव सीस तीन्ह नाये॥

यद्यपि स्नेह के कारण आप दशरथ महाराज को छोड़ना नहीं चाहते फिर भी आप उन्हें आज्ञा दें। महाराज, अच्छा, कह कर राजा जनक ने उनकी बातें मान ली और उन्होंने अपने मन्त्रियों को बुलाया, मन्त्रियों ने जयजीव आदि कह कर सिर नवा कर उन्हें प्रणाम किया।

दो०-अवध नाथ चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भये प्रेमबस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ॥ ३२५॥

अवधनाथ राजा दशरथ अब जाना चाहते हैं, यह भीतर रानियों को जना दो, यह सुनकर ब्राह्मण, सभासद तथा स्वयं राजा भी प्रेमवश होकर दुःखी हुए।

पुरबासी सुनि चलिहि बराता। पूछत बिकल परस्पर बाता॥
सत्य गवन सुनि सब बिलखाने। मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने॥

पुरवासियों ने जब सुना कि बारात अब जा रही है, तब वे विकल होकर आपस में यह बात पूछने लगे, जब उन्हें बारात सचमुच जायगी, यह बात मालूम हुई; तब वे बड़े ही दुःखी हुए—जैसे सन्ध्याके समय कमल संकुचित हो जाता है, उसी प्रकार संकुचित हो गये।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहुभाँती॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साज न जाइ बखाना॥
भरि भरि बसह अपार कहारा। पठए जनक अनेक सुआरा॥

जहाँ जहाँ बाराती ठहरे थे, वहाँ वहाँ तयार भोजन राजा ने भिजवाया, तथा और भी अनेक प्रकार की मेवा पकवान आदि भोजन की सामग्री उन्होंने

भेजी, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। बहुत से कहार बैलों पर भर भर करके राजा ने भिजवाये तथा अनेक रसोई बनानेवाले भी उन्होंने भेजे।

तुरग लाष रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नष अरु सीसा॥
मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहिं देषि दिस कुंजर लाजे॥

एक लाख घोड़े, पचीस हजार रथ जो नीचे से उपर तक सजे थे, सजे हुए दस हजार मतवाले हाथी जिन्हें देखकर दिग्गज भी लज्जित होते हैं। सुवर्ण वस्त्र मणि रथों में भरभर करके, भैंस गाय तथा और भी अनेक प्रकार की वस्तु राजा जनक ने दहेज में दिये।

दो०-दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्ह विदेह बहोरि॥
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि॥३२६॥

विदेह जनक ने पुनः बहुत अधिक दहेज दिया जो कहा नहीं जा सकता जिसको देखने पर लोकपालों की सम्पत्ति भी थोडी जँचती है।

सब समाज एहि भांति बनाई। जनक अवध पुर दीन्ह पठाई॥

इस प्रकार सब सामग्री तैयार करके राजा जनक ने अयोध्या भेजवादी।

चलहि बरात सुनत सब रानी। विकल मीनगन जनु लघुपानी॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावन देहीं॥
होयहु संतत पियहिं पियारी। चिरु अहिबात असीस हमारी॥

बारात जारही है यह सुनकर सब रानियां जिस प्रकार थोड़े जल में मछली व्याकुल होती हैं उसी प्रकार व्याकुल हुईं। वारवार वे सीता को गोद में लेती हैं उन्हें आशीर्वाद देती हैं तथा शिक्षा देती हैं, सदा अपने पति की प्यारी बनी रहना, तुम्हारा सौभाग्य चिरकाल तक रहे—यही हमारा आशीर्वाद है।

सासु ससुर गुर सेवा करेहु। पति रुष लषि आयसु अनुसरेहु॥

सास ससुर और गुरुओं की सेवा करना, पति का अभिप्राय समझती रहना और उनकी आज्ञा का पालन करना।

अति सनेहबस सखी सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदुबानी॥

सीताजी की चतुर सखियां स्नेहवस कोमलवाणी से स्त्री-धर्म की शिक्षा देने लगीं।

सादर सकल कुंअरि समुझाई। रानिन बार बार उर लाई॥
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी। कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी॥

आदरपूर्वक सब कुमारियों को समझाया और रानियों ने बार बार उन्हें छाती से लगाया। माताएँ बार बार कुमारियों से भेंट करती हैं और कहती हैं कि विधाता ने स्त्रियों को क्यों बनाया।

दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित, राम भानु-कुलकेतु।
चले जनक-मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु॥ ३२७॥

उसी समय भानुकुलकेतु रामचन्द्रजी भाइयों के साथ विदा कराने के लिए प्रसन्नतापूर्वक राजाजनक के महल में गये।

(बिदाई)

चारिउ भाइ सुभाय सुहाये। नगरनारिनर देखन धाये॥

चारों भाई स्वभाव से ही सुन्दर थे, उनको देखने के लिए नगर के स्त्री पुरुष दौड़े।

कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदाकर साजू॥

कोई कहते थे कि ये आज ही जाना चाहते हैं, जनकराज ने विदा की सामग्री भी तयार कर ली है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥

ये चारो राजपुत्र प्रिय पाहुने हैं इनका रूप आंख भर आज देख लो।

को जानइ केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधिआनी॥

कौन जाने किस पुण्य के प्रभाव से भाग्य ने इनको हम लोगों के नयनों के अतिथि बनाया है। किस पुण्य के प्रभाव से हम लोग इनको देख रहे हैं इसका क्या पता।

मरनसील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहइ जनम कर भूषा॥
पाव नारकी हरिपद जैसे। इन्हकर दरसन हम कहं तैसे॥

जिस प्रकार मरते हुए मनुष्य के लिए अमृत का मिल जाना है, जन्म के दरिद्र को जिस प्रकार कल्पवृक्ष का मिल जाना है, और पापी के लिए जैसे भगवान के धाम का पाना है उसी प्रकार हम लोगों के लिए इनका दर्शन है।

निरषि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनिमूरतिमनि करहू॥

रामचन्द्रजी की शोभा देखकर उसे अपने अपने हृदय में धारण करो, अपने मनको सर्प बनाओ और रामजी की मूर्ति को मणि, फिर सर्प जैसे अपने मणि की रक्षा करता है, वैसे ही तुम इनकी शोभा की रक्षा करो,

यहि विधि सबहिं नयन फल देता। गये कुंअर सब राजनिकेता॥

इस प्रकार सबको नयन का फल देते हुए चारो राजकुमार राजमहल में गये।

दो०-रूप सिंधु सब बंधु लषि, हरषि उठेउ रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु॥३२८॥

सब भाइयों को रूपसमुद देखकर रानियां प्रसन्न हो गयीं। सास प्रसन्न होकर न्योछावर तथा आरती करने लगीं।

देषि राम छवि अति अनुरागी। प्रेम विवस पुनिपुनि पद लागी॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेह बरनि किमि जाई॥

रामचन्द्र की शोभा देखकर सब रानियां प्रसन्न हुईं और प्रेम में विभोर होकर वे बारबार रामजी को प्रणाम करने लगीं। उन लोगों ने लज्जा न की क्योंकि उनके हृदय में प्रेम छा गया था, उस सहज स्नेह का वर्णन कैसे किया जा सकता है।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाये। छरस असन अतिहेतु जेंवाये॥

भाइयों के साथ रामचन्द्रजी को उबटन लगाकर उन लोगों ने स्नान कराये और बड़े प्रेम से षट् रस भोजन कराये।

बोले राम सुअवसर जानी। सील सनेह सकुच भय बानी॥

सुअवसर देखकर शील और स्नेह से सकुचाती हुई वाणी श्रीराम बोले।

राउ अवध पुर चहत सिधाये। बिदा होन हित हमहीं पठाये॥

राजा अयोध्या जाना चाहते हैं, उन्होंने आप लोगों से विदा होने के लिए हम लोगों को यहां भेजा है।

मातु मुदित मन आयसु देहु। बालक जानि करब नितनेहू॥
सनत वचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥

माता, प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिए, और अपना बालक समझ कर प्रति दिन दया रखियेगा। रामजी के बचन सुनकर सभी रानियां दुःखी हुईं। सास प्रेम के वश थीं इसलिए वे कुछ बोल न सकीं।

हृदय लगाइ कुअंरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अतिकीन्ही॥

उन रानियों ने कुमारियों को अपने अपने हृदयों से लगा कर और उन्हें उनके पति को सौंप कर विनयपूर्वक कहा।

छं०-करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहइ।
बलि जाउँ तात सजान तुम कहँ बिदित गति सब की अहइ।
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिबी।

विनय पूर्वक रामजी को सीता समर्पित करके और हाथ जोड़ कर रानी ने बार बार कहा, बेटा मैं तुम्हारे लिए बलि जाती हूं, तुम चतुर हो और तुम्हें सबका हाल मालूम है। सीता हमारे परिवार की नगरवासियों की मेरी तथा राजाकी प्राण है ऐसा समझिएगा। तुलसीदास कहते हैं कि इसका शील तथा स्नेह देखकर इसे अपनी दासी समझना।

सो०-तुम परिपूरनकाम, ज्ञान सिरोमनि भावप्रिय।
जनगुनगाहक राम, दोष दलन करुनायतन॥

राम तुम परिपूर्ण काम हो, तुम्हें किसी बात की चाह नहीं तुम ज्ञानियों

के शिरोमणि और भाव प्रिय हो, अर्थात् शुद्ध भाव ही आपको प्रिय है, अपने भक्तों के गुणग्रहण करने वाले हो दोषों को दूर करने वाले तथा दयालु हो।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेमपंक जनु गिरा समानी॥

इतना कहने के पश्चात् मानो रानी की वाणी प्रेमरूपी कीचड़ में फंस गयी और रानीने रामजी के चरण पकड़ लिये।

सुनि सनेहसानी बरबानी। बहुविधि राम सासु सनमानी॥
राम बिदा मांगा कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी॥

स्नेहयुक्त उत्तम वाणी सुनकर रामजी ने सास को अनेक प्रकार से सम्मानित किया, रामने हाथ जोड़कर बिदा मांगा और बारबार प्रणाम किया।

पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥
मंजुमधुरमूरति उर आनी। भई सनेह सिथिल सब रानी॥

आशीर्वाद पाने पर उन्होंने पुनः प्रणाम किया और भाइयों के साथ वहां से चले। मनोहर और सुन्दर मूर्ति का ध्यान करके स्नेह के कारण सभी रानियां शिथिल हो गयीं—निश्चेष्ट हो गयीं।

पुनि धीरज धरि कुअँरि हंकारी। बार बार भेटहिं महतारी॥
पहुँचावहिं फिर मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

पुनः माताने धैर्य धरकर कुमारियों को बुलाया, और बार बार उनसे भेंट की। रानी एक बार सीता को पहुँचाती हैं और फिर लौटा कर उनसे मिलने लगती हैं। उनका परस्पर प्रेम बहुत बढ़ा था वह थोड़ा न था। इस प्रकार वे बार बार मिलने लगीं तब सखियों ने उन्हें अलग अलग किया, जिस प्रकार छोटे बच्छे को शीघ्र ब्याही गौ से अलग करते हैं।

दो०—प्रेमबिवश नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनबास।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना बिरह निवास॥ ३२६॥

नगर के स्त्री पुरुष प्रेम से विभोर हैं, सखियों के साथ रनिवास भी प्रेम में सुधबुध खोये हैं। मालूम होता हैं कि इस समय जनकपुर में दुःख तथा विरह ने निवास किया है।

सुक सारिका जानकी ज्याये। कनकपिंजरन्हि राषि पढाये॥
व्याकुल कहहिं कहां वैदेही। सुनि धीरज परिहरइ न केही॥
भये विकल खग मृग एहि भांती। मनुज दसा कैसे कहि जाती॥
बंधुसमेत जनकु तब आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये॥
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम विरागी॥

सुग्गा मैना जिन्हें जानकी ने पोसा था तथा सोने के पिंजड़े में रख कर जिन्हें पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कहते हैं कि कहां वैदेही—उनकी इस वाणी को सुनकर कौन धीरज नहीं छोड़ देता ? पशु पत्ती आदि भी सीता के विरह से इस प्रकार व्याकुल हो गये फिर मनुष्यों की दशा कैसी थी यह कैसे कहा जा सकता है। तब भाइयों के साथ जनकजी आये और प्रेम के कारण उनकी आंखों में जल भर आया। जब उन्होंने सीताजी को देखा तब उनका भी धैर्य छूट गया, जो जनकजी आज तक बड़े विरक्त कहे जाते थे।

लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ज्ञानकी॥

राजा जनक ने सीता को छाती से लगा लिया ज्ञानकी बड़ी मर्यादा मिट गयी, अर्थात् बड़े ज्ञानी जनक भी मोहवश हो गये।

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह विचारु अनवसर जाने॥

जनकजी की यह दशा देखकर चतुर मन्त्री उन्हें समझाने लगे, उन्होंने भी इसे अच्छा समय न जानकर विचारपूर्वक धैर्य धारण किया।

बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मंगाई॥

बार बार उन्होंने कन्या को छाती से लगाया, और सजी हुई सुन्दर पालकी मंगवायी।

दो०-प्रेम बिबस परिवार सब, जानि सुलगन नरेस ॥
कुअँर चढ़ाई पलाकिन्ह, सुमिरे सिद्ध गनेस ॥ ३३० ॥

राजा जनक ने देखा कि समूचा परिवार प्रेम में विभोर है, और विदाई का लग्न आ गया, तब सिद्धिदाता गणेश का स्मरण करके उन्होंने कुमारियों को पालकी पर चढ़ा दिया।

बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारि धरम कुल रीति सिखाई ॥
दासी दास दिये बहु तेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥

राजाने कन्या को अनेक प्रकार की शिक्षा दी, उन्हें स्त्री-धर्म सिखाया तथा कुल की रीति सिखायी, अनेक सदाचारी सेवक जो सीता के प्रिय थे तथा अनेक दासी दास राजा ने जानकी को दिये।

सीय चलत व्याकुल पुरवासी। होहिं सगुन सुभ मंगलरासी ॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुचावन राजा ॥

सीता के चलने के समय नगरवासी बहुत व्याकुल हुए, उस समय अनेक सुन्दर शुभ शकुन होने लगे। ब्राह्मण और मंत्रियों को लेकर राजा जनक साथ साथ पहुँचाने के लिए चलें।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ॥
दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परि पूरन कीन्हे ॥
चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा ॥
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भये नाना ॥

समय देखकर बाजे बजने लगे, बारातियों ने हाथी घोड़े तथा रथ सजाये। दशरथ ने सब ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें दान देकर तथा सम्मान कर तृप्त किया। ब्राह्मणों के चरण कमलों की धूलि राजाने अपने मस्तक पर रखें और उन ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। गणेशजी का स्मरण करके राजा दशरथ ने प्रस्थान किया, उस समय अनेक शकुन हुए जो मंगल की सूचना देनेवाले थे।

दो०–सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान ॥३३१॥

देवता प्रसन्न होकर पुष्प वृष्टि करने लगे, अप्सरायें गान करने लगीं, उसी समय डंके की आवाज के साथ राजा दशरथ ने प्रस्थान किया।

नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल मांगने टेरे॥

राजा दशरथ ने विनय करके पहुँचाने के लिए साथ चलनेवाले भले आदमियों को लौटा दिया और सूत वन्दी आदि याचकों को आदरपूर्वक बुलाया।

भूषन बसन वाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढे सब कीन्हे॥

राजा ने भूषण वस्त्र घोड़े तथा हाथी उनको दिये, और प्रेमपूर्वक सब को खड़ा किया।

बार बार विरदावलि भाषी। फिरे सकल रामहिं उर राषी॥

बारबार राजा का गुण गान कर के तथा रामजी को हृदय में रखकर वे सब लौट गये।

बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं। जनक प्रेम बस फिरन न चहहीं॥
पुनि कह भूपति वचन सुहाये। फिरिय महीप दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढे। प्रेम प्रवाह विलोचन बाढे॥

बारबार राजा दशरथ राजा जनक को लौटने के लिए कहते हैं, पर प्रेमवश राजा जनक लौटना नहीं चाहते। पुनः राजा दशरथ ने सुन्दर वचनों से कहा कि महाराज आप लौट जाइए, बहुत दूर आ गये। पुनः राजा दशरथ रथ से उतर कर खड़े हो गये और उनकी आँखों में प्रेम का प्रवाह बह आया, आँखें भर आयीं।

तब विदेहु बोले कर जोरी। बचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करउं कवन विधि विनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

तब विदेह हाथ जोड़ कर स्नेहपूर्वक वचन बोले, महाराज, किस

प्रकार मैं आपकी प्रार्थना करूँ, आपकी प्रशंसा करूँ, आपने मुझे बहुत बड़ी प्रशंसा दी है।

दो०–कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि परसपर विनय अति, प्रीत न हृदय समाति ॥३३२॥

कोशलपति राजा दशरथ ने समधी तथा उनके स्वजनों का सब प्रकार से सम्मान किया, बड़े प्रेम और विनय से वे परस्पर मिले, उस समय का प्रेम हृदय में नहीं समाता था।

मुनि मंडलिहिं जनक सिरु नावा।आसिरबाद सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप-सील गुननिधि सब भ्राता॥
जोरि पंकरुह-पानि सुहाये। बोले बचन प्रेम जनु जाये॥

जनक ने सब मुनियों को प्रणाम किया और उन सब से आशीर्वाद पाया। पुनः आदरपूर्वक वे अपने चारो जामाता से मिले, जो चारों भाई रूप शील तथा गुण के निधान थे। सुन्दर करकमलों को जोड़कर के बोले, उनके वचन मानों प्रेम से उत्पन्न हुए थे।

राम करउं केहि भांति प्रसंसा। मुनि महेस मनमानसहंसा॥

उन्होंने कहा राम मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूं, क्योंकि मुनि और शिव के मनरूपी मानसरोवर के आप हंस हैं।

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी॥
व्यापक ब्रह्म अलष अविनासी। चिदानंद निरगुन गुन रासी॥

क्रोध मोह ममता और मद का त्याग कर योगी लोग जिसके लिए योग करते हैं। जो व्यापक ब्रह्म हैं, जो अलख और अविनाशी हैं जो चित्र और आनदमय हैं जो निर्गुण हैं तथापि गुणराशि है। सत्व रज तम प्रकृति के इन गुणों के अधीन नहीं हैं, इसलिए निर्गुण हैं और सब गुणों की खान तो हैं ही।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिँ सकल अनुमानी

मन के साथ वाणी जिसको नहीं जान पाती, सब प्रकार के तर्कों तथा अनुमान के द्वारा जो नहीं जाना जा सकता।

महिमा निगम नेति कहिं कहई। जो तिहुँ काल एकरस अहई॥

वेद जिसकी महिमा का वर्णन नेति नेति कह कर करते हैं, जो तीनों कालों में एक समान है। अर्थात् जिसमें विकार नहीं होता।

दो०-नयन विषय मो-कहं भयउ, सो समस्त सुखमूल।
सवहि लाभ जग जीव कहं, भये ईस अनुकूल॥ ३३३॥

वह सब सुखों का मूल आज हमारे नयन विषय हुआ अर्थात् वह हमारी आँखों के सामने आ गया। भगवान् की अनुकूलता से जीवन के सभी लाभ मिलते हैं; जैसे मुझे मिले हैं।

सवहिं भांति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जनजानिलीन्हअपनाई॥

आपने सब प्रकार से मुझे प्रतिष्ठा दी, अपना सेवक जानकर आपने मुझे अपना लिया।

होहिँ सहस दस सारद सेषा। करहि कलपकोटिक भरि लेषा॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहिं न सिराहिँ सुनहु रघुनाथा॥

हे रघुनाथ सुनो, दस हजार सरस्वती और दस हजार शेष नाग हों, हजारों कलम बनायी जाँय तब भी मेरा भाग्य और आपके गुण इनका वर्णन नहीं हो सकता।

मैं कछु कहहुँ एक बल मोरे। तुम्ह रीझउ सनेह सुठि थोरे॥

मैं कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि मुझे एक बल है और वह बल यही कि आप थोड़े भी शुद्ध प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं।

बार बार मांगउँ कर जोरे। मनु परिहरइ चरन जनि भोरे॥

बार बार हाथ जोड़ कर मैं यही मांगता हूं कि मेरा मन भूल कर भी आपके चरणों का त्याग न करे।

सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरन काम राम परितोषे॥

सुन्दर वचन सुन कर जो वचन मानों प्रेम से पोसे गये थे—पूर्ण काम रामचन्द्र प्रसन्न हुए।

करि बर विनय ससुर सनमाने। पितु-कौसिक-वसिष्ठसमजाने॥

विनय करके राम जी ने श्वसुर जनक जी का सम्मान पिता दशरथ, विश्वामित्र तथा वशिष्ठ के समान जानकर किया।

विनती बहुरि भरत सन कीन्हा। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्हा॥

जनक जी ने पुनः भरत से विनय की प्रेमपूर्वक उनसे मिलकर आशीर्वाद दिया।

दो०–मिले लषन रिपु सूदनहिं, दीन्हि असीस महीस।
भये परसपर प्रेमवस, फिरि फिरि नावहिं सीस॥३३४॥

लचमण और शत्रुघ्न से भी वे मिले और उन्हें आशीर्वाद दिया। वे सब परस्पर प्रेम वश हो गये और वारवार सिर नवाने लगे।

बार बार करि विनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई॥
सुनु मुनीसवर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे॥
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥
सो सुष सुजस सुगम मोहि स्वामी। सबसिधितवदरसनअनुगामी॥

वारवार जनक की विनय तथा उनकी प्रशंसा करके रामचन्द्र भाइयों के साथ चले। जनक ने जाकर विश्वामित्र को प्रणाम किया और उनकी चरण धूलि सिर आँखों पर लगाय, जनक ने कहा, हे मुनिश्रेष्ठ, सुनिए, आपके दर्शन से मुझे कुछ भी अप्राप्य नहीं है ऐसा मेरा विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं और जिस बात को अपना मनोरथ बनाने में भी उन्हें सङ्कोच होता है। स्वामी, वही सुख और सुयश मेरे लिए सुगम हुए मुझे वे अनायास मिले, क्योंकि जितनी सिद्धियां हैं वे सब आपके दर्शन की अनुगामी हैं। आपके दर्शन होने पर सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

(अयोध्या के लिये प्रस्थान)

कीन्ह विनय पुनि पुनि सिर नाई। फिरे महीस आसिषा पाई॥
चली बरात निसान बजाई। दंत छोट बड़ सब समुदाई॥

बारबार चरणों पर सिर नवाकर उन्होंने विनय किया और आशीर्वाद पाकर लौट गये। डंका बजा कर बारात रवाना हुई, छोटे और बड़े सभी प्रसन्न हुए।

रामहिं निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फल होहिँ सुखारी॥

रामजी को देखकर गांव के स्त्री पुरुष अपने नयनों को तृप्त करते हैं और सुखी होते हैं।

दो०—बीच बीच वर वास करि, मग लोगन्ह सुखदेत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुंची आइ जनेत॥ ३३५॥

मार्ग में, बीच बीच में सुखपूर्वक वास करते, रास्ते के लोगों को सुख देते, वह बारात शुभ दिन में अयोध्या के समीप पहुंच गयी।

हने निसान पनव वर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे॥
झांझि भीरि डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई॥

डंके पर चोट पड़ी, पणव बजने लगा, भेरी और शंख के शब्द सुनकर हाथी और घोड़े मस्ती करने लगे, झांझ, भेरी, डिंडिम आदि बजने लगे और सहनाई में सरस राग बजने लगा।

पुरजन आवत जानि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन संवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥
गली सकल अरगजा सिंचाई। जहँ तहँ चौकें चारु पुराई॥

नगरवासियों ने जब जाना कि बारात आरही है तब वड़े प्रसन्न हुए, उनके शरीर पुलकित हो गये। उन लोगों ने अपने अपने सुन्दर घरों को सजाया, बाजार मार्ग चौरास्ता तथा नगर का द्वार सजाया। सब

गलियों में अरगजा सुगन्धित वस्तु मिश्रित जल सींचा गया, बीच बीच में सुन्दर चौके पुराये गये।

बना बजार न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना॥

तोरन ध्वजा पताका तथा शामियानों से बाजार खूब सजाया गया, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

सफल पूग फल कदलि रसाला। रोपि बकुल कदंब तमाला॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनि मय आलबाल कल करनी॥

फले हुए सुपारी के वृक्ष, केला, आम, बकुल, कदंब और तमाल वृक्ष रोपे गये। ज़मीन में छूते ही वे बड़े सुन्दर मालूम होने लगे, उनके आलवाल [थाले] मणियों के बने थे जो बड़े विचित्र थे।

दो०—विविध भांति मंगल कलस, गृह गृह रचे संवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबर पुरी निहारि॥३३६॥

अनेक प्रकार के मंगल कलश घर घर के द्वार पर बड़ी सुन्दरता से रखे गये। रामचन्द्रजी के नगर को देखकर ब्रह्मा आदि देवता आश्चर्य करने लगे।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा॥

उस समय राजा का भवन बड़ा ही शोभता था। उसकी बनावट देख कर कामदेवका भी मन मोहित हो जाता था।

मंगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥
जनु उछाह सब सहज सुहाये। तनु धरि धरि दसरथ गृह आये॥

मङ्गलमय वस्तु, शकुन की वस्तु, सौन्दर्य, ऋद्धिसिद्धि सुख सुन्दर सम्पति तथा सुन्दर और स्वाभाविक सभी उत्साह राजा दशरथ के घर मानो शरीर धर कर आये हैं।

देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होइ न केही॥
जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि॥

राम और सीता को देखने के लिए भला किस की उत्कण्ठा न होगी ? झुण्ड की झुंड सधवा स्त्रियाँ साथ चलीं, जिनको देखकर कामदेव की स्त्री रति अपने सौन्दर्य का तिरस्कार करने लगी।

सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिँ जनु बहु बेष भारती॥

सभी मंगलयुक्त आरती सजाकर जाती थीं, मानों स्वयं सरस्वती अनेक वेष धर कर गा रही हों।

भूपति भवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समउ सुख सोई॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तनुदसा बिसारी॥

राजा दशरथ के भवन में कोलाहल होने लगा, उस समय लोगों को जो सुख हुआ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कौशल्या आदि राम की जो माताएँ थीं उन लोगों ने प्रेमवश होकर अपने शरीर की सुध बुध खो दी थी।

दो०-दिये दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि॥३३७॥

गणेश और शिव की पूजा करके उन लोगों ने ब्राह्मणों को बहुत दान दिये, वे प्रसन्न हुई, मानो दरिद्र ने चारो पदार्थ धर्म अर्थ काम और मोक्ष पालिया हो।

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहिँ न चरन सिथिल भये गाता॥

सभी माता आनन्द विह्वल हो गयी थीं, उनके चरण आगे नहीं पड़ते थे, शरीर शिथिल हो गया था।

राम दरस हित अति अनुरागी। परिछन साजु सजन सब लागी॥

रामजी के दर्शन के लिए वे बहुत ही उत्सुक हो गयी थीं, परिछन की सामग्री सब सजाने लगीं।

बिबिध बिधान बाजने गाजे। मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, सुमित्रा [लक्ष्मणजी की माता] सब मंगल सामग्री सजाने लगीं।

रद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥
अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि विराजा॥

हरदी, दूध, दधि, पल्लव, फुल, पान, सुपारी ये मंगल की सामग्रियाँ सुमित्रा ने प्रस्तुत कीं, अक्षत, जवा, गोरोचन, लावा तथा तुलसी ये सब वस्तु भी सजायी गयीं।

छुहे पुरट घट सहज सहाये। मदन सकुच जनु नीड बनाये॥

चित्रकारी किया हुआ मंगल कलश स्वभाव से ही सुन्दर था, मालूम होता था कि कामदेव पक्षी ने अपने रहने के लिए खोंता बनाया है, परिछन के समय का मंगल कलश चित्रकारी किया हुआ होता है और सधवा स्त्री उसे माथे पर रख कर आगे आगे चलती है।

सगुन सुगंध न जाइ बषानी। मंगल सकल सजहिँ सब रानी॥

शकुन और सुगन्धित वस्तुओं का वर्णन नहीं हो सकता, उस समय सभी रानियाँ मङ्गल की सामग्रियाँ सजाने लगीं।

रची आरती बहुत विधाना। मुदित करहिँ कल मंगल गाना॥

अनेक प्रकार की आरती बनायी, प्रसन्न होकर वे मधुर गान करने लगीं।

दो०-कनक थार भरि मंगलन्हि, कमलकरन लिये पात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक पल्लवति गात॥३३८॥

सोने के थालों में मङ्गल की सामग्रियों को भर कर तथा हस्त कमल में पत्ता लेकर वे प्रसन्न होती हुई परिछन के लिए चलीं, उनका शरीर रोमाञ्च होने से पल्लव के समान हो गया था।

धूप धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन घमंड जनु ठयऊ॥

धूप के धुएँ से आकाश काला हो गया, मालूम हुआ कि आकाश में सावन की घटा छा गयी है।

सुर तरु सुमन माल सुर बरषहिँ। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिँ॥

देवता कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला बरसाने लगें मानो कमलों की पंक्ति खींची जाती हो।

मंजुल मनिमय बंदन वारे। मनहुँ पाकरिपुचाप संवारे॥

सुन्दर मणियों के वन्दनवार बनाये गये थे, वे इन्द्र धनुष के समान मालूम होते थे।

प्रगटहिं दुरहिं अटनपरभामिनि। चारुचपलजनुदमकहिंदामिनि॥

अटारियों पर स्त्रियां दिखायी पड़ती थीं और छिप जाती थीं मालूम होता था कि वे सुन्दर र चञ्चल बिजुली हों।

दुंदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥

दुन्दुभी का शब्द घोर मेघ गर्जन के समान मालूम होता था, जिससे सुन्दर याचक रूपः चातक दादुर और मोर प्रसन्न होते थे।

सुर सुगंध सुचि बरषहि वारी। सुखी सकल ससि पुर नरनारी॥

देवता पवित्र और सुगन्धित जल की वृष्टि करने लगे, जिससे शस्य रूप नगर के स्त्री पुरुष सुखी हुए।

(पुर प्रवेश तथा आम गन्दोत्सव)

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा। पुर प्रवेस रघुकुल मनि कीन्हा॥

समय जानकर गुरु ने आज्ञा दी, तब रघुकुल मणि दशरथ ने नगर में प्रवेश किया।

सुमिरि संभु गिरिजा गन-राजा। मुदितमहीपति सहित समाजा॥

शिव पार्वती और गणेश का स्मरण करके सब समाज के साथ राजा ने प्रसन्नतापूर्वक नगर में प्रवेश किया।

दो०—होहिं सगुन बरषहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाई।
विबुध बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ॥ ३३९॥

सब शकुन होने लगे, देवता गण दुन्दुभी बजाकर पुष्प वृष्टि करने लगे और देवताओं की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर सुन्दर और मनोहर गान गाने लगीं।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहिं जस तिहुँ लोकउजागर॥

मागध सूत वन्दी आदि राजा का त्रिलोक प्रसिद्ध यश गाने लगे।

जयधुनि विमल वेद बर बानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल सानी॥
विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे॥
बने बराती बरनि न जाहीं। महामुदित मन सुष न समाहीं॥
पुरबासिन्ह तब राउ जोहारे। देखत रामहिं भये सुषारे॥

दसों दिशाओं में जयध्वनि विमल वेद की मङ्गलमय सुन्दर वाणी सुनायी पड़ने लगी। अनेक बाजे बजने लगे। आकाश में देवता तथा नगर में स्त्री पुरुष प्रसन्न हुए। बाराती ऐसे सजे थे जिनका वर्णन नहीं हो सकता, वे बड़े प्रसन्न हैं आनन्द उनके मन में नहीं समाता था, तब नगर की स्त्रियों ने पहले राजा दशरथ को देखा, तद्नुसार राम को देखकर वे प्रसन्न हुईं।

करहिं निछावर मनि गन चीरा। बारि विलोचन पुलक सरीरा॥

मणि और वस्त्र न्योछावर करने लगीं, उनकी आँखें आनन्द जल से भर गयीं, शरीर पुलकित हो गया।

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरषि कुअँर बरचारी॥
सिबिका सुभग उहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुषारी॥

नगर की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आरती करने लगीं और चारों सुन्दर कुमारों को देख वे प्रसन्न होने लगी। सुन्दर पालकियों के उहार उठाकर उन लोगों ने चारो दुलहिनों को देखा और वे सुखी हुईं।

दो०—एहि विधि सबही देत सुष, आये राज दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार॥३४०॥

इस प्रकार सब को सुख देते हुए भाइयों के साथ कुमार रामचन्द्रजी राजद्वार पर आये और वहाँ माताओं ने प्रसन्न होकर आरती की।

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेम प्रमोद कहइ को पारा॥

भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भांती॥

वे बारबार आरती करती हैं, उनके हृदय में कितना प्रेम है, वे कितनी आनन्दित हैं? यह कौन कह सकता है? अनेक प्रकार के भूषण मणि तथा विविध रेशमी वस्त्र उन लोगों ने न्योछावर किये।

बंधुन्ह समेत देषि सुतचारी। परमानंद मगन महतारी॥

भाइयों के साथ चारों पुत्रों को देखकर माता परमानन्द में मग्न हो गयीं।

पुनि पुनि सीय राम छबि देषी। मुदित सुफल जग जीवन लेषी॥
सखी सीय मुष पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरसहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा॥

बारबार राम और सीता की शोभा देखकर वे प्रसन्न होतीं तथा अपने जीवन को सफल समझतीं थीं। सखियाँ बारबार सीता का मुख देखती और अपने पुण्य की प्रशंसा करके गान करती थीं। देवगण क्षण क्षण में पुष्प वृष्टि करते थे, वे नाचते थे और गाते थे, इस प्रकार रामजी की सेवा करते थे।

देषि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढढोरी॥
देत न बनहिं निपट लघुलागी। एक टक रही रूप अनुरागी॥

चारो जोड़ियों को सुन्दर देखकर उनके लिए शारदा ने सब जगह उपमा ढूंढी, परन्तु उपमाएँ उनको छोटी जंची, इसलिए वे उन उपमाओं को दे न सकीं, केवल एकटक अनुराग पूर्वक रामचन्द्रजी को देखने लगीं।

दो०—निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवडे देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लेवाइ निकेत॥३४१॥

वैदिक विधि तथा कुलरीति के अनुसार अर्घ्य देकर भाइयों के साथ रामचन्द्र जी को परिछकर माता घर में ले गयीं।

चारि सिंहासन सहज सुहाये। जनु मनोज निज हाथ बनाये॥

तिन्ह पर कुअँरि कुअँरि बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे॥
धूप दीप नैवेद्य वेद विधि। पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि॥
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन चारु चामर सिर ढरहीं॥

वहाँ चार सिंहासन बड़े सुन्दर सजाये गये थे, मानो कामदेव ने अपने ही हाथ से बनाये हों, आदरपूर्वक पवित्र चरणों को धोकर उन सिंहासनों पर वर और और दुलहिनों को बैठाया। मंगल की खान वर और दुलहिन की धूपदीप नैवेद्य आदि से वेद विधि के अनुसार पूजा की, बारबार आरती की, उस समय उनपर पंखे झले जारहे थे और सुन्दर चामर दुराया जाता था।

बस्तु अनेक निछावर होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं॥

अनेक प्रकार की चीज़ें न्योछावर की जारही हैं, माताएँ आनन्दमग्न होकर बहुत शोभतीं हैं।

पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी॥
जनमरंक जनु पारस पावा। अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥
मूक बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई॥

योगी ने मानो परम तत्व पालिया है, सदा रोगी रहने वाले ने मानो अमृत पाया हैं, जन्म के दरिद्र ने मानो पारसमणि पाया है, अन्धे ने सुन्दर आँखे पायी हैं, मूक की जीभ पर मानो सरस्वती विराज गयी हैं और वीर ने मानो रण में जय पायी है।

दो०-एहि सुखते सत कोटि गुन, पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर, आये रघुकुलचंदु॥ ३४२॥

इनके सुखों से भी सौ करोड़ गुना बढ़कर माताओं ने आनन्द पाया, उस समय जब कि रघुकुलचन्द्र रामजी भाइयों के साथ ब्याह करके आये।

दो०-लोकरीति जननी करहिं, बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोद बिनोद बिलोकि बड़, राम मनहिं मुसुकाहिं॥३४३॥

मातायें इस समय की जानेवाली लौकिक रीतियाँ करती हैं, इससे वर और दुलहिन संकुचित होते हैं और उस समय की हंसी खेल देखकर रामचन्द्र मन ही मन मुसुकाते हैं।

देव पितर पूजे विधि नीके। पूजी सकल बासना जीके॥
सबहिं बंदि मांगहि बरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना॥
अँतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरिलेहीं॥

माताओं के मन की समस्तवासना पूर्ण हुई थी इस कारण उन लोगों ने देवता और पितरों की पूजा विधिपूर्वक की। उन लोगों ने सब को प्रणाम करके भाइयों के साथ रामचन्द्रजी का कल्याण वर में मांगा। परोक्ष से ही देवगण आशीर्वाद देते हैं और मातायें प्रसन्न होकर आंचल में आशीर्वाद ग्रहण करती हैं।

भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे॥

राजा ने बरातियों को बुलाया, उन्होंने किसीको सवारी, किसीको वस्त्र और किसीको मणि जड़ित भूषण दिये।

आयसु पाइ राखि उर रामहिं। मुदित गये सब निज निज धामहिं॥

वे सब बराती दशरथ की आज्ञापाकर और रामचन्द्र को हृदय में रखकर प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर गये।

पुर नर नारि सकल पहिराये। घर घर बाजन लगे बधाये॥

पुनः राजा ने नगर के सब स्त्री पुरुषों को वस्त्र दिया उस समय नगर के प्रत्येक घर में बधाई बजने लगी।

जाचकजन जाचहिं जोई जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोई सोई॥
सेवक सकल बजनियां नाना। पूरन किये दान सनमाना॥

सूत मागध आदि वन्दीगण जो जो मांगते थे प्रसन्न होकर राजा वही देते थे। सब नौकरों को तथा अनेक बाजे वाले को दान सम्मान करके राजा ने प्रसन्न किया।

दो०-देहिं असीस जोहारि सब, गावहिं गुनगनगाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवन कीन्ह नरनाथ॥३४४॥

उन सवोंने प्रणाम करके राजा को आशीर्वाद दिये तथा उनका गुण गान किया। तब राजा दशरथ गुरुवशिष्ठ जी तथा ब्राह्मणों के साथ घर में गये।

जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्हा। लोक वेद विधि सादर कीन्हा॥

वसिष्ठ ने जो आज्ञा दी वह सब लौकिक विधि तथा वैदिक विधि से राजा ने आदरपूर्वक कीं।

भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठीं भाग्य बड़ जानी॥

अनेक ब्राह्मणों की भीड़ अपने घर में देखकर सब रानियों ने अपने भाग्य को वड़ा जाना और उन लोगों ने ब्राह्मणों के लिए आदरपूर्वक उत्थान किया।

पाय पषारि सकल अन्हवाये। पूजि भली विधि भूप जेवाँये॥

राजा ने चरण धोकर उनको स्नान कराया और विधिपूर्वक पूजाकर के उन्हें भोजन कराये।

आदर दान प्रेम परि पोषे। देत असीस चले मन तोषे॥

आदर दान और प्रेम से राजा ने उन्हें तृप्त किया, और वे भी प्रसन्नतापूर्वक राजा को आशीर्वाद देते हुए चले।

बहु विधि कीन्ह गाधि सुत पूजा। नाथ मोहिसम धन्य न दूजा॥
कीन्ह प्रसंसा भूपति भूरी। रानिन्ह सहित लीन्हि पगधूरी॥
भीतर भवन दीन्ह बर बासू। मन जोगवत रह नृप रनिवासू॥

राजा ने विश्वामित्र की अनेक प्रकार से पूजा की, और उन्होंने कहा। नाथ, मेरे समान धन्य आज दूसरा नहीं है। इसी प्रकार राजा ने मुनि की बड़ी प्रशंसा की, और रानियों के साथ उनके चरणों की धूलि ली। राज-

महल के भीतर उनके रहने के लिए स्थान दिया गया और राजा और रानियाँ उनकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए सदा सचेत रहे।

पूजे गुरु पद कमल बहोरी। कीन्ह विनय उर प्रीति न थोरी॥

पुनः राजा ने गुरु वसिष्ठ जी के चरणों की पूजा की, और बड़ी विनय की। राजा के हृदय में वसिष्टजी के प्रति थोड़ी प्रीति न थी।

दो०-बंधुन्ह समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि बंदत गुरु चरन, देत असीस मुनीस॥३४५॥

दुलहिनियों के साथ चारों राज कुमारों ने और सब रानियों के साथ राजा ने वार वार गुरु की वन्दना की और मुनि ने बारबार आशीर्वाद दिये।

विनय कीन्ह उर अति अनुरागे। सुत संपदा राखि नृप आगे॥
नेग मांगी मुनि नायक लीन्हा। आसिरबाद बहुत विधि दीन्हा॥

पुत्रों को तथा धन मुनि के आगे रखकर राजा ने बड़े प्रेम से ग्रहण करने की विनती की, मुनि ने उसमें अपना नेग ले लिया और अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये। उत्सवों में ब्राह्मण नाई आदि को काम करने के उपलक्ष्य में दी जाने के लिए बंधी हुई रकम को नेग कहते हैं।

उर धरि रामहिं सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता॥
विप्र बन्धु सब भूप बोलाई। चलै चाल भूषन पहिराई॥

सीता सहित राम को हृदय में धर कर गुरुवसिष्ठ जी प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गये।

बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्ही। रुचिविचारिपहिरावनि देहीं॥

पुनः राजा ने सधवा स्त्रियों को बुलाया और उनकी रुचि के अनुसार उन्हें कपड़े दिये।

नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप पहिरावन देहीं॥

नेगी लोग अपना नेग जोग लेते हैं, राजा दशरथ उनकी रुचि के अनुसार उन्हें देते हैं अर्थात जो, जो मांगता है उसे वही देते हैं।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने॥

प्रिय और पूज्य जो पाहुन थे; राजा ने उनका भी उचित सत्कार किया।

देव देषि रघुबीर बिबाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥

देवताओं ने रघुबीर का व्याह देखा उत्सवकी प्रशंसा कर फूलों की वर्षा की।

दो०—चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुष पाइ।
कहत परसपर रामजस, प्रेम न हृदय समाइ॥ ३४६॥

देवतागण मन में सुखी होते हुए डंका बजाकर अपने अपने नगर में जाने के लिए प्रस्थित हुए। आपस में राम का प्रेम वर्णन करते हुए उनको जो आनन्द होता था वह हृदय में नहीं समाता था। वह आनन्द अवर्णनीय है।

सबविधि सबहिं समदि नरनाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू॥

नरनाथ राजा दशरथ ने इस प्रकार सब का आदर किया। फिर भी उनका उत्साह कम नहीं हुआ, वह भरा पूरा था।

जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन्ह कुअँर निहारे॥
लिये गोद करि मोदसमेता। को कहि सकइ भयउ सुष जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरषि दुलारी॥

जहां रनिवास था वहां राजा गये और बहुओं के साथ अपने कुमारों को उन्होंने देखा। राजा ने प्रेम पूर्वक उनको गोद में लिया। उस समय राजा को कितना आनन्द हुआ यह कौन कह सकता है। प्रेमपूर्वक राजा ने बहुओं को गोद में बैठाया और मन में प्रसन्न होकर बार बार उन्होंने उनका दुलार किया

देषि समाज मुदित रनिवासू। सब के उर आनंद कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयउ बिवाहू। सुनि सुठि हरष होइ सब काहू॥
जनक राज गुन सील बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुविधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥

यह दृश्य देख कर रानियां प्रसन्न हुईं। उन सब के हृदयों में आनन्द ने निवास किया। जिस प्रकार विवाह हुआ था वह सब राजा ने सुनाया, उसे सुनकर सब के मन में आनन्द हुआ। राजा जनक के गुणशील बड़ाई प्रीति रीति और सम्पत्ति आदि का वर्णन राजा ने भाट के समान किया, राजा जनक के कामों को सुनकर रानियां बहुत प्रसन्न हुईं।

दो०-सुतन्ह समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पँच गइ राति ॥३४७॥

पुत्रों के साथ स्नान करके राजा ने गुरु ब्राह्मणों को बुलवाया और उनके साथ अनेक प्रकार का भोजन किया, उस समय थोड़ी रात बच गयी थी।

मंगलगान करहिं बरभामिनि। भइ सुष मूल मनोहर जामिनि ॥

सुन्दर स्त्रियां मनोहर गान करती थीं, इस प्रकार वह रात सुखमूल और मनोहर हो गयी।

अंचइ पान सबकाहू पाये। स्रग सुगंध भूषित छवि छाये ॥

भोजन के पश्चात् हाथ मुँह धो लेने पर सभी ने पान पाये और सुगन्धित फूलों की मालाओं से वे भूषित हुए जिससे उनकी शोभा और बढ़ गयी।

रामहिं देषि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई ॥

राम देखकर तथा आज्ञापाकर सभी प्रणाम कर करके अपने अपने घर गये।

प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई। समउ समाज मनोहरताई ॥
कहि नसकहिं सत सारद सेसू। वेद विरंचि महेस गनेसू ॥

उस समय का आनन्द मङ्गल विनोद सौन्दर्य आदि का वर्णन सैकड़ों सरस्वती शेष, वेद ब्रह्मा शिव और गणेश ही कर सकते हैं।

सो मैं कहउँ कवन विधि बरनी। भूमि-नाग सिर धरइ कि धरनी॥

सो उस समय का वर्णन मैं कैसे करूं । भूतल का सर्प क्या कभी पृथिवी को अपने सिर पर धर सकता है ?

नृप सब भांति सबहिं सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाईं रानी ॥

राजा ने सब का सब प्रकार से सम्मान किया, तब रानी को बुलाकर उन्होंने प्रेम पूर्वक कहा—

बधू लरिकिनी पर घर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ॥

ये बहुयें बालिका हैं, उस पर दूसरे घर आयी हैं इनको आंखों की पलक के समान रखना । अथवा पलक जिस प्रकार आंखों की रक्षा करती हैं उसी प्रकार तुम भी करना ।

दो०—लरिका स्रमित उनींद बस, सयन करावहु जाइ ।
अस कहि गे बिस्राम गृह, रामचरन चितु लाइ ॥ ३४८ ॥

वे बालिका हैं जागने के कारण थक गयी हैं इनको सो आओ, ऐसा कह कर और राम के चरणों में चित्त लगाकर वे अपने विश्राम गृहमें गये ।

भूप बचन सुनि सहज सुहाये । जटित कनकमनि पलंग डसाये ॥

राजा के स्वाभाविक सुन्दर वचन सुनकर रानियों ने मणि जड़ित सोने के पलंग बिछवाये ।

सुभग सुरभि पय फेनु समाना । कोमल कलित सुपेतीं नाना ॥

सुन्दर गो दुग्ध के फेन के समान कोमल और अनेक बेलबूटे काढ़े हुए बिछौने बिछवाये ।

उपबरहन बर बरनि न जाहीं । स्रग सुगंध मनि मंदिर माहीं ॥

सुन्दर तकियों का तो वर्णन किया ही नहीं जा सकता, वह मणिमय मन्दिर मालाओं की सुगन्धि से सुगन्धित हो रहा था ।

रतन दीप सुठि चारु चँदोवा । कहत न बनइ जान जेइ जोवा ॥

वहां रत्नों के सुन्दर दीपक रखे गये, सुन्दर चांदनी तानी गयी, उसका सौन्दर्य कहा नहीं जा सकता, जिन्होंने देखा है वे ही जान सकते हैं ।

सेज रुचिर रचि राम उठाये। प्रेम समेत पलंग पौढ़ाये॥

सुन्दर पलंग बिछवाकर रामजी को उठाया और प्रेमपूर्वक उनको पलंग पर पौढ़ा दिया।

अज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥

पुनः भाइयों को सो जाने की आज्ञा दी वे भी अपने अपने पलंगों पर जाकर सो गये।

देषि स्याम मृदु मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावन भारी। केहि बिधि तात ताड़िका मारी॥

रामजी के कोमल मनोहर सुन्दर शरीर देखकर सब माताएँ आपस में बातें करने लगीं। बेटा, बड़ी भयावन ताड़का को मार्ग में जाते हुए तुम ने कैसे मारा।

दो०-घोर निसाचर बिकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित सहाय किमि, षल मारीच सुबाहु॥३४६॥

राक्षस बड़े भयानक होते हैं, वे बड़े योद्धा होते हैं, रण में किसी को कुछ चीज़ नहीं समझते। साथियों के साथ दुष्ट मारीच और सुबाहु को तुम ने कैसे मारा।

मुनिप्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरे टारी॥

मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ, मुनि विश्वामित्र के प्रसाद से भगवान ने तुम्हारे अनेक संकट दूर कर दिये।

मष रषवारी करि दुहुं भाई। गुरुप्रसाद सब बिद्या पाई॥
मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥

तुम दोनों भाइयों ने उनके यज्ञ की रक्षा की है और उन गुरु विश्वामित्र के प्रसाद से तुम लोगों ने सब विद्याएँ पायीं।

कमठ पीठि पबि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिव धनु तोरा॥

राजाओं की सभा में कछुए की पीठ के समान और वज्र के समान कठोर शिवजी का धनुष तुमने तोड़ा।

विस्त्रविजय जसु जानकि पाई। आये भवन व्याहि सब भाई॥

और संसार विजय का फल स्वरूप तुमने जानकी पायी, और चारो भाई व्याह कर लौट आये।

सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सहारे॥

ये सब काम मनुष्यों से न हो सकनेवाले तुम ने किये, सो केवल विश्वामित्र की सहायता ही के भरोसे।

आजु सुफल जग जनम हमारा। देषि तात विधुवदन तुम्हारा॥

बेटा, आज तुम्हारा चन्द्र मुखदेख कर हमारा जन्म इस जगत में सफल हुआ।

जे दिन गये तुम्हहिं विनु देषे। ते विरंचि जनि पारहिं लेषे॥

तुम को विना देखे हमारे जो दिन व्यतीत हुए हैं, उनकी ब्रह्मा गिनती न करें। अर्थात् वे दिन दिन न समझे जांय।

दो०-राम प्रतोषी मातु सब, कहि विनती वरबैन।
सुमिरि संभु गुर विप्र पद, किये नींद बस नैन॥ ३५०॥

सुन्दर और विनीत वचनों को कह कर रामजी ने सब माताओं को प्रसन्न किया, तथा वे शिव गुरु और ब्राह्मणों के चरण कमलों का स्मरण कर के सो गये।

नींदहु वदन सोह सुठि लोना। मनहुं सांझ सरसीरुह सोना॥

निद्रा के समय भी रामचन्द्रजी का सुन्दर लावण्यमय मुख शोभित होता था, मानो सायंकाल के समय कमल वन्द हो गया हो। अर्थात् सांयं काल के मुकुलित कमल के समान उनका मुख शोभित हो रहा था।

घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परस्पर मंगल गारी॥
पुरी विराजति राजत रजनी। रानी कहहिं विलोकहु सजनी॥

घर घर स्त्रियां जागरण कर रही हैं और परस्पर मंगल गाली दे रही हैं। नगरी शोभित हो रही है रात्रि भी शोभित हो रही है, रानी कहती है कि सखी देखो।

सुंदर वधुन्ह सास लेइ सोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उरजोई॥

सुन्दर बहुओं को लेकर सासु सोईं, मानों सांपों ने अपने मस्तक की मणि छिपाली।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥

पवित्र प्रातः काल के समय अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में प्रभु रामचन्द्रजी जागे, और अरुण चूड-मुर्गे बोलने लगे।

बंदि मागधन्ह गुन गन गाये। पुरजन द्वार जोहारन आये॥
बंदि विप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे। भूपति संग द्वार पगु धारे॥

वन्दी और मागध गुण गान करने लगे, और नगरवासी प्रणाम करने के लिए द्वार पर आये। ब्राह्मण देवता गुरु और पिता माता को सब भाइयों ने प्रणाम किया और आशीर्वाद पाकर वे प्रसन्न हुए। माताओं ने बालकों के सुन्दर बदन देखे, और वे राजा दशरथ के साथ द्वारपर आये।

दो०-कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहिं, आये चारिउ भाइ॥ ३५१॥

स्वभाव शुद्ध चारों भाइयों ने शुद्धि आदिकर पवित्र नदी सरयू में स्नान किया, पुनः प्रातः काल की पूजा आदि करके वे चारो भाई राजा के पास आये।

भूप विलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

राजा ने उन्हें देखकर छाती से लगाया, वे आज्ञा पाकर प्रसन्नतापूर्वक

बैठे। राम को देखकर सब सभा प्रसन्न हुई, सब लोगों ने समझा कि मुझे सीमा से अधिक आंखों को लाभ मिला।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आये। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाये॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरषि राम दोउ गुरु अनुरागे॥
कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहिं महीप सहित रनिवासा॥

पुनः वसिष्ठ और कौशिक मुनि आये, राजा ने सुन्दर आसनों पर मुनियों को बैठाया। पुत्रों के साथ उनकी पूजा करके राजा ने उनको प्रणाम किया, राम को देखकर दोनों मुनि प्रसन्न हुए। वशिष्ठ महाराज धार्मिक इतिहास कहने लगे और राजा रानियों के साथ सुनने लगे।

मुनिमन अगमगाधिसुतकरनी। मुदित वसिष्ठविपुलबिधिवरनी॥

वसिष्ठ जी प्रसन्न होकर मुनिविश्वामित्र के उन कार्यों का अनेक प्रकार से वर्णन किया, जो मुनियों के मन के लिए भी अगम हैं। जिन कार्यों को मुनियों के मन भी नहीं जान सकते।

बोले वामदेव सब सांची। कीरति कलित लोक तिहुं मांची॥

तब वामदेव मुनि बोले कि यह सब सच है, वसिष्ट जी ने जो कहा है वह सच है, इनकी कीर्ति तीनों लोकों में फैली हुई है।

सुनि आनंद भयउ सब काहू। राम लषन उर अधिक उछाहू॥

यह सुनकर सब के मन में आनन्द हुआ और राम लक्षमण में और अधिक उत्साह हुआ।

दो०-मंगल मोद उछाह नित, जाहिँ दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति॥३५२॥

इसी प्रकार नित के आनन्दमंगल और उत्साह से दिन बीतने लगे मानो उमड़कर आनन्द अवध में आया हो और वह अधिक अधिक बढ़ता जाता हो।

सुदिन सोधि कलकंकन छोरे। मंगल मोद विनोद न थोरे ॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम जाचहिं विधि पाहीं॥

अच्छा दिन दिखवाकर कंकण खोला गया, उस समय खूब आनन्द उत्सव खूब हसी दिल्लगी हुई।

विस्वामित्र चलन चित चहहीं। राम सनेह विनय बस रहहीं॥
दिन दिन सब गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनि राऊ ॥
मांगत विदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भये आगे ॥

विश्वामित्र प्रतिदिन जाना चाहते हैं, पर रामजी के स्नेह और विनय के वश होकर रह जाते हैं। दिनों दिन राजा दशरथ का शतगुण अधिक प्रेम देखकर मुनिराज विश्वामित्र ने उनकी प्रशंसा की, विश्वामित्र ने जब विदा मांगी तब प्रेमपूर्वक पुत्रों के साथ राजा उनके आगे खड़े हो गये।

नाथ सकल संपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुतनारी ॥
करबि सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू ॥
अस कहि राउ सहित सुतरानी। परेउ चरन मुख आव न बानी ॥
दीन्हि असीस विप्र बहु भांती। चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥

राजा ने कहा, नाथ! यह सब सम्पत्ति आपकी है, मैं पुत्र और स्त्री के साथ आपका सेवक हूं, सदा बालकों पर कृपा रखिएगा और मुझ को भी कभी कभी दर्शन देते रहिएगा, ऐसा कह कर राजा रानी और पुत्रों के साथ मुनि के चरणों पर पड़े, उनके मुंह से आवाज़ नहीं निकली। मुनि विश्वामित्र ने अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये और चले, उस समय के प्रेम और व्यवहार का वर्णन नहीं हो सकता। सब भाई प्रेमपूर्वक उनके साथ चले, पुनः विश्वामित्र की आज्ञा पाकर वे लौट आये।

दो०-राम रूप भूपति भगति, ब्याह उछाह अनंद ।
जात सराहत मनहिं मन, मुदित गाधिकुलचंद ॥३५०

राम का रूप राजा की भक्ति और ब्याह के आनन्दोत्सव का गाधिकुल चन्द्र विश्वामित्रजी मन ही मन सराहना करते जाते थे ।

वामदेव रघुकुल गुरु ज्ञानी । बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥
सुनि मुनि सुजस मनहिंमनराऊ । बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥

वामदेव मुनि रघुकुल के गुरु हैं और ज्ञानी हैं उन्होंने पुनः गाधीसुत विश्वामित्रजी की कथा सुनायी । राजा मुनिका सुयश सुनकर मन ही मन प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने भाग्य के प्रभाव का वर्णन किया ।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ । सुतन्ह समेत नृपति गृह गयऊ ॥

राजा की आज्ञा पाकर लोग अपने अपने घर गये और राजा भी पुत्रों के साथ घर गये ।

जहँ तहँ राम ब्याह सब गावा । सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा ॥
आये ब्याहि राम घर जबतें । बसे अनंद अवध सब तब तें ॥

सब जगह रामजी के ब्याह का वर्णन होने लगा रामजी का सुन्दर यश तीनों लोकों में छागया । रामचन्द्र ब्याह करके जब से घर आये तब से अवध में सब आनन्द वास करने लगे ।

प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू । सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू ॥

प्रभु रामचन्द्र का ब्याह जिस उत्साह के साथ हुआ उसका वर्णन शेष नाग की वाणी भी नहीं कर सकती ।

कवि कुल जीवन पावन जानी । रामसीय जस मंगलखानी ॥
तेहिं तें मैं कछु कहा बखानी । करत पुनीत हेतु निज बानी ॥

मङ्गलमय राम और सीता का यश कवियों के जीवन को पवित्र करने वाला है, यही समझकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैंने उसका कुछ वर्णन किया है ।